मार्च, १९३१

वर्ष ९, खण्ड १] [संख्या ५, पूर्ण संख्या १०१

चाँद

स्वर्गीय पं० मोतीलाल नेहरू

दौलते-दुनिया रही मेहमान मोतीलाल की !
देश-सेवा के लिए थी जान मोतीलाल की !
यूँ तो दुनिया के समुन्दर में कमी होती नहीं ;
लाखों मोती हैं, मगर उस आब का मोती नहीं !!

—'बिस्मिल' इलाहाबादी

वार्षिक चन्दा ६॥) छः माही ३॥)

सम्पादक :—श्रीरामरखसिंह सहगल

विदेश का चन्दा ८॥) इस अङ्क का मूल्य ॥=)

Printed at the Fine Art Printing Cottage, Chandralok—Allahabad
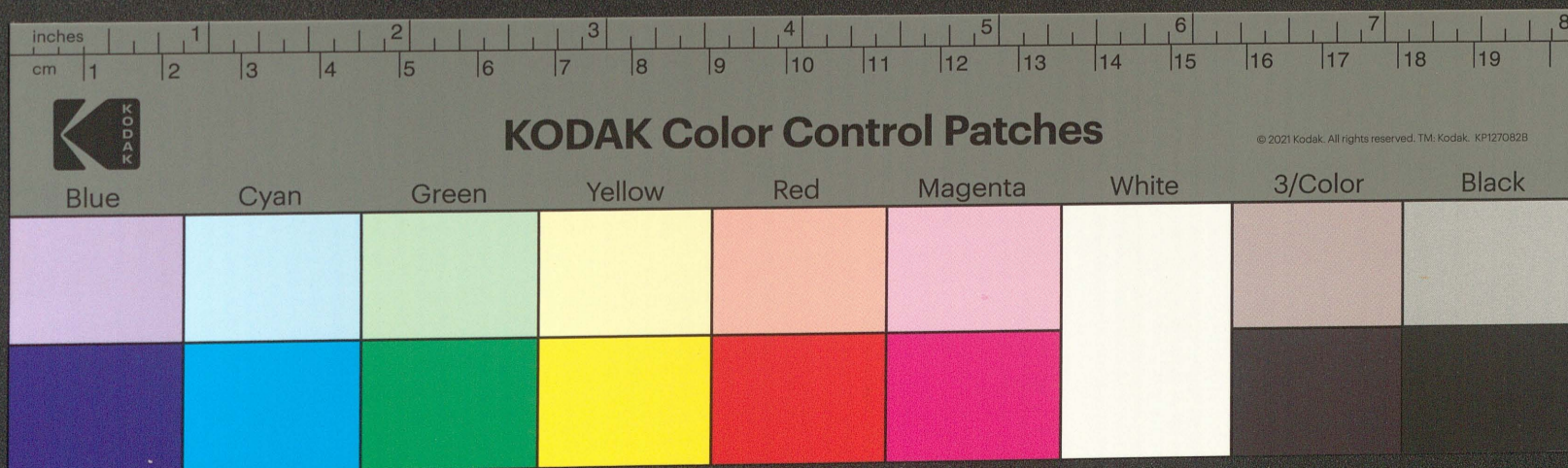
[ले० श्री० ऋषभचरण जैन]

समाज-सेवा, देशभक्ति तथा एक देशोपकारी संस्था की आड़ में यदि अत्यन्त भयङ्कर तथा वीभत्स घटनाओं का नग्न चित्र देखना हो अथवा 'महाशय जी' व 'देवी जी' नामधारी नर-पिशाचों के आन्तरिक पापों का भण्डाफोड़ देखना हो तो इस पुस्तक को उठा लीजिए। कुछ ही पन्ने पढ़ कर आप आश्चर्य की मूर्ति बन जायँगे, आपके रोम-रोम काँपने लगेंगे। जो स्त्री कि वाह्य जगत् में अत्यन्त पूज्य, अनिन्द्य सुन्दरी, विदुषी, सुशीला तथा समाज-सेविका है, वह वास्तव में व्यभिचारिणी, कलङ्किनी, पापिनी, हत्यारिणी तथा एक वेश्या से भी घृणित है। समाज में प्रतिष्ठित रहते हुए वह भीतर ही भीतर इन पापों की पूर्ति के लिए कैसे-कैसे रहस्य रचती है—इसका अत्यन्त रोमाञ्चकारी वर्णन इसमें किया गया है।

सुखवती देवी नाम्नी एक अत्यन्त सुन्दरी तथा विदुषी महिला किस प्रकार अपने पति का गला घोंट कर, एक प्रेस तथा मासिक पत्र की सञ्चालिका बन जाती है, समाज-सेवा की आड़ में किस प्रकार देवी जी ने अनेक धनिक पुरुषों को अपने जाल में फँसा कर रुपया ऐंठा तथा ब्रह्मचर्य के पवित्र नाम पर किस प्रकार दर्जनों होनहार नवयुवकों का सर्वनाश किया और एक नवयुवक के प्राण लेकर ही अपने प्राण त्यागे; इतना नाटक खेलते हुए भी किस प्रकार देवी जी समाज में पूज्य ही बनी रहीं—इसका सारा रहस्य जादू की क़लम से लिखा गया है। पुस्तक के एक-एक शब्द में रहस्य भरा हुआ है। पुस्तक की छपाई-सफ़ाई दर्शनीय है। पृष्ठ-संख्या लगभग २०० ; मूल्य लागत मात्र १॥) रु०, स्थायी ग्राहकों से १=) मात्र। शीघ्रता कीजिए। पुस्तक छप रही है। अभी से अपना नाम रजिस्टर करा लीजिए।

☛ व्यवस्थापक 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

विषय सूची

* * *

चित्र-सूची

आर्ट-पेपर पर रङ्गीन

सादे

कार्टून

* * *

स्वर्गीय पं० मोतीलाल नेहरू

दौलते-दुनिया रही मेहमान मोतीलाल की !
देश-सेवा के लिए थी जान मोतीलाल की !
यूँ तो दुनिया के समुन्दर में कमी होती नहीं ;
लाखों मोती हैं, मगर उस आब का मोती नहीं ॥

—'बिस्मिल' इलाहाबादी

आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी प्रणाली है। जब तक इस पावन अनुष्ठान में हम अविचल हैं, तब तक हमें इसका भय नहीं, कि हमारे विरोधियों की संख्या और शक्ति कितनी है!

वर्ष ९ खण्ड १	मार्च, १९३१	संख्या ५ पूर्ण संख्या १०१

नयन के प्रति

[श्री० आनन्दीप्रसाद जी श्रीवास्तव]

देख रहे हो ललच-ललच कर
लगे हुए ये सुन्दर फूल,
नहीं जानते क्या ! जीवन के
पथ पर बिछे हुए हैं शूल !

है छवि सुधा पिलाता तुमको
दे नासा को सौरभ-दान,
लेख रहे गुण, या यों ही हो
देख रहे उनको अनजान !

औरों के हित वह जीता है
औरों के हित वह मरता,
नयन, नहीं वह तुम-सा केवल
है सदैव देखा करता !

नन्हा सा वह जीव, किन्तु है
उसका कितना भारी काम,
इसीलिए उसने पाए हैं
'सुमन' 'फूल' से सुन्दर नाम !

काँटे भी हैं मुग्ध उसी पर
बाधा-रोधक रहते पास,
तुम केवल देखा करते हो
उसको, यह तो है उपहास !

भला किस दशा में है अब यह
भारत के जीवन का फूल ?
नयन न चुन सकते हो क्या तुम
प्रमुदित उसके पथ के शूल !
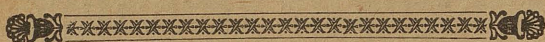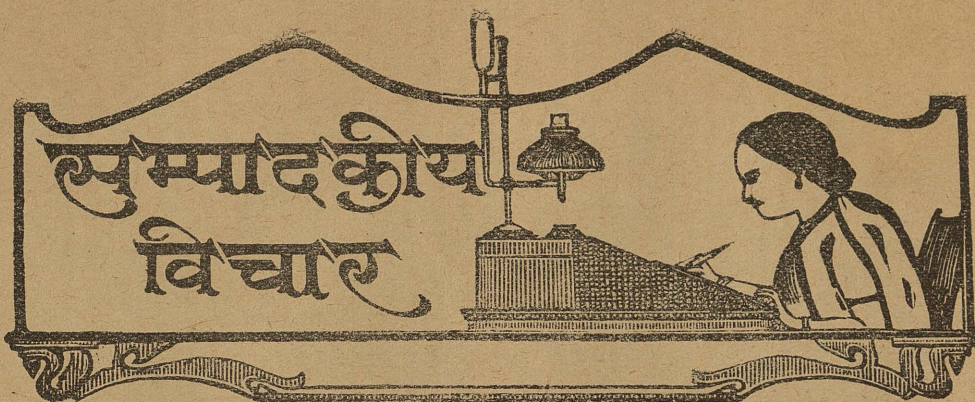
मार्च, १९३१

क़ानून या काल ?

नए प्रेस-ऑर्डिनेन्स की भेंट

विधवाश्रम

[प्रोफ़ेसर चतुरसेन जी शास्त्री]

एक गन्दी और तङ्ग गली के भीतरी छोर पर; एक पुराने पक्के दुमञ्ज़िले मकान के भीतरी हिस्से में, एक कोठरीनुमा कमरे में ४ मूर्तियाँ एक टेबिल पर बैठी धीरे-धीरे बातें कर रही थीं। यह मकान वास्तव में विधवाश्रम था और यह मनहूस कमरा था उसका दफ़्तर।

टेबिल पर कुछ मैले रजिस्टर, पुरानी पुस्तकें, दो-एक साप्ताहिक पत्र, कुछ काग़ज़ और कुछ चिट्ठियाँ अस्त-व्यस्त पड़ी थीं।

चारों व्यक्तियों में जो प्रधान पुरुष थे, उनकी उम्र कोई ५० वर्ष की होगी। उनका रङ्ग क़तई ताँबे की भाँति, चेहरा साहबनुमा सफ़ाचट, बदन गठीला, क़द ठिगना, चाल बिल्ली के समान और दृष्टि साँप के समान थी। हृदय कैसा था, इसका भेद वह जाने जो वहाँ की सैर कर आया हो। आप विशुद्ध खद्दर पहनते थे और किसी को सम्मुख देखते ही मुस्कुरा कर तिर्छी गर्दन करके दोनों हाथ जोड़ कर नमस्ते करते थे। आपका असली और पुराना नाम तो था सुखदयाल, परन्तु आप बहुतायत से डॉक्टर साहब के नाम से ही पुकारे जाते थे। आपने कब, कहाँ, और कितनी डॉक्टरी पढ़ी, यह जानने का अब कोई उपाय नहीं। एक युग हो गया तभी से आपका यह नाम पेटेण्ट हो गया है। सुना है, बहुत दिन हुए आप किसी गुरुकुल में कम्पाउण्डर थे। वहाँ के रसोइए, कहार और कोई-कोई ब्रह्मचारी भी आपको डॉक्टर ही कह कर पुकारते थे, तभी से आपका यही नाम पड़ गया।

आश्रम में आने पर आपको तीन नाम और पेटेण्ट करने पड़े—"पिता जी, अधिष्ठाता जी, और संरक्षक जी।"

चारों धर्मात्मा बैठे धीरे-धीरे कुछ बातचीत कर रहे थे कि भीतर से एक स्त्री ने आकर कहा—पिता जी! लुगाइयाँ तो दोनों बहुत बढ़िया हैं।

"अच्छा!"

"दोनों की उठती हुई उम्र है, रङ्ग भी ख़ूब निखरा हुआ है, पर दोनों रो बुरी तरह रही हैं।"

"अच्छा, उन्हें कुछ खिला-पिला कर बातचीत से ख़ुश करो, और अलग-अलग कोठरियों में सुला दो"—इतना कह कर पिता जी, उर्फ़ डॉक्टर जी, उर्फ़ अधिष्ठाता जी ने बूढ़े बकरे की तरह दाँत निकाल दिए। और अपनी मनहूस आँखों को क्षण भर के लिए सामने बिखरे हुए काग़ज़ों पर से उठा कर बात करने वाली धरमपुत्री (?) की ओर घूर दिया। धरमपुत्री उसी तरह एक कटाक्ष फेंक और दाँतों की बहार दिखाती हुई चल दी।

इस धरमपुत्री की उम्र लगभग ३० वर्ष, रङ्ग कोयले के समान, जिस्म लम्बा, बदन छरहरा और चेहरा पानीदार था। दाँत चमकीले, आँखें तेज़ और चञ्चल तथा वाणी साफ़ और लच्छेदार थी। यही आश्रम की संरक्षिका, इस छोटे से स्त्री-जेलख़ाने की सुपरिण्टेण्डेण्ट, और इस पाप-महल की सर्वतन्त्र स्वतन्त्र महारानी थी। नाम था प्रेमदेवी।

२

उसी दिन, दिन के ३ बजे विधवाश्रम के बाहरी बैठकख़ाने में, जिसे ऑफ़िस कहा जाता था, चार मूर्तियाँ एक टेबिल पर बैठी धीरे-धीरे बातचीत कर रही थीं। टेबिल पर कुछ मैले रजिस्टर, पुस्तकें, साप्ताहिक पत्र, कुछ काग़ज़ात और कुछ चिट्ठियाँ पड़ी थीं। चारों पुरुषों में जो प्रधान पुरुष थे—वे वही हमारे डॉक्टर जी थे—वे अपने स्वभाव-सिद्ध ढङ्ग पर गर्दन टेढ़ी किए हाथ में पेन्सिल लिए कुछ गुनगुनाते जाते थे। इनकी बाँईं ओर जो व्यक्ति थे, उनका मुँह पिचका हुआ, आँखें गढ़े में घुसी हुईं, लम्बी गर्दन, बड़ी सी नाक थी, सिर पर मैली खद्दर की टोपी थी। ये बड़े ध्यान से डॉक्टर जी की बात में दत्तचित्त हो रहे थे। असल में ये आश्रम के सेक्रेटरी थे। और सिर्फ़ २५) ऑनरेरियम पाते थे। उनके बराबर तीसरे व्यक्ति एक नवयुवक थे। इनकी

घिनौनी मूँछें बड़े भद्दे ढङ्ग से मुख पर फैल रही थीं। आँखों में शरारत और चेष्टा में बदमाशी साफ़ झलक रही थी। ये डॉक्टर जी के हुक्म के मुताबिक़ सामने रक्खे हुए, खुले काग़ज़ों की फ़ाइल में कुछ काट-छाँट कर रहे थे। इन्हें आश्रम से ३०) महीना वेतन भी मिलता था। बेचारों के ऊपर रात-दिन का, आश्रम और उसकी रहने वाली स्त्रियों की रक्षा का असह्य भार था। विवश उन्हें रात को भी नौकरी से फ़ुर्सत नहीं मिलती थी, हालाँकि आप बहुत कुछ शिकायत किया करते थे—पर इस ग़ैर-फ़ुर्सती में आप कितने ख़ुश थे,
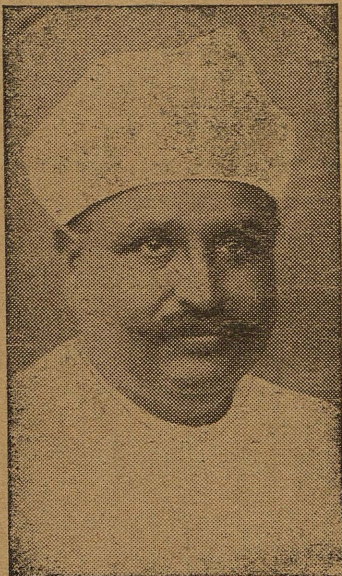
श्री० वेलप्पा नायडू

आप कोयम्बटूर काँग्रेस कमिटी के 'डिक्टेटर' हैं, जो हाल ही में पकड़े गए हैं।

सो भगवान जानता है। ये एक तौर से इस मण्डली में गुड़ के चिउँटे हो रहे थे। इनका नाम था गजपति।

इनकी बग़ल में लाला जगन्नाथ बैठे थे। इनका स्याहफ़ाम चेचक से मुँदा मुँह, भद्दी सी आँखें, नाटा क़द और बात-बात में सनक सी उठना—इनके व्यक्तित्व को सब से पृथक कर रहा था। आपकी उम्र ५० के लगभग थी। आप मुख पर गम्भीरता और भक्ति-भाव लाने के लिए जो चेष्टा प्रायः किया करते थे, उससे ऐसा प्रतीत होता था, मानो आप अभी रो पड़ेंगे। शायद इसी चेष्टा के फल-स्वरूप आपका होंठ नीचे को लटक गया था और चेहरा कुछ लम्बा हो गया था।

लेख को ठीक करा कर डॉक्टर जी बोले—बस अब हिसाब में जो थोड़ी सी भूल है, उसे तुम ठीक कर करा लेना। परन्तु सुनो—कल ही तो अन्तरङ्ग मीटिङ्ग है, सब काग़ज़ात आज ही रात को तैयार और साफ़ हो जाने चाहिए। पीछे का बखेड़ा रहना ठीक नहीं।

"बहुत अच्छा! परन्तु वे दो रुपए, जो कुन्ती की शादी में वसूल हुए हैं, किस मद में डाले जायँ?"

"किसी में भी नहीं, अभी उनकी बात छोड़ो, उनका हिसाब मैं पीछे दूँगा, तुम्हें तुम्हारा हक़ तो मिल गया न?"

"कहाँ, सिर्फ़ २५) मिले हैं।"

"तब यह लो ५) और, यह हिसाब तो साफ़ हुआ। आप लोगों को भी तो इस विवाह का हिस्सा मिल गया है।"

दोनों अन्य पुरुषों ने भी स्वीकृति दे दी। इस पर डॉक्टर जी कुछ कहना चाहते थे कि एक बूढ़ी स्त्री ने द्वार में घुस कर मूर्ति चतुष्टय को धरती में माथा टेक कर प्रणाम किया।

गजपति ने कहा—माई क्या है?

"महाशय जी! मेरी यह फुफेरी बहिन की लड़की है, बेचारी बाल-विधवा है, न कोई आगे न पीछे। मैं अन्धी-धुन्धी बुढ़िया हूँ, इसे कहाँ तक देख-भाल कर सकती हूँ। घर में इसका मन नहीं लगता। सदैव द्वार पर खड़ी रहती है। सधवाओं जैसा बनाव-सिङ्गार क्या इसको सुहाता है? पर यह एक नहीं सुनती। आपकी मैंने तारीफ़ सुनी है, ख़राब औरतों को आप सुधारते हैं, उनकी रक्षा करते और उन्हें सन्मार्ग पर लाते हैं। महाराज! आप कृपा कर इस लड़की का कुछ उपाय कीजिए।"

इतना कह कर उसने अपने पीछे सिकुड़ी खड़ी बालिका को धकेल कर आगे किया और माथा टेकने का आदेश किया। बालिका आगे दो क़दम बढ़ कर ठिठक गई। बोली नहीं, न उसने माथा ही टेका, केवल एक बार नेत्रों की रेखा से मण्डली को देखा। एक क्षीण हास्य-रेखा उसके मुख पर आई और वह चुपचाप खड़ी धरती को निहारने लगी।

तीनों आदमी उस शर्माई हुई बालिका को एकटक देखने लगे। मण्डली विचलित सी हो गई।

गजपति ने कहा—"बुड्ढी माँ, तुमने अच्छा किया इसे यहाँ ले आई, यहाँ इसकी हमजोलियाँ बहुत हैं। अच्छा इसे ज़रा आने-जाने को कहो। क्यों जी, तुम्हारा नाम क्या है?" इतना कह कर गजपति ने उसके कन्धे पर हाथ धर दिया।

डॉक्टर जी ने कहा—"ठहरो! उसे सामने वाली कोठरी में बैठने दो, मैं इससे अभी बात करूँगा।" बालिका तत्काल कोठरी की ओर चली गई। वृद्धा बैठी रही, लाला जगन्नाथ उसे उपदेश दे रहे थे।

बालिका वास्तव में यहाँ की घूराघूरी देख कर घबरा उठी थी। वहाँ से वह जान बचा कर कोठरी में भाग गई। और चाहे कोई न जाने, परन्तु स्त्रियाँ बदमाशों की पाप-दृष्टि को ख़ूब पहचानती हैं।

इसके बाद डॉक्टर जी उठ कर कोठरी में घुस गए; दरवाज़ा ढकका दिया। यह देखते ही ग़रीब बालिका सूख गई। वह वहाँ से उठ कर बाहर को जाने की चेष्टा करने लगी। डॉक्टर जी ने हाथ पकड़ कर कहा—बेटी! डर क्या है, घबराने की बात नहीं। इधर आ, मैं तेरा रक्षक बनूँगा?

इतना कह वे उसे कनखियों से देखने लगे। बालिका सिकुड़ कर बैठ गई और उनकी बात की प्रतीक्षा करने लगी।

डॉक्टर जी ने कहा—तुम्हारा नाम क्या है?

"चन्दन"

"बहुत सुन्दर नाम है। अच्छा यह तो बताओ! तुम्हारे मन में कभी किसी तरह की उमङ्ग तो नहीं उठती?"

बालिका समझी नहीं। वह बड़ी-बड़ी आँखें उठा कर डॉक्टर जी की ओर देखने लगी।

"आह! समझी नहीं; (कन्धे पर हाथ धर कर और पास खसक कर) अभी नादान बच्ची हो। मन के भाव समझती नहीं। ख़ैर देखो, तुम चाहो तो यहाँ आश्रम में रहो, चाहे कभी-कभी आया करो। कुछ रुपए-पैसे की ज़रूरत हो तो मुझसे कहो। देखो, भेद-भाव मत रखना। अब मैं तुम्हारा रक्षक हुआ। क्यों, हुआ न? बोलो।"

बालिका बिना हाथ-पैर हिलाए चुपचाप बैठी रही। उसके बदन पर पसीना आ रहा था।

डॉक्टर जी ने उसकी कमर में हाथ डाल कर अपनी ओर खींचते हुए कहा—जवाब तो दो!

बालिका ने तनक कर कहा—आह! यह क्या करते हैं, अपना हाथ खींच लीजिए।

"क्रोध मत करो। जब मैं रक्षक हुआ तो जो पूछूँगा बताना पड़ेगा, जो कहूँगा करना पड़ेगा; किसी बात में उज़्र न करना होगा। देखो, तुम्हारी यह साड़ी कितनी

श्री० कविराज गननाथ सेन, एम० ए०, एल०एम० एस०

आप हाल ही में मैसूर में होने वाले अखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद महा-सम्मेलन के प्रधान थे।

पुरानी और गन्दी हो गई है। ये रुपए ले जाओ, नई ले लेना।"

इतना कह कर डॉक्टर जी ने ५) का एक नोट उसके हाथ पर धर दिया। बालिका नोट देख कर घबरा उठी, ले या न ले—न समझ सकी। उसके मन में नई साड़ी पहनने की लालसा जाग्रत हो उठी। वह उत्सुक होकर डॉक्टर जी के सफ़ाचट मुख को देखने लगी।

डॉक्टर जी ने कहा—नोट को सम्हाल कर रख लो।

जेब तो है न—चोली में रख लो। गिर न जाय। ठहरो, मैं रख देता हूँ।

बालिका न रोष, न निषेध कर सकी। डॉक्टर जी ने उसकी चोली में हाथ घुसेड़ दिया। एक पैशाचिक आवेश से डॉक्टर जी का लाल चेहरा और भी लाल हो उठा।

बालिका घबरा कर उठ बैठी। और उसने धड़ाम से किवाड़ खोल दिए। डॉक्टर जी हड़बड़ा कर उठ बैठे। उन्होंने धीरे से कहा—अच्छा बाक़ी बातें फिर होंगी, परसों इसी समय आना। पर देखना, रुपयों की बात किसी से न कहना—समझी?

"पर जब ख़र्च करूँगी, तब तो भेद खुलेगा?"

"कह देना किसी सहेली ने दिया था, या पड़ा पा गई थी।"

"ख़ैर, आप बेफ़िक्र रहें, मैं सब ठीक कर लूँगी।"

अब डॉक्टर जी दुलार से बालिका के गाल पर चुटकी लेकर बाहर चले आए। हँस कर बुढ़िया से कहा—लड़की बड़ी सीधी है, दो-चार बार आने से समझ जायगी। न होगा तो यहाँ कुछ दिन रख लिया जायगा।

बुढ़िया ने कहा—"भगवान आपका भला करे। आपने बड़ा भारी धर्म का बीड़ा सिर पर उठाया है।" इतना कह और धरती में माथा टेक बुढ़िया रवाना हुई।

३

डॉक्टर साहब आश्रम के भीतरी कक्ष में एक शतरञ्जी पर बैठे थे। सामने एक नवयुवती सिकुड़ी हुई बैठी थी। डॉक्टर साहब मन लगा कर उसे सत्मार्ग पर लाने की चेष्टा कर रहे थे। उन्होंने कहा—देखो बेटी, मैं तुम्हारा धर्म का पिता हूँ और रक्षक हूँ। समझती हो न?

"जी हाँ, आपने पत्र में भी यही लिखा था, इसीसे आप पर विश्वास करके चली आई हूँ। मैं आपकी धर्म की पुत्री हूँ। आह, मैं बड़े दुष्टों के फन्दे में पड़ गई थी, कहने को समाजी, पर परले दर्जे के लुच्चे, औरतों का व्यापार करने वाले।"

"अच्छा, तुम कहाँ जा फँसी थी? ख़ैर, जाने दो इन बातों को। तो देखो, जब मैं तुम्हारा रक्षक और धर्म-पिता हुआ, तब तुम्हें मेरे कहने के माफ़िक़ काम भी करना होगा। तुम जानती हो, मैं सदैव तुम्हारी भलाई की बात ही सोचूँगा।"

"मुझे आपका भरोसा है।"

"अच्छी बात है, तुम्हें तीन दिन यहाँ आए हुए। कहो, कोई कष्ट तो नहीं है।"

"जी नहीं।"

"खाने-पीने की दिक़्क़त।"

"जी कुछ नहीं।"

"कपड़े-लत्ते तुम्हारे पास काफ़ी हैं न?"

"जी हाँ।"

"ख़ैर, मैं दो जोड़ा साड़ी तुम्हें आज ही और भेजवा देता हूँ। तुम कैसी साड़ी पसन्द करती हो, रेशम कोर की न?"

"जी, जैसी मिल जाय।"

"जैसी चाहोगी वैसी मिल जायगी। ख़ैर, तुम्हें कुछ जेब-ख़र्च भी चाहिए?"

"जी नहीं, मेरे पास कुछ रुपए हैं।"

"अच्छी बात है, हाँ—एक बात—यहाँ ज़ेवर पहनने का नियम नहीं! तुम्हारे गहने सब कोष में जमा होंगे।"

"कोष क्या है?"

"आश्रम का कोष—यानी ख़ज़ाना। जब तुम्हारा विवाह होगा, तब वापस दे दिए जावेंगे।"

"मगर मैं विवाह तो कराने की इच्छा ही नहीं करती।"

"यह कैसी बात है? फिर यहाँ आई क्यों हो?"

"मैं तो विद्या पढ़ कर अपना धर्म सुधारना चाहती हूँ।"

"परन्तु जवान लड़कियों का धर्म सिर्फ़ विद्या से ही नहीं बचता।"

"तब?"

"उन्हें ब्याह करना चाहिए।"

"ब्याह तो एक बार हो चुका, वही तक़दीर में होता तो तक़दीर क्यों फूटती?"

"यह तो संसार के कारख़ाने हैं, सब दिन एक से नहीं रहते। कहा है—बीती ताहि बिसारि दे, आगे की सुधि लेहु।"

"पर मैं तो विद्या पढ़ने ही आई हूँ।"

"विवाह कराके विद्या भी पढ़ना।"

"विवाह कराना मैं नहीं चाहती।"

"तुम्हें अवश्य विवाह कराना चाहिए।"

"मैं धर्म-काम में जीवन व्यतीत करना चाहती हूँ।"

"तुम्हारा विवाह किसी धर्मोपदेशक से करा दिया जायगा।"

"पर यह मुझे पसन्द नहीं, मुझे विवाह से घृणा है।"

"यह तुम्हारी नादानी है।"

"आप मेरे पढ़ने-लिखने का बन्दोबस्त कर दें।"

"पर यह विधवाश्रम है, कोई कन्या-पाठशाला नहीं।"

"आपने लिखा था कि पढ़ने का प्रबन्ध हो जायगा।"

"पर विवाह के बाद।"

"विवाह के बाद आप क्या यहाँ रख सकेंगे?"

"यहाँ रखने ही से क्या—जो विवाह करेगा, वह पढ़ाएगा।"

"और यदि मैं विवाह न करूँ?"

"अवश्य करना पड़ेगा?"

"मैं विवाह नहीं करूँगी?"

"कह चुका, अवश्य करना पड़ेगा।"

"तब मुझे चली जाने दीजिए, मैं यहाँ न रहूँगी।"

"यह भी असम्भव है।"

"असम्भव क्यों?"

"नियम है।"

"यह तो धींगामुश्ती है।"

"तुम चाहे भी जो कुछ समझो।"

"मैं यहाँ एक मिनिट भी नहीं रह सकती।"

"तुम यहाँ से जा नहीं सकती।"

"देखूँ कौन रोकता है।"

"डॉक्टर ने सङ्केत किया। गजपति और जगन्नाथ अधिष्ठात्री देवी के साथ आ हाज़िर हुए। डॉक्टर ने कहा—"इस बेवक़ूफ़ को समझा कर राज़ी करो।" और वे चले गए।

युवती ज़बर्दस्ती बाहर जाने लगी।

गजपति ने कहा—ज़ोर क्यों करती हो, ज़ोर हममें भी है। बात समझो-समझाओ, ज़ोर से कुछ नहीं बनेगा।

"मैं कुछ नहीं सुनती, मैं अभी जाऊँगी।"

"जा नहीं सकती?"

"क्या मैं क़ैदी हूँ।"

"जो कुछ समझो।"

"तुम सब लोग एक ही से पिशाच हो, धर्म की टट्टी में शिकार खेलते हो।"

"जो जी में आवे सो बको।"

"क्या तुम ज़बर्दस्ती शादी कराना चाहते हो?"

"और आश्रम हमने किस लिए खोला है?"

"मैंने समझा था विधवाओं को शिक्षा मिलती
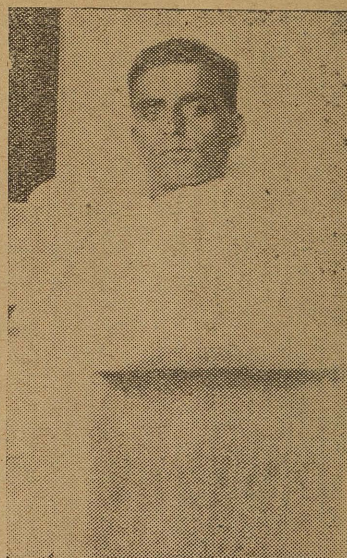
श्री० ए० जी० चैनानी

आप नगरपरकार ताल्लुक़ा (गुजरात) के देश-सेवक-मण्डल के प्राण और विद्या-प्रचारक सभा के प्रधान हैं।

है। रोटी-कपड़ा मिलता है, वे स्वावलम्बिनी बनाई जाती हैं।"

"और तुम्हें यह नहीं मालूम कि उनकी शादियाँ भी होती हैं?"

"मैं समझती थी, जो शादी कराना चाहे उसकी शादी होती होगी।"

"बस यही ग़लती है। इस तरह यहाँ पञ्छियों का बसेरा बसाया जाय तो आश्रम का दिवाला दो दिन

में निकल जाय। यहाँ तो नया माल आया—इधर से उधर चालान किया, आश्रम का भी ख़र्च निकला और तुम लोगों का भी भला हुआ।"

"मैं अपना भला कर लूँगी, तुम अपना ख़र्च ले लो और मुझे जाने दो।"

"ख़र्च क्या होगा?"

"और कुछ मेरे पास नहीं, जो दो-चार गहने हैं उन्हें ले लो।"

"लाओ, ये तो कोष में जमा होंगे।"

युवती ने गहने उतार दिए। उन्हें गजपति ने हाथ में लेकर कहा—हमने तार देकर तीन आदमी पञ्जाब से तुम्हारे लिए बुलाए हैं। वे आज रात को आ जावेंगे। एक तो आ भी गया है, अब यह तुम्हारी पसन्द पर है, जिसे चाहो पसन्द करो।

इतना कह और बिना उत्तर की प्रतीक्षा किए, उसने उसे पीछे को ढकेल दिया। जब तक वह सम्हले, उन्होंने बाहर निकल कर साँकल चढ़ा दी और कहा—भागने की चेष्टा के भय से ऐसा किया गया है। बुरा न मानना, अभी विवाह को ना-नू करती हो, जब सुन्दर जवान देखोगी तो ख़ुश हो जाओगी। दिन भर पड़ी-पड़ी सोच लो।

इतना कह कर तीनों चल दिए। युवती भौंचक सी खड़ी रह गई। फिर वह ज़ोर-ज़ोर से किवाड़ों पर हाथ मारने और चिल्ला-चिल्ला कर रोने लगी।

४

"देखो सावित्री, आज तुम्हारी फिर शादी निश्चय हो गई है। और इस बार भी तुम्हें वही चालाकी करनी होगी। तुम कुछ नई तो हो नहीं, सब बातें जानती हो।"

"अब इस बार मुझे कहाँ जाना होगा?"

"दूर नहीं, करनाल के पास एक क़स्बे में।"

"हे ईश्वर, वहाँ मेरा दिल कैसे लगेगा?"

"दिल की एक ही कही, १०-१५ दिन नहीं काट सकती हो?"

"माल-मलीदे तो ख़ूब मिलेंगे?"

"ख़ूब"

"और वह उल्लू?"

"वह एक बूढ़ा खूसट है, ख़ूब बनाना।"

"कुछ झगड़ा-बखेड़ा तो खड़ा न होगा?"

"झगड़ा क्या होगा!"

"ख़ैर, मुझे क्या मिलेगा?"

"सैर-सपाटा, माल-टाल और बढ़िया साड़ी, जूता-मोज़ा और ३-४ अदद नए गहने।"

"और रुपए? रुपए इससे न जमा कराए जावेंगे?"

"५०० तो बँधी बात है, उसका क्या कहना है।"

"पर इस बार सब रुपए मैं लूँगी।"

"यह कैसे हो सकता है, पहले की भाँति अद्धम-अद्धा पर सौदा होगा।"

"अच्छी बात है, मुझे मञ्जूर है।"

"तब नहा-धोकर सिङ्गार-पिटार कर लो। उल्लू को सामान का पर्चा उतरवा दिया है, लेकर आता ही होगा। साड़ी तुम स्वयं पसन्द कर लेना।"

उपरोक्त बातचीत विधवाश्रम की अधिष्ठात्री देवी और एक युवती में हो रही थी। बातचीत करके अधिष्ठात्री जी चली गईं और युवती कुछ सोच कर हँस पड़ी। उसने उँगली पर आप ही आप गिन कर कहा—एक-दो-तीन! यह तीसरा उल्लू है। इसमें भी ख़ूब मज़ा है। थोड़ी देर तक वह अपने भूतकाल को सोचने लगी। वह वर्तमान जीवन से उसका मुक़ाबिला करने लगी। क्या यह अच्छी बात है? पति के घर में कैसी सुखी थी, ज़रा सी बात पर लड़ कर निकल भागी—और ये दुष्ट मुझे फाँस लाए। अब यहाँ अजीब शादियाँ होती हैं, रुपए गाँठ में करो, दुलहिन बनो, ब्याह करो और फिर चकमा देकर भाग आओ। फिर ब्याह कर लो। पकड़ी जाओ तो कह दो कि ज़ुल्म करता है, मारता है। जय गङ्गा जी की!

युवती फिर ज़रा हँस दी। फिर कुछ सोचने लगी। थोड़ी देर में उसने एक कहारी को पुकार कर कहा—ज़रा बलवन्त को तो बुला दे।

बलवन्त एक ३० वर्ष का हट्टा-कट्टा, किन्तु मैला-कुचैला आदमी था। उसकी आँखें छोटी, नाक पतली और लम्बी, माथा तङ्ग और रङ्ग पीला था। उसके दाँत बड़े गन्दे थे, और मूँछें बड़ी बेतरतीब थीं। वह ठिगना, ज़रा मोटा और बेहूदा सा आदमी था। उसने आकर ज़रा हँस कर कहा—क्या हुक्म है?

"वही मामला है, बस समझ लो।"

"सब समझ चुका हूँ। सुन लिया है।"

"बताओ, फिर क्या करना होगा?"

"करना-धरना क्या है, ज़रा शर्मीली नवेली बन कर चली जाओ। १०-१ दिन ख़ूब शर्मीली बनी रहना, बूढ़े को अच्छी तरह सुलगाना। ५-७ गहने वसूल करना, उसे रिझाना। मौक़ा पाकर चिट्ठी में भागने की तारीख़ लिखना—समय भी लिख देना। समय वही सन्ध्या का ठीक है, मैं गली में मिल जाऊँगा, सवारी तैयार रहेगी। हम लोग अगले स्टेशन से सवार होंगे। ५-७ दिन पहले की भाँति सैर करेंगे, फिर यहाँ आ जावेंगे।" बलवन्त युवती को घूर कर हँस दिया। युवती ने नटखटपने से हँस कर कहा—"बस, इस बार तुम्हारे चकमे में मैं नहीं आने की, सैर-सपाटा नहीं होगा, मैं सीधी यहीं आऊँगी।"

"कैसी बेवक़ूफ़ हो, जब वह यहाँ ढूँढ़ने आवेगा, तब क्या होगा?"

"मैं क्या जानूँ!"

"बस, तो जब ऐसी अनजान हो तो जैसा हमारा बन्दोबस्त है, वह करो। तुम्हारे ग़ायब होते ही वह सीधा यहीं दौड़ेगा। और आश्रम का कोना-कोना छान कर चला जायगा। बस आश्रम की ज़िम्मेदारी ख़तम। फिर दूसरा उल्लू देखेंगे?"

"और इतने दिन तुम अपनी मनमानी करोगे।"

"देखो प्यारी, मेरे विषय में ऐसी बात न कहो। दो-दो बार तुम्हारे लिए मैं जान हथेली पर धर चुका हूँ। तुम्हें मैं दिल से चाहता हूँ। अन्त में तो और दो-चार खेल खेल कर तुम मेरी होगी?"

"चलो हटो, मैं तुम्हारा मतलब ख़ूब जानती हूँ। तुमने जानकी से भी ऐसे ही कौल-क़रार किए थे। आख़िर जब झगड़ा पड़ा तो साफ़ बच गए—बेचारी को जेल जाना पड़ा।"

"नहीं प्यारी, ऐसा न कहो—क़सूर उसी का था।"

"ख़ैर, जाने दो। तो अब क्या बात पक्की रही?"

"वही, जो मैं कह चुका हूँ।"

"मैं तुम्हें ख़त लिखूँगी।"

"हाँ, उसमें इशारा भर कर देना कि कौन तारीख़।"

"अच्छी बात है।"

"बाक़ी सब काम मैं स्वयं कर लूँगा।"

"बहुत अच्छा।"

"पर, आज................."

"चलो हटो, आज मेरी शादी है, ऐसी बातें न करो।"

"अच्छा देखा जायगा।"—यह कह कर दुष्टतापूर्ण सङ्केत करके वह चला गया।

५

"महाशय जी, ५००) तो मैं जमा कर चुका, अब ये दो सौ किस लिए माँगे जाते हैं?"

श्री० सी० बी० तारपोरवाला, बी० ए०, बी० एस-सी०, सी० ए० आई० बी० (लन्दन)

आप हैदराबाद स्टेट के अर्थ-विभाग के सहायक मन्त्री नियुक्त हुए हैं।

"महाशय जी, वे २००) रु० तो स्त्री-धन हैं। यदि तुम उसे त्याग दो, उस पर ज़ुल्म करो, उसे दग़ा दो तो वह क्या खाएगी, वह तो कहीं की न रही न; इसका तुम्हें अभी इक़रारनामा लिखना पड़ेगा।"

"ख़ैर, वह मैं लिख दूँगा, कहीं घर-गृहस्थ में ऐसा भी होता है। महाशय जी, मैं गृहस्थ आदमी हूँ, लुच्चा-लुङ्गाड़ा नहीं।"

"तभी ऐसी देवी आपको दी गई है, दुनिया में चिराग़ जला कर भी देखोगे तो ऐसी लड़की न मिलेगी।"

"यह आपकी मेहरबानी है।"

"तब लीजिए यह रहा इक़रारनामा—दस्तख़त कीजिए। आओ जी तुम बलवन्त, गवाही कर दो। एक गवाही और चाहिए। अधिष्ठात्री देवी जी को बुला लो, वे कर देंगी। हाँ, वे दो सौ ?"

"वे दो सौ किस मद में जावेंगे ?"

"आश्रम की मद में। महाशय जी, आश्रम का ख़रचा कहाँ से चलता है, यह तो सोचिए। लड़कियों पर महीनों रख कर उन पर कितना ख़र्च किया जाता है। उनकी शिक्षा—परवरिश, उनके कुसंस्कारों को दूर करके उनके विचारों को शुद्ध करना, उन्हें आदर्श गृहिणी बनाना—यह सब मामूली बात थोड़े ही है। ये दो सौ रुपए आश्रम को दान समझिए, इनकी आपको रसीद मिलेगी। ख़ातिर-जमा रखिए।"

"मगर मैं आश्रम को तो २०) प्रथम ही दे चुका हूँ।"

"वह तो दाख़िला फ़ीस थी महाशय जी, यह तो आश्रम का नियम है कि जब कोई विवाहार्थी आवे तो फ़ीस दाख़िला लेकर तब विवाह की चर्चा चलाई जाय।"

"मगर महाशय जी, ये दो सौ रुपए तो भार मालूम देते हैं।"

"यह आप क्या कहते हैं ? संस्था को देने में आप इधर-उधर करते हैं। सोचिए, यदि संस्था न होती तो कितनी देवियाँ धर्म-भ्रष्ट होतीं, और आपकी सेवाएँ भी कैसे हो सकती थीं।"

अधिष्ठाता उर्फ़ पिता जी और वर में उपरोक्त घिस-फिस बड़ी देर तक होती रही और तब उन्होंने २००) के नोट गिन दिए। इसके बाद ही, स्वस्ति-वाचन शान्ति-प्रकरण का ज़ोर-शोर से पाठ हुआ। अग्नि प्रज्वलित हुई, दुलहिन आई और पवित्र वैदिक रीति से विवाह-कार्य सम्पन्न हुआ। विवाह होने पर अधिष्ठाता जी बोले—१५) और दीजिए !"

"यह किस लिए ?"

"५) पण्डित जी की विवाह-दक्षिणा। ५) की साड़ी अधिष्ठात्री देवी जी के लिए और ५) की मिठाई लड़कियों के वास्ते।"

कुछ अनमने होकर १५) भी दे दिए। इसके बाद उन्होंने घड़ी देख कर कहा—अब आप बिदा की तैयारी करा दीजिएगा। गाड़ी जाने में अधिक देर नहीं है।

"पर अभी तो प्रीति-भोज होगा।"

"बस प्रीति-भोज रहने दीजिए।"

"ऐसी जल्दी नहीं। सब तैयार है। भला बिना भोजन विवाह कैसा ?"

प्रीति-भोजन का आयोजन हुआ। पुरोहित, अधिष्ठाता और अल्लम-ग़ल्लम, जो वहाँ उपस्थित थे, सभी बैठे। भोज समाप्त होते ही, हलवाई ने बिल अधिष्ठाता जी को दे दिया, उन्होंने एक नज़र डाल कर वर महाशय की तरफ़ सङ्केत करके कहा—आपको दो।

वर महाशय ने घबरा कर कहा—अब यह क्या है ?

"अभी प्रीति-भोज हुआ न, उसी का बिल है।"

"यह भी मुझे चुकाना पड़ेगा ?"

"वाह महाशय जी, यह ख़ूब कही, विवाह आपका होगा तो क्या बिल और कोई चुकावेगा ?"

"इसका पेमेण्ट तो आश्रम को करना चाहिए।"

"वाह, आश्रम तो आप ही की संस्था है, वह यह भार कैसे उठा सकती है। सोचिए तो।"

वर महाशय ने ज़रा गुनगुने होकर बिल चुका दिया और कहा—अब आप ज़रा जल्दी कीजिए, गाड़ी के जाने में वक़्त बिलकुल नहीं रहा है।

"बस अब विलम्ब क्या है। विवाह आपका शुभ हो।"

इसके थोड़ी देर बाद ही वर-वधू बिदा हुए। वधू ने हँस-हँस कर सब से हाथ मिलाए। किसी-किसी से घुस-पुस बातें कीं और पतिदेव के साथ खट से कूद कर ताँगे पर चढ़ गई।

यह असल वैदिक विवाह का प्रताप था कि वधू रोई नहीं, चिल्लाई नहीं, घूँघट दिया नहीं, शर्माई नहीं। बोलो वैदिक धर्म की जय !!

६

"कहिए, आपका क्या काम है ?"

"मुझे आपसे एकान्त में कुछ कहना है।"

"यहाँ एकान्त ही है, निस्सङ्कोच कहिए। इन लोगों से कुछ छिपा नहीं।"

"आपसे मैं एक सहायता लेना चाहता हूँ।"

"कहिए भी, क्या सहायता ?"

"एक लड़की का उद्धार करना है।"

"कहाँ से ?"

"वेश्या के घर से।"

"वह लड़की कौन है ?"

"उसी वेश्या की कन्या।"

"आप क्यों उद्धार किया चाहते हैं ?"

"वह वहाँ रहना और कुकर्म कराना नहीं चाहती। उसकी माँ उसे मजबूर कर रही है, पर वह पसन्द नहीं करती।"

"वह क्या चाहती है ?"

"आप किस तरह काम करना चाहते हैं—ख़ुलासा कहिए।"

"सुनिए, मैं किसी तरह उसे वहाँ से निकाल लाऊँगा, बाज़ार में सौदा ख़रीदने के बहाने। उसकी माँ मुझ पर विश्वास करती है, भेज देगी। फिर मैं उसे डिप्टी कमिश्नर के पास भेज दूँगा। वहाँ वह कह देगी कि मेरी माँ मुझसे बुरा काम कराना चाहती है—उससे मुझे बचाया जाय। जब उससे पूछा जायगा कि तू कहाँ जाना चाहती है, तब वह आश्रम में आने को कह देगी। आप यहाँ रख लें, और हम जिस आदमी से कहें उसकी शादी उसी रात को कर दें। ये दो सौ रुपए आपकी नज़र हैं।"

मङ्गलोर के महिला-क्लब की सदस्याओं का ग्रुप

जो मद्रास के गवर्नर की धर्मपत्नी के निरीक्षण के समय लिया गया था। बीच में हर एक्सेलेन्सी लेडी बीट्रिक्स स्टानली बैठी हैं।

"किसी भले आदमी से ब्याह करना चाहती है।"

"वह भले आदमी शायद आप हैं।"

"जी नहीं, मैं तो ऐसा कर ही नहीं सकता। आप जानते हैं, ज्ञात-बिरादरी का मामला है।"

"तब फिर आपको उसकी इतनी चिन्ता क्यों है ? लाखों वेश्याओं की लड़कियाँ यही करती हैं।"

"मैं सिर्फ़ इसका उद्धार चाहता हूँ, और आपकी सेवा से भी बाहर नहीं।"

"और वह आदमी कौन है ?"

"मेरा नौकर है।"

"समझ गया, इस ढङ्ग से आप उस लड़की पर अधिकार करना चाहते हैं। मगर वह नौकर शादी होने पर आपके हत्थे क्यों लड़की को चढ़ने देगा ?"

"वह ८) रु० माहवार पाता है। उससे हमने ज़बानी तय कर लिया है कि लड़की पर उसे कोई दख़ल नहीं होगा। इक़रारनामा लिखा लिया है कि इसकी मर्ज़ी

के माफ़िक़ अगर मैं इसका भरण-पोषण न कर सकूँ तो लड़की को स्वतन्त्र रहने का अधिकार है। वह इक़रारनामा मेरे पास है।"

"बड़े उस्ताद हो। २००) लाए हो?"

"ये हाज़िर हैं।"

"जाओ अपना काम करो, लड़की को यहाँ भेज दो। मगर देखो, वह इस शादी में ना-नू तो न करेगी?"

"ज़रा भी नहीं।"

"तब ठीक।"

७

विधवा-आश्रम का आज वार्षिकोत्सव था। सभा-स्थान ख़ूब सजाया गया था। लाल-पीले कपड़ों पर वेद-मन्त्र लिख कर लटका दिए गए थे। धर्म और सत्यकर्म का प्रवाह बह रहा था। 'नमस्ते' की गूँज आसमान चीर रही थी। बहुत सी स्त्रियाँ और पुरुष एकत्रित थे। सभास्थल खचाखच भर रहा था। थोड़ी देर बैण्ड बज चुकने के बाद सभा की कार्यवाही प्रारम्भ हुई। भीतरी ओर का एक छोटा सा दरवाज़ा खुला और उसमें से ५-६ आदमी निकले। ये सब अन्तरङ्ग सभा के सदस्य थे। इन्हीं में हमारे पूर्व परिचित डॉक्टर साहब तथा अन्य सत्पुरुष भी थे।

उनके आते ही सभा में तालियों की गड़गड़ाहट से सभा-भवन गूँज उठा। इसके बाद ही लाला जगन्नाथ जी ने चिल्ला कर कहा—"मैं प्रस्ताव करता हूँ कि आज की सभा में हमारे परम श्रद्धास्पद, आदरणीय श्री० डॉक्टर साहब सभापति का स्थान ग्रहण करें।" गजपति ने प्रस्ताव का अनुमोदन किया। अब डॉक्टर साहब भाँति-भाँति के मुँह बनाए, उसी प्रकार टेढ़ी गर्दन किए, विविध रीति से शिष्टाचार प्रदर्शन करते हुए अति दीन-भाव से सभापति के आसन पर जा बैठे। मानो उन्हें फेर सी लगाई जा रही थी। उनके आसीन होते ही फिर तालियाँ बजीं। अब एक महाशय जी बड़ा सा साफ़ा सिर पर लपेटे उठ खड़े हुए और बड़े गर्वीले ढङ्ग से खड़े होकर एक भजन गाना प्रारम्भ किया। भजन क्या था, गद्य-पद्य का सम्मिश्रण था। न सुर, न ताल। वे ख़ूब चीख़-चीख़ कर गाने लगे और साथ ही हारमोनियम बजाने लगे। हारमोनियम भी ख़ूब चीख़ रहा था। अन्ततः लोगों के कानों के पर्दे फटने लगे और वह गायन समाप्त हुआ। इसके बाद डॉक्टर साहब ने खड़े होकर वक्तृता देनी प्रारम्भ की :—

"भाइयो और देवियो!

आज आपके आश्रम का द्वितीय वार्षिक उत्सव है। इस अवसर पर इतने आदमियों को एकत्रित देख कर मैं फूला नहीं समाता हूँ। अभी मन्त्री जी आपको रिपोर्ट सुनाएँगे। उससे आपको मालूम होगा कि अधोगति के मार्ग में पतित भ्रष्टा स्त्रियों को पतन के महापङ्क से उद्धार करने में आश्रम ने कितनी समाज की सेवा की है। ईश्वर की कृपा और आप लोगों की सहानुभूति से संस्था ख़ूब सफल हो रही है (हर्षध्वनि), परन्तु अभी लाखों-करोड़ों अनाथा विधवाएँ हैं, जिनका उद्धार होना बाक़ी है (सुनो-सुनो)। काम बड़ा कठिन है, और उसे यह आश्रम ही पूरा कर सकता है। सज्जनो, आर्य-पुरुषो, क्या आप इस आश्रम से सहानुभूति नहीं चाहते? (हर्षध्वनि) क्या आप इसकी हस्ती को क़ायम रखना चाहते हैं? (अवश्य-अवश्य) तब मैं आशा करता हूँ कि आप अपनी जेबों में जो हाथ आश्रम के नाम पर डालेंगे, वह ख़ाली बाहर न आवेगा। आपको यह स्मरण रखना चाहिए कि जो-जो महाशय चन्दा देंगे, उनका नाम-ठिकाना सब समाचार-पत्रों में छपा दिया जावेगा। इसके बाद आपने लम्बे भाषण में यह साबित कर दिया कि यह संस्था कितनी पवित्र है और आर्य-समाज के सिद्धान्तों की रक्षा के लिए ऐसी संस्थाओं की बड़ी भारी आवश्यकता है।"

आपके बैठते ही—प्रबल ताली की घोषणा से सभा-मण्डप गूँज उठा। इसके बाद मन्त्री महोदय वार्षिक रिपोर्ट पढ़ने के लिए उठ खड़े हुए।

रिपोर्ट पढ़ने से पता लगा कि गत वर्ष की अपेक्षा इस वर्ष १,९००) की अधिक आय हुई है (हर्षध्वनि)। इस वर्ष कुल ५,४७५॥-)॥ आमदनी हुई है। और ५,४७५।)॥ ख़र्च हुए हैं। रोकड़ ।-) बाक़ी बचा है। इनमें कर्मचारियों का वेतन-खाते ३२००) और मकान-भाड़ा और स्टेशन के खाते १३००), मुक़दमे खाते ८००), छपाई खाते २००) रु० ख़र्च हुए हैं। ७५।)॥ फुटकर ख़र्च खाते में आए हैं। यद्यपि ।-) की रक़म जो हाथ में बची है, बहुत कम है, फिर भी वह बचत तो है। ईश्वर की कृपा से हमारी संस्था को क़र्ज़ नहीं लेना पड़ा है।

रिपोर्ट ख़तम होते ही फिर तालियों की ध्वनि से सभा-भवन गूँज उठा। इस बीच में एक आदमी ने खड़े होकर कहा—"मुक़दमे में ८००) की बड़ी रक़म ख़र्च होने का कारण क्या है?" सभापति ने कहा—"कृपा कर बैठ जाइए, सभा के काम में गड़बड़ी न कीजिए।" उसने एक न सुनी। कड़क कर कहा—"महाशय, मैंने गत वर्ष ५००) तक दिया था, और बीच-बीच में भी मैं संस्था को सहायता देता रहा हूँ। सो क्या मुक़दमेबाज़ी में ख़र्च करने के लिए? मैं यह जानना चाहता हूँ कि जनता के धन का दुरुपयोग तो नहीं किया जा रहा है।"

मन्त्री जी ने कहा—हमारे पूज्य प्रधान जी, डॉक्टर साहब पर एक मामूली औरत के भगाने का मुक़दमा खड़ा किया गया था। इसके सिवा हमारे विश्वासी कर्मचारी गजपति के विरुद्ध भी दो ऐसे ही झूठे मुक़दमे खड़े कर दिए गए थे। यह बात सभी जानते हैं कि उक्त दोनों सज्जन संस्था के कितने सहायक हैं। इसलिए विवश हो, हमें पैरवी करनी पड़ी और यह रुपया ख़र्च करना पड़ा।

इतने में एक दूसरे आदमी ने खड़े होकर कहा—और वेतन खाते तो आपने ३ हज़ार से अधिक रक़म डाली है, इसका ब्यौरा क्या है? जितने उच्च अधिकारी हैं, वे तो सभी अवैतनिक हैं, फिर इतनी रक़म क्या की जाती है?

यह सुनते ही सभापति ने खड़े होकर कहा—महाशय, यह तो सभा के काम में पूरा विघ्न हो रहा है। कृपा कर आप बैठ जाइए।

चारों तरफ़ से शोर मच गया—"बैठा दो, निकाल दो, चुप कर दो।" उक्त महाशय ग़ुस्से से आग-बबूला होकर उठ कर बाहर चले गए।

सेक्रेटरी महाशय फिर रिपोर्ट पढ़ने लगे। इस पर एक और आदमी उठ कर कुछ कहने लगा।

सभापति ने कड़क कर कहा—महाशय! इस भाँति बारम्बार बेहूदे ढङ्ग से सभा के काम में विघ्न करना अनुचित है। मैं उपस्थित भाइयों से पूछता हूँ—क्या आप इस बात को पसन्द करते हैं?

चारों तरफ़ 'नहीं-नहीं' का शोर मच गया और वह आदमी भी उठ गया।

इसके बाद आश्रम के कार्यों के कुछ उदाहरण सुनाए गए।

रजवन्ती एक तेलिन थी। उसकी उम्र २२ वर्ष की थी। उसका पति उसे अच्छी तरह नहीं रखता था। उसे आश्रम में आश्रय दिया गया। और सरकार से लिखा-पढ़ी करके पति से बेदख़ल कर दिया गया, फिर उसका विवाह एक अच्छे युवा से कर दिया गया। उसने २००) आश्रम को दिया।

एक मुसलमानी स्त्री अज़ीमन स्टेशन पर कहीं जा रही थी। उसके गोद में एक बालक भी था। उसे हमारे उत्साही कार्यकर्त्ता गजपति जी आश्रम में ले

स्वर्गीय लेफ़्टिनेण्ट कर्नल एन० एस० सिम्पसन, आई० एम० एस०

आप बङ्गाल की जेलों के इन्स्पेक्टर-जनरल थे, जो विगत ८ वीं दिसम्बर को बङ्गाल के क्रान्तिकारियों की गोली के शिकार हुए थे।

आए, और समझा-बुझा कर, उसे शुद्ध कर उसका विवाह एक युवक से कर दिया। उसके पति ने मुक़दमा चलाया, पर जीत हमारी ही हुई।

गुलाबो वैश्य-कन्या थी। उसका पति कमाऊ न था। उसे खाने-पीने का कष्ट था। उसने हमारे परम श्रद्धास्पद डॉक्टर साहब को पत्र लिखा कि मुझे कहीं ठिकाना करवा दो। बस उसे वहाँ से किसी तरकीब से मँगवा लिया गया और उसका विवाह उसकी पसन्द के एक आदमी से कर दिया गया।

राजो नामी एक २३ वर्ष की स्त्री थी। वह व्यभिचारिणी हो गई थी। उसे कोई उपदेशक फुसला लाया था। कुछ दिन वह उसके घर में रही। पीछे न जाने कैसे उसे शराब पीने की आदत पड़ गई। वह वहाँ से भाग आई और आश्रम में पहुँचाई गई। यहाँ हमारे आदरणीय डॉक्टर साहब ने उसे एकान्त में बहुत कुछ धर्मोपदेश दिया और उसे सुशिक्षा दी। पर वह दुष्टा डॉक्टर साहब के ऊपर ही कुकर्म का दोषारोपण करने लगी। इसके बाद वह स्थिर हुई और उसका ब्याह एक योग्य पुरुष के साथ कर दिया गया। उसने उसके साथ असद् आचरण किया, तो वह फिर आश्रम में आ गई। आश्रम की तरफ़ से उस पुरुष पर मुक़दमा चला दिया गया। उसने १०००)रु० देकर डर कर फ़ैसला कर लिया। आधा उसमें से आश्रम को दिया गया। अब फिर उस स्त्री का विवाह किया जायगा।

इन उदाहरणों को सुन कर सभा में हलचल मच गई। और लोग बारम्बार धन्यवाद देने लगे। सभापति की प्रशंसाओं के पुल बँध गए। और संस्था की सदुपयोगिता की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई। इसके बाद ही चन्दे की वर्षा शुरू हुई और मेज़ पर रुपयों और नोटों का ढेर लग गया।

८

दो आदमी चुपचाप बातें करते सड़क से जा रहे थे। सन्ध्या का समय था। एक ने कहा—बस ठहर जाओ। यही वह घर है। वह खिड़की देखते हो, वहीं है वह।

"वह तो बन्द है।"

"अवश्य वह खोलेगी। मैं तीन दिन से देखता हूँ। वह बार-बार इशारा करती है।"

"यार क्यों बेपर की उड़ाते हो। ऐसे ख़ूबसूरत भी नहीं हो, जो कोई औरत तुम पर मरे—फिर वह महलों में रहने वाली।" इतने में खिड़की खुली और एक औरत उसमें दीख पड़ी।

उस आदमी ने मित्र की बात ख़तम होते ही कहा—देखो, वह देखो।

दोनों ने देखा। वह कुछ सङ्केत कर रही थी।

अब कुछ देर उधर देख, एक बग़ल खड़े होकर उनमें से एक ने सङ्केत किया। सङ्केत का उत्तर सङ्केत में दिया गया। अब दोनों को सन्देह नहीं रहा। परन्तु एक ने कहा—"भाई, देखो यह मामला कुछ और ही ढङ्ग का मालूम देता है, प्रेम का नहीं। वरना वह औरत दो आदमियों को सङ्केत न करती।" यह कह कर उसने फिर उस स्त्री को सङ्केत किया। स्त्री का सङ्केत पाकर उसने कहा—"ठहरो, सब ठीक हुआ जाता है। अभी हमें एक पुलिस का कॉन्स्टेबिल बुलाना पड़ेगा।" वह लपक कर एक कॉन्स्टेबिल को बुला लाया। कॉन्स्टेबिल ने खिड़की की तरफ़ देखा—वह स्त्री वहीं खड़ी थी और सङ्केत कर रही थी। उसने कहा—"ज़रूर यह औरत बदमाशों के अड्डे में क़ैद है। ठहरो, पहले यह देखना है कि यह मकान है किसका।"

कॉन्स्टेबिल ने तुरन्त ही पता लगा लिया और उन आदमियों से कहा—तुम लोग यहीं रहो, मैं थाने से मदद लेकर आता हूँ, मकान पर धावा बोलना पड़ेगा।

थोड़ी ही देर में दो कॉन्स्टेबिलों को लेकर पुलिस-इन्स्पेक्टर आ गया, और सब लोग आश्रम के द्वार पर जा धमके। द्वार पर धक्के देने पर एक आदमी ने द्वार खोला। पुलिस को देख कर वह घबरा कर बोला—"आप क्या चाहते हैं?"

"मैनेजर साहब कहाँ हैं?"

"डॉक्टर जी हैं, वे भीतर हैं।"

"उन्हें ज़रा बुलाओ!"

चपरासी भीतर गया। डॉक्टर साहब की सुन कर फूँक निकल गई। वे बाहर आए और बिलैया-दण्डौत करके कहने लगे—जनाब, आपको भ्रम हुआ है, यहाँ ऐसी कोई वारदात नहीं है।

"मगर मैं मकान की तलाशी लेना चाहता हूँ।"

"आप ऐसा नहीं करने पावेंगे।"

इन्स्पेक्टर ने डॉक्टर को पीछे ठेल दिया और वे घर में घुस गए। वे सीधे उसी कमरे में पहुँचे। बाहर ताला बन्द था। कहा—इसमें कौन है?

"इसमें एक बाबू साहब का सामान बन्द है।"

"वे कहाँ हैं?"

"बाहर गए हैं?"

"इसकी ताली कहाँ है?"

"वह उन्हीं के पास है।"

"अच्छी बात है"—इन्स्पेक्टर ने एक कॉन्स्टेबिल से कहा—"ताला तोड़ दो।"

डॉक्टर साहब के विरोध करने पर भी ताला तोड़ दिया गया। देखा, उसमें तीन कोठरियों में ३ स्त्रियाँ क़ैद थीं। उन्होंने बयान दिए कि हमें फुसला कर लाया गया है और शादी करने को राज़ी न होने पर बन्द कर दिया गया है।

अधिष्ठाता जी उर्फ़ डॉक्टर जी उर्फ़ पिता जी, और धरमपुत्री जी उर्फ़ अधिष्ठात्री देवी जो तथा गजपति जी और बलवन्त तथा उक्त तीनों स्त्रियों को साथ ले पुलिस-इन्स्पेक्टर थाने को चल दिया। धर्मात्मा हाजत की शोभा-वृद्धि करने लगे।

६

कई स्त्रियों के ग़ायब होने की रिपोर्ट पुलिस में प्रथम ही से पहुँची हुई थी, पुलिस ने स्त्रियों से पूछ कर उनके वारिसों को बुला लिया। और सब सबूत तैयार होने पर मैजिस्ट्रेट के सामने मुक़दमा दायर किया गया।

मैजिस्ट्रेट के सामने पहुँच कर तो डॉक्टर साहब ने गम्भीर धर्म-भाव धारण कर लिया। "धरमपुत्री" जी बड़ी सीधी गऊ बन गईं। गजपति ने रोनी सूरत बना ली। तीनों स्त्रियाँ लज्जा से सिकुड़ी खड़ी थीं। आख़िर औरतों को उड़ाने, उन्हें बेचने और ज़बर्दस्ती बन्द कर रखने का मुक़दमा चला।

मैजिस्ट्रेट ने, बारी-बारी से तीनों स्त्रियों के बयान लिए—

एक ने कहा :—

"मेरा नाम रामकली है। मैं हैदराबाद दक्खिन से आई हूँ। पर मेरा असली वतन कानपुर है। ज़ात की ब्राह्मण हूँ। मेरा पति हैदराबाद में नौकर था, वह वहीं मर गया। तब एक पड़ोस के भले घर में मैं मिहनत-मजूरी करके गुज़र करने लगी। उस घर के मालिक की मेरे ऊपर बुरी नज़र पड़ी, उन्होंने मुझे तङ्ग करना शुरू कर दिया। अन्त में उन्होंने मेरा धर्म भ्रष्ट कर दिया। उन्होंने बड़े-बड़े सब्ज़ बाग़ दिखाए थे। पर थोड़े ही दिन में उनका बर्ताव बदल गया। उन्होंने मुझे पढ़ने की सलाह दी, मुझे वह पसन्द आ गई। उन्होंने कहा कि हम तुझे दिल्ली-आश्रम में भेज देते हैं, वहाँ बहुत अच्छा बन्दोबस्त है। मैंने स्वीकार किया। वे मुझे मन्त्री आर्य-समाज के पास ले गए। उन्होंने मुझे लिखा-पढ़ी करके यहाँ पहुँचा दिया। यहाँ इन लोगों के रङ्ग-ढङ्ग देख कर मैं घबरा गई। मन्त्री जी ने कहा था कि वहाँ आर्य देवियाँ रहती हैं—विद्या पढ़ाई जाती है, और सन्ध्या, हवन नित्य-कर्म होते हैं। पर यहाँ देखा तो कुट्टनख़ाना है, गुण्डों का राज्य है। वे भले घर की बहिन-बेटियों को फुसला कर लाते हैं और दस-पाँच दिन खिला-पिला कर बेच देते हैं। मेरा भी सौदा होने लगा। २-३ आदमी भी बुलाए गए। रुपए भी वसूल कर लिए, पर मैं मर्दों की दुष्टता को जान चुकी हूँ। मैं इन पर विश्वास नहीं करती, न उनकी दासी

"सङ्गठित मुस्लिम राज्य" का स्वप्न देखने वाले
सर मोहम्मद इक़बाल, बार-ऐट्-लॉ, एम० एल० सी०

बनना चाहती हूँ। फिर मेरी क़िस्मत में जो होना था हो गया। मैं विद्या पढ़ कर कहीं अध्यापिका की नौकरी करना चाहती थी जिससे गुज़र हो जाती, परन्तु ये लोग तो बेचने को पागल हो रहे थे। मुझे बहुत डराया-धमकाया, पर जब मैं राज़ी न हुई, तब बन्द कर दिया। मैं ७ दिन बन्द रही। दो बार मुझे पीटा भी गया। एक बार यह गजपति ज़बर्दस्ती करने को मेरी कोठरी में घुस आया, उससे बड़ी कठिनाई से जान बचाई। मैंने उसकी बाँह में काट खाया था, उसका निशान अवश्य होगा। यह अधिष्ठात्री देवी कहाती हैं, पर पूरी चुड़ैल हैं।

ये उसका ज़ख्म आँखों देखती और खिलखिला कर हँसती थीं। नित्य ही वहाँ ऐसा होता है। उस दिन से मुझे खाना भी नहीं दिया गया है और मार डालने की धमकी दी जाती थी।"

मैजिस्ट्रेट ने पूछा—तुम्हारी उम्र क्या है?

रामकली—२२ वर्ष हुज़ूर।

मैजिस्ट्रेट—तुम्हारे पास कुछ गहना और दूसरा सामान भी था, जब तुम आई थीं?

राम०—जी हाँ हुज़ूर, २ अदद सोने तथा ४ अदद चाँदी के गहने थे, सबकी क़ीमत २००) होगी। वे सब इन्होंने छीन लिए। वहाँ कोष में जमा होंगे।

मैजिस्ट्रेट—और कपड़े वग़ैरा?

राम०—वह भी सब छीन लिया।

मैजिस्ट्रेट—अच्छा तुम इधर बैठो। दूसरी लड़की को लाओ।

दूसरी लड़की ने आकर बयान दिया:—

"मेरा नाम चम्पा है। उम्र १८ वर्ष की है। जाति की वैश्य हूँ। मेरे पिता बरेली में पुलिस-इन्स्पेक्टर थे। जब मैं ७-८ वर्ष की थी, तब कुछ लड़कियों के साथ खेल रही थी। इतने में एक आदमी आया, वह फ़ुसला कर हमें तमाशा दिखाने के बहाने थोड़ी दूर ले गया। हम तीन लड़कियाँ चलीं। थोड़ी दूर पर उसने एक ताँगा रोक कर कहा—"लो इस पर बैठ कर चलो, जल्दी पहुँच जायँगे।" हम लोग ताँगे पर बैठ गए। उसने एक मकान में हमें छोड़ दिया, वह बहुत बड़ा मकान था और उसमें बहुत सी लड़कियाँ थीं। हम कुछ दिन घर की याद में रो-पीट कर वहाँ रहने लगीं। बहुत दिन बीत गए और हम घर को भूल गईं। एक बार एक पञ्जाबी-सा मोटा-ताज़ा आदमी मेरे पास लाया गया। वह मुझे घूर-घूर कर देखने लगा—पीछे पता लगा, इससे मेरी शादी होगी। मैं डर गई, उस आश्रम में एक कहार का लड़का नौकर था, उसने कहा कि मेरे साथ शादी करे तो मैं तुझे यहाँ से निकाल दूँ। मैं राज़ी हो गई और वह वहाँ से एक दिन शाम को निकाल कर, रेल में बैठा कर मथुरा ले आया। हम लोग धर्मशाला में ठहर गए। न जाने क्यों पुलिस ने भाँप लिया कि यह भगा कर ले आया है। पुलिस उसके पीछे पड़ी। वह भाग गया, मैं अकेली रह गई। कहाँ जाऊँ, यह कुछ न बता सकी। पिता का स्मरण भी न रहा था। कहाँ हैं, कौन हैं। लाचार कुछ लोगों ने मुझे वहाँ के विधवाश्रम में भेज दिया। मैं फिर वहाँ रहने लगी।

"पर यहाँ के हालात बड़े गन्दे थे। खुला व्यभिचार होता था। पुलिस वाले आते और उन्हें लड़कियाँ रात भर को सौंप दी जाती थीं। एक बार पुलिस-इन्स्पेक्टर को मेरे कमरे में भेज दिया गया। मैं भय से थर-थर काँपने लगी। पेशाब का बहाना कर छत पर से कूद कर भागी। कुछ देर तो जमुना किनारे घाट पर छिपी रही, पीछे स्टेशन पर आई। वहाँ यह आदमी गजपति मुझे मिला। इसने मेरी सब कहानी सुन कर कहा कि तेरे बाप को मैं जानता हूँ। चल मैं तुझे वहाँ पहुँचा दूँ। यह मुझे दिल्ली ले आया और यहाँ आश्रम में रख दिया।

"यहाँ भी वही हाल देखा। पर इस बार मैं अपने को न बचा सकी। इस गजपति ने मेरा धर्म बिगाड़ दिया। यह रात-दिन वहीं रहता है और बिना इसकी इच्छा पूरी किए कोई लड़की अपनी इच्छानुसार काम नहीं कर सकती। यह बड़ा निष्ठुर नर-पशु है, नित्य दो-चार शिकार पकड़ लाता है। डॉक्टर बूढ़ा घाघ है, बेटी-बेटी करके ही सब कुकर्म करता है। उस दिन मुझसे कहा कि मेरे यहाँ रोटी पकाने के लिए आ जाना। जब गई तो बुरी-बुरी बातें कहने लगा। मैं वहाँ से अकेली ही भाग आई। अधिष्ठात्री देवी उनकी पुरानी चुड़ैल हैं। उन्होंने सब्ज़ बाग़ दिखा कर मुझे शादी करने को लाचार कर लिया। मैं राज़ी हो गई। गहने, कपड़े, रुपए मिलने की आशा थी। वह आदमी मेरठ के पास के किसी देहात का बनिया था। लोहे का काम करता था। उसकी औरत मर चुकी थी और उसे गर्मी की बीमारी हो गई थी। मुझे उससे बड़ी घृणा थी। पर वह मेरी बड़ी आव-भगत करता था। यह बात तय हो गई थी कि गजपति अमुक दिन वहाँ जायगा और मौक़ा पाकर उड़ा लाएगा। यही हुआ, और मैं फिर यहाँ लाई गई। वह भी आया, झगड़ा किया तो उसे डरा दिया कि तुमने लड़की को मार डालने की कोशिश की है, तुम पर फ़ौजदारी चलेगी। बेचारा भाग गया।

"फिर दूसरी जगह मेरा ब्याह कर दिया गया। और वहाँ से भी उसी भाँति भगा लाई गई। पर इस बार जिससे ब्याह हुआ था, वह आदमी मुझे पसन्द था; पर

ये लोग ज़बर्दस्ती ले आए। मैंने अपने गहने, कपड़े, रुपए माँगे और पति के पास जाना चाहा तो इन्होंने मुझे मारा और बन्द कर दिया। ६ दिन से मैं बन्द हूँ। गजपति रोज़ रात को मेरा धर्म नष्ट करता है, उससे मेरी पार नहीं बसाती।"

मैजिस्ट्रेट ने पूछा—तुम्हारे गहने, कपड़े, रुपए कहाँ हैं?

चम्पा—हुज़ूर इन्हीं के पास हैं।

मैजिस्ट्रेट—डॉक्टर को मालूम है?

चम्पा—हुज़ूर उसी के हुक्म से वे छीने गए हैं।

मैजिस्ट्रेट—अच्छा हटाओ, तीसरी को बुलाओ।

तीसरी ने आकर बयान दिया :—

"मेरा नाम गोमती है। आयु २५ वर्ष, ज्ञात वैश्य, रहने वाली ज़िला अलीगढ़ की हूँ। मेरे पति हैं, ससुर हैं और परिवार है। मैं राजघाट गङ्गास्नान करने गई थी, वहाँ साथ वालियों से भटक गई। यह गजपति मुझे माता-माता कह कर साथ ले आया। कहा, हम स्वयंसेवक हैं। चलो घर पहुँचा दें। इसके साथ दो औरतें और थीं। कहा, इन्हें पहुँचा कर तब तुम्हें पहुँचावेंगे। मैं क्या करती, चुप हो रही। यह मुझे दिल्ली ले आया। यहाँ रख दिया। यहाँ का हाल देख-देख कर मैं रोती और तक़दीर को ठोकती थी। पर डॉक्टर ने कहा—'देखो हमने तुम्हारे पति को तार दिया था कि इसे ले जाओ, तो जवाब आया है कि वह अब हमारे काम की नहीं रही। कहो, अब क्या कहती हो।' मैं ख़ूब रोई और मरने पर तैयार हो गई। तब इन्होंने धीरज दिया और १ महीने बाद मुझे मजबूर करके ब्याह कर दिया। मैंने समझा, तक़दीर में जो होना लिखा था, वही हुआ। मैं चली गई। पीछे यहाँ से एकाएक आदमी दौड़ा गया और बुला कर फिर ले आया। यहाँ आने पर पता लगा कि मेरे पति को पता लग गया था और वे पुलिस लेकर यहाँ आए थे, पर लौट गए। ये मुझसे एक लिखे हुए काग़ज़ पर दस्तख़त कराना चाहते हैं, पर मैं नहीं करती। मैं वहाँ भी नहीं जाना चाहती, जहाँ इन्होंने मेरा ब्याह किया था। मैं अपने घर जाना चाहती हूँ। इसीलिए इन्होंने मुझे बन्द कर रक्खा है। मुझे बन्द किए १० दिन हो गए। मैं खिड़की से नित्य राह चलतों को इशारे करती थी कि कोई छुड़ावे। आख़िरकार पुलिस ने आकर हमें छुड़ाया।"

मैजिस्ट्रेट ने पूछा—तुम्हारे साथ भी कुछ गहना आदि था?

गोमती—जी हुज़ूर, मेरे पास २ हज़ार के लगभग गहना था, वह सब इन्होंने जमा करने के बहाने ले लिया।

श्री० आपटे

आप बम्बई तिलक विद्यालय के आचार्य हैं, जिन्हें छः मास का कारावास-दण्ड दिया गया है।

"अच्छी बात है"—मैजिस्ट्रेट ने कहा, और उसे बैठा कर कहा—"अब गवाहों को बुलाओ।"

पुलिस-इन्स्पेक्टर ने गवाही दी :—

"मैं अमुक थाने में इन्स्पेक्टर हूँ। अमुक नम्बर के कॉन्स्टेबिल के कहने से मैंने आश्रम के मकान पर धावा मारा। ये लड़कियाँ ताले में बन्द मिलीं। तलाशी में

यह नक़दी, ज़ेवर और काग़ज़ात मिले। इन्हें लड़कियों ने शिनाख़्त से अपना बताया है।"

इसके बाद और भी २-३ गवाह लेकर मैजिस्ट्रेट ने कहा—अच्छा अभियुक्त क्या कहना चाहते हैं ?

डॉक्टर ने बयान दियाः—

"हुज़ूर, मैं पुराना आर्य-समाजी हूँ। सब लोग मुझे जानते हैं। मैं कभी झूठ नहीं बोलता। नित्य सन्ध्या-हवन करता हूँ। ये लड़कियाँ और गवाह सब झूठे हैं। विधवाश्रम बड़ी पवित्र संस्था है। स्त्रियों का उद्धार करना उसका उद्देश्य है। ये देखिए, छपे हुए सार्टिफ़िकेट हैं, जो बड़े-बड़े लोगों ने दिए हैं। मैं सबको धर्मपुत्री समझता हूँ। विवाह उनकी राज़ी पर ही होते हैं। गहने-कपड़े मैं सब देने को तैयार हूँ। मेरा उद्देश्य अधर्म का नहीं, धर्म का है। धर्म की जय होती है। यही ऋषि दयानन्द का मिशन है।"

गजपति ने कहा—"मैं इस मामले में कुछ नहीं जानता, सिर्फ़ क्लर्की करता हूँ।" अन्य अभियुक्तों ने भी इन्कार कर दिया।

मैजिस्ट्रेट ने फ़ैसला लिखा :—

"इस मुक़दमे के सम्बन्ध में मेरी मुख़्तसिर राय है कि ऐसे ही पाखण्डियों से सच्चे धर्म का अनिष्ट होता है। धर्म चाहे सनातन हो, चाहे आर्य-समाजी, या कोई भी समाजी—यदि उसमें सरलता, सत्यता और श्रद्धा तथा विश्वास है, तो वह प्रशंसनीय है। मैं यह जानता हूँ कि प्रत्येक मत में कुछ सच्ची लगन के सत्यवक्ता और कर्मिष्ठ आदमी हैं, जो वास्तव में प्रशंसा के योग्य हैं। इसके सिवा सभी सम्प्रदायों में कुछ पाखण्डी लोग भी होते हैं, जो भीतर कुछ और बाहर कुछ और होते हैं। पर अभियुक्तों जैसे पेशेवर अपराधियों की श्रेणी तो पृथक ही है। ये न केवल पेशेवर अपराधी ही हैं, प्रत्युत उसे किसी समाज या धार्मिक संस्था की आड़ में छिपा कर, उस संस्था का गौरव भी नष्ट करते हैं। निस्सन्देह समाज के लिए ऐसे आदमी कलङ्क-रूप हैं।

"यह बात तो सच है कि हिन्दू-समाज में स्त्रियों की दुर्दशा का अन्त नहीं है और वे चारों तरफ़ से प्रताड़ित होकर असहाय हो जाती हैं। उनकी सहायता के लिए ऐसे आश्रमों की स्थापना एक उच्च-कोटि के अस्पताल से कम पवित्र संस्था नहीं। मैं यह भी स्वीकार करता हूँ कि ऐसी संस्थाओं का सम्पर्क बहुधा भयानक पतिता स्त्रियों से पड़ना बहुत-कुछ स्वाभाविक है और उनके साथ थोड़ा अनैतिक व्यवहार होना भी असम्भव नहीं। विधवाओं के विवाह की उपयोगिता का कौन बुद्धिमान समर्थन नहीं करेगा। परन्तु अच्छी-बुरी सभी स्त्रियों को अवैध उपायों से फुसला कर इकट्ठा करना, उनके आचरण सुधारने तथा उन्हें शिक्षिता करने का कोई उद्योग न करके, रुपया लेकर लोगों को बेच देना; यही नहीं, उन्हें फुसला कर वापस बुलाना और दुबारा-तिबारा बेचना भयानक अपराध और जघन्य पाप है। ख़ास कर जब वह ऐसे आदमियों के द्वारा किया जाय, जिन पर जनता विश्वास करती और सत्पुरुष समझती है। यह सम्भव है कि संस्था को गुण्डों और दुष्ट स्त्रियों से साबक़ा पड़ता रहे, पर यह उचित नहीं कि वह गुण्डों के हाथ में आश्रम को सौंप दे, गुण्डों को अधिकारी बनाए। अभियुक्तों पर जो आरोप प्रमाणित हुए हैं—वे सङ्गीन हैं और ऐसे आदमी समाज के लिए भयानक हैं। मैं इन्हें उनकी दुष्टता के लिए डॉक्टर सुखदयाल को २ वर्ष और अन्यों को ६-६ मास का सपरिश्रम कारावास की सज़ा देता हूँ।"

दण्डाज्ञा सुनते ही डॉक्टर साहब तो उसी भाँति टेढ़ी ग न करके और बूढ़े बकरे की भाँति दाँत निकाल कर हँस दिए। परन्तु अधिष्ठात्री जी धाड़ मार कर रो दीं। गजपति भी ग़ुस्से से होंठ चबाने और गालियाँ बकने लगा।

पुलिस ने सबको पकड़-पकड़ कर सीख़चों में बन्द कर दिया। और तीनों स्त्रियाँ मय अपने सामान के स्वाधीन हो और एक बार 'पिता जी नमस्ते' का व्यङ्ग करके अपनी राह लगीं।

बम्बई की प्राण—श्रीमती हंसा मेहता

(संक्षिप्त परिचय)

[श्रीमती लक्ष्मीदेवी जी, बी० ए०]

महासती सीता ने अग्नि-प्रवेश कर अपने सतीत्व का प्रमाण दिया था। आज भारत की अनेकों महिलाएँ क्रान्ति की धधकती हुई ज्वाला में कूद कर अपनी देशभक्ति का प्रोज्ज्वल प्रमाण दे रही हैं। देश के लिए क़ुर्बान होने वाली ऐसी महिलाओं में श्रीमती हंसा मेहता का स्थान बहुत ऊँचा है। आप १ली दिसम्बर को ही कृष्ण-सदन से मुक्त की गई हैं।

श्रीमती हंसा मेहता के समान वीर और देशभक्त रमणी, किसी भी देश का गौरव हो सकती है। आपका देश-प्रेम और स्वार्थत्याग महिलाओं के लिए ही नहीं, पुरुषों के लिए भी अनुकरणीय है। पाठकों की जानकारी के लिए देवी जी का संक्षिप्त जीवन नीचे दिया जा रहा है।

आपका जन्म प्रसिद्ध नगर सूरत में ३री जुलाई, सन् १८९७ को हुआ था। आपके पिता का नाम सर मनुभाई मेहता है। आप बीकानेर के प्रधान-मन्त्री हैं। और बड़ोदा राज्य के भी प्रधान-मन्त्री रह चुके हैं। आप गोलमेज़ कॉन्फ्रेन्स के निर्वाचित सदस्यों में से हैं!

केवल ८ ही वर्ष की आयु में श्रीमती जी को मातृ-सुख से हाथ धोना पड़ा। माता की मृत्यु ने आपके हृदय पर गहरी चोट की। वह बाल-सुलभ चपलता अब आप में न रही। आपकी गम्भीरता देख कर आपके पिता चिन्तित हो उठे। फल-स्वरूप आप एक पाठशाला में भर्ती कर दी गईं।

कहावत है—'होनहार बिरवान के होत चीकने पात।' छोटी ही उम्र से आप में वे गुण पाए जाते थे, जिनके कारण आज आप महिला-समाज का एक मूल्यवान रत्न हो गई हैं। अपनी प्रखर बुद्धि के कारण, अपनी पाठशाला के प्रायः सभी पारितोषिक आपने प्राप्त किए।

१६ वर्ष की आयु में आपने योग्यतापूर्वक इन्ट्रेन्स की परीक्षा पास की। इसके उपलक्ष में आपको बम्बई-विश्वविद्यालय की ओर से, 'चैटफ़ील्ड पारितोषिक' तथा 'नारायण परमानन्द पारितोषिक' भेंट किए गए। बड़ोदा कॉलेज से आपने एफ़० ए० की परीक्षा पास

श्रीमती हंसा मेहता, बी० ए०

आप हाल ही में जेल से छूट कर आई हैं।

की। इस बार भी आपको 'गङ्गाबाई भट्ट' पारितोषिक दिया गया। सन् १९१८ में आपने दर्शन-शास्त्र में सम्मान-सहित बी० ए० पास किया।

विदेश-यात्रा का आपको बड़ा शौक़ था। आपका कवि-हृदय मिल्टन और शेक्सपियर, रूसो और वालटेयर

की क्रीड़ा-भूमि का दर्शन करने के लिए लालायित हो उठा था। सन् १६१६ में आपको अपनी हार्दिक इच्छा को कार्यरूप में परिणत करने का सुयोग हाथ लगा।

भारतीय कोकिला सरोजिनी नायडू के साथ आपने इङ्गलैण्ड की यात्रा की। जिस अवस्था में हमारे देश की अधिकांश महिलाएँ अन्धकूप में—विलासिता के गर्त में, नरक की यातना में—पड़ी रह कर पुरुषों की विलास-सामग्री बनती हैं, उस अवस्था में इन्हीं की एक बहिन

श्रीमती हंसा मेहता की माता लेडी मेहता

लन्दन के विश्वविद्यालय में सम्पादन-कला का अध्ययन करने लगी—नहीं-नहीं, वह रूसो और वालटेयर, मिल्टन और शैली की आत्माओं से उपदेश ग्रहण करने लगी; प्रातःस्मरणीया, स्वतन्त्रता की पुजारिन, देवी जोन की शक्ति, उसका वह अलौकिक तेज अपने में भरने लगी, जिसमें वह भारतीय क्रान्ति का एक अङ्ग बन जाय, भारत की धधकती हुई ज्वालामुखी का एक स्फुलिङ्ग बन जाय।

सन् १६२० के जून में जनेवा में अन्तर्राष्ट्रीय महिला-परिषद की बैठक हुई। इसका उद्देश्य था स्त्रियों की राजनैतिक और सामाजिक दशा को सुधारना। श्रीमती जी एक विशेष सदस्या की हैसियत से उसमें सम्मिलित हुईं। उक्त परिषद में आपने भारतीय जातियों की अड़चनों की ओर परिषद् का ध्यान आकर्षित किया! उनकी वास्तविक दशा, और उसका कारण वहाँ खोल कर आपने संसार के सामने रख दिया।

सन् १६२१ के नवम्बर मास में आप भारत लौट आईं। यूरोप का सैर तो हो चुका था। अब आपने अमेरिका जाने को ठानी। इस बार दलितों के पिता, वाशिङ्गटन की जन्मभूमि के दर्शनों की इच्छा आपके हृदय में उठी।

सन् १६२२ के मई के महीने में, वाशिङ्गटन में स्त्रियों की सामाजिक कॉन्फ्रेन्स हुई थी। निमन्त्रण पाकर आप उसमें शरीक होने के लिए चल पड़ीं। वहाँ भी आपने भारतीय महिलाओं की दशा का अच्छा ख़ाका खींचा। आप कोरी व्याख्यानबाज़ी नहीं करती थीं। आपकी प्रत्येक उक्ति से सचाई और मार्मिकता छलकती थी। प्रत्येक शब्द आपके हृदय के रक्त से रँगे हुए होते थे। इस कारण आपके व्याख्यानों का वहाँ बड़ा प्रभाव पड़ा। भारत के प्रति अमेरिकन महिलाओं की आँखों पर जो पर्दा पड़ा हुआ था, उसके हटाने में आपने श्रीमती सरोजिनी नायडू को अच्छी सहायता पहुँचाई। सैनफ्रैन्सिस्को में होने वाली World Educational Conference में आपने अङ्गरेज़ सरकार की भारत में स्त्री-शिक्षा सम्बन्धी नीति की पोल अच्छी तरह खोली थी।

सन् १६२३ के अगस्त मास में आपने जापान-यात्रा की। इस यात्रा में आपका उद्देश्य विशेषतया जापानी स्त्रियों की शिक्षा-प्रणाली का अध्ययन करना था, किन्तु वहाँ के विद्यालय छुट्टियों के कारण बन्द हो जाने से आपका उद्देश्य सफल न हो सका।

जापान से लौटने पर आपके जीवन का दूसरा पहलू आरम्भ होता है। यूरोप और अमेरिका के स्वतन्त्र भावों ने आपके हृदय में घर बना लिया था। भारत की अन्ध और कुत्सित कुरीतियों का समूल नाश करने का

सङ्कल्प आप कर चुकी थीं। विद्यार्थी-जीवन में भी आप बराबर सभा-सोसाइटियों में प्रमुख भाग लिया करती थीं। जिस समय आप एफ़० ए० में पढ़ती थीं, उसी समय आपने विद्यार्थी-सङ्घ की नींव डाली थी, और स्वयं उसकी सभानेत्री भी चुनी गई थीं। सुधार की ओर आपका झुकाव बहुत पहले ही से था। किन्तु अब आपने अपने मनोभावों को कार्यरूप में प्रकट करने का निश्चय किया।

सन् १९२४ के जनवरी मास में आपने, अन्तर्जातीय विवाह सम्बन्धी विचारों को कार्य-रूप में परिणत कर दिखाया। बड़ोदा के प्रधान मेडिकल ऑफ़िसर डॉक्टर जीवराव के साथ आपने विवाह किया। अन्तर्जातीय विवाह का जो आदर्श अपने भारतीय महिला-समाज के सामने रक्खा है, उससे हमारी बहिनों को कुछ सीखना चाहिए। आपने दिखा दिया है कि विवाह का सम्बन्ध हृदय से है, सामाजिक रीतियों से नहीं! विवाह एक पवित्र-बन्धन है, धर्म का आडम्बर नहीं। आपने दिखा दिया है कि अपने विवाह का निर्णय करना, अपने पति का वरण करना स्त्रियों का ईश्वर-प्रदत्त अधिकार है।

अब हम श्रीमती जी को उस क्षेत्र में पाते हैं, जहाँ दमन का दानव प्रचण्ड प्रताप और कठोर गर्जना से भारत को पीस डालना चाहता है। भारतीय महिलाओं की जाग्रति का प्रयत्न करते हुए आप दिनोंदिन स्वतन्त्रता के भीषण संग्राम में अग्रसर होती जा रही हैं। श्रीयुत मोदी के जेल जाने पर आप ही बम्बई की 'युद्ध-समिति' की डिक्टेटर बनाई गई थीं। इस भीषण संग्राम के समय, आपने एक वीर सेनापति की तरह जो वीरता के कार्य किए, जिस धीरता और बुद्धिमत्ता के साथ सैन्य-सञ्चालन किया, उससे प्रसन्न होकर ही सरकार ने आपको तीन मास के लिए कृष्ण-मन्दिर में विहार करने की आज्ञा दी थी।

अपने एक काँग्रेस-बुलेटिन में श्रीमती जी ने अपने हृदय को खोल कर रख दिया है। वे कहती हैं :—

"स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए त्याग अनिवार्य है। अपने उद्देश्य तक पहुँचने के लिए, हमारे लिए यह आवश्यक

बीकानेर स्टेट के प्रधान-मन्त्री सर मनुभाई मेहता

आप गोलमेज़-परिषद् में सम्मिलित होने के लिए विलायत गए हुए थे।

है कि हम यातनाओं का सामना करें, अपनी क़ुर्बानियाँ करें, और युद्ध तब तक जारी रक्खें, जब तक कि हमें मनोवाञ्छित वस्तु न मिल जाय।"

एक वीर रमणी ही ऐसा कह सकती है। संसार ज़रा आँखें उठा कर देखे, एक भारतीय महिला आज स्वतन्त्रता का क्या मूल्य देने को तैयार है?

हसीना

[श्री० श्यामापति जी पाण्डेय, बी० ए०]

गङ्गा की मस्त लहरें शिथिलता के साथ करवटें लेती हुई आगे बढ़ी जा रही थीं। प्रातःकाल की सुनहली किरणें उन पर बिखर कर उनके उन्माद को और भी उकसा रही थीं। उसी समय कुछ कुमारी युवतियाँ एक नाव पर आरूढ़ हुईं और उनकी नाव लहरों को रौंदती हुई आगे बढ़ने लगी। तब तक एक दूसरी नाव पर कुछ युवक उतरे और इनकी नाव ने पहली नाव का पीछा किया। देखते ही देखते दोनों नाव समानान्तर रेखाओं पर चलने लगीं। युवतियाँ आपस में कौतुक कर रही थीं। एक ने एक दूसरी पर अमरूद चलाया, तब तक युवकों में से एक ने हाथ उठाया और उसकी नाव में एक लाल सेब आ गिरा। युवकों में छीना-झपटी होने लगी।

मेरा मकान गङ्गा के तट पर ही था। मैं ऊपर के कमरे में खिड़की से इस दृश्य का आनन्द ले रहा था। किन्तु दोनों नाव थोड़ी ही देर में नेत्रों से ओझल हो गईं। मैं फिर भी उनका आनन्द ले रहा था। उसकी धारणा ने मुझे मोहित कर लिया था। उसी दृश्य पर एक कहानी की कल्पना करने लगा। तब तक एक ज़ोर की हँसी सुनाई पड़ी। उठ कर आँगन में झाँका तो हसीना मेरी स्त्री से बातें कर रही थी।

मेरी स्त्री ने पूछा—तो साड़ी क्या करोगी?

हसीना—नहीं चाची, मुझे अपनी साड़ी दे दो। वह बहुत सुन्दर है।

मेरी स्त्री ने और उत्सुकता के साथ पूछा—कौन सी दूँ?

हसीना—कोई अच्छी सी। उसकी आँखें जादू-भरी हैं, उसके एक-एक लाल डोरे आकर्षण के उन्माद में रँगे हुए हैं। उसका रङ्ग कितना अच्छा है!!

स्त्री—दूँगी, लेकिन वह कौन है?

हसीना—बहुत दयालु है। मुझे प्रेम की दृष्टि से देखता है। सच कहती हूँ चाची, वह मुझे प्यार करता है।

स्त्री—ठीक है, बहुत अच्छा है, लेकिन है कौन?

हसीना—मैंने उसे सड़क पर देखा है। बहुत सुन्दर हँसी हँसता है। उसकी मुसकान से प्रेम बरसता है। उसने मुझे प्रेम करने के लिए कहा है।

इसी समय मेरी स्त्री की आँखें ऊपर उठ गईं। उसने मुझे खड़ा देखा; और उसे हँसी आ गई। मैं हसीना की बातों—उसकी सरलता पर मुग्ध खड़ा था। तुरन्त ही सङ्केत किया और उसने हँसी समेट कर नीचे मुख कर लिया।

हसीना ने फिर कहा—तो क्यों चाची, मुझे साड़ी न दोगी।

स्त्री ने गम्भीरता से कहा—क्यों नहीं, देती हूँ, किस रङ्ग की चाहिए?

हसीना—परसों घाट के किनारे उससे भेंट हुई थी। उसने तिरछी चितवन से मुस्करा दिया और अपने साथी से कहा—'बहुत अच्छी है।' सच कहती हूँ चाची, वह मुझे प्यार करता है। मुझसे विवाह करेगा। मुझे स्वीकार है।

मेरी स्त्री को हँसी आ गई। मैंने भी हँस दिया। लेकिन हसीना अभी उसी प्रकार बकती चली जा रही थी। स्त्री का ध्यान दूसरी ओर समझ कर उसने कहा—क्यों चाची, नहीं दोगी?

स्त्री ने हँसते हुए कहा—दूँगी, लेकिन अभी क्या करोगी? कुछ खा-पी लो।

हसीना अधिक चञ्चल हो गई और उत्सुकता से कहा—नहीं, मुझे अभी चाहिए। वह आज सन्ध्या-समय गङ्गा के किनारे मिलेगा। उससे बातें करूँगी। सच, चाची, वह बहुत अच्छा आदमी है। मैं नहीं रुक सकती। अभी जाऊँगी। जल्दी दो।

स्त्री—पीली दूँ?

हसीना—हाँ, पीली दो। वह पढ़ता है, इस साल

डिप्टी-कलेक्टर होगा। नित्य घाट पर आता है, स्नान करता है, चन्दन लगाता है और पूजा करता है। धर्मात्मा है, चाची, पवित्र है।

मेरी स्त्री ने कुछ रोटियाँ ला दीं और उसे देकर कहा—इन्हें खा लो, फिर जाओ।

हसीना ने उन रोटियों को आँचल में बाँध लिया और कहा—चाची, कुछ मिठाइयाँ भी दो। उसे खिलाऊँगी। वह पान भी खाता है।
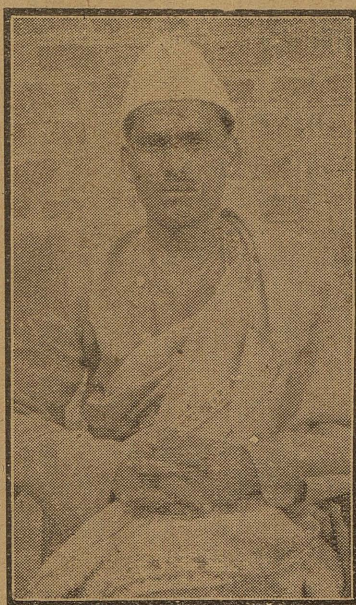
श्री० ब्रजनारायण मेहरा

आप मुरादाबाद नवयुवक-संघ (Youth League) के मन्त्री हैं, जिन्हें हाल में सज़ा हुई थी। आप मुरादाबाद ज़िला-जेल के 'ए' श्रेणी में रक्खे गए हैं।

मैं अभी ऊपर खड़ा यह तमाशा देख ही रहा था कि किसी ने बाहर से पुकारा। मेरी स्त्री कमरे के भीतर जाने लगी। हसीना ने उसे जाते हुए देख कर पूछा—चाची, क्यों जा रही हो?

उसे इसका क्या उत्तर मिला, मैं नहीं सुन सका। नौकर ने जाकर आगन्तुक को बुलाया और वे आकर मेरे पास बैठ गए। आगन्तुक और कोई नहीं था—माधव था। हम दोनों ही किसी समय एक कॉलेज के सहपाठी थे। किन्तु भाग्य ने इस समय हम दोनों को ही भिन्न-भिन्न दो रूप दे दिए। माधव अब कॉङ्ग्रेस के सदस्य हैं, राष्ट्रीय जीवन के सफल नेता हैं। अछूतोद्धार के कट्टर समर्थक और परदा के कट्टर विरोधी हैं। उन्होंने आते ही मुझसे कहा—क्यों भाई, आज बहुत दिनों बाद मिले हो। हम दोनों में परिवर्तन के कितने रङ्ग आए, फिर भी तुम मुझे पहिचान गए। इसकी मुझे प्रसन्नता है। अब कहो, कुछ खिलाते हो? भाभी के हाथ की मिठाइयाँ नहीं तो पान ही सही।

मैंने नौकर को बुलाया और आदेश कर दिया। लेकिन माधव ने कुछ झुँझलाते हुए कहा—यह क्या? नौकर के हाथ का मैं नहीं खा सकता।

मैं—फिर उसे लाने क्यों नहीं देते, मैं खिला दूँगा।

माधव ने हँस कर कहा—भाभी को क्यों दूर रखना चाहते हो, क्या अभी भी परदे के भूत ने तुम्हें नहीं छोड़ा है?

मैं—भाई, पूर्व की प्रथाओं का तोड़ना, मेरे लिए उतना सरल नहीं है। मुझे तो अपने जीवन के प्रतिदिन बहुत ही सावधानी के साथ व्यतीत करने पड़ते हैं।

अभी ये ही बातें हो रही थीं कि माधव ने हँसी के साथ मेरी ओर देखा और फिर अपनी दृष्टि नीचे कर ली।

मैंने माधव को इस प्रकार देख कर पूछा—क्यों चुप हो गए माधव?

माधव ने उत्तर दिया—गाना सुन रहा हूँ। भाभी को अच्छी ट्रेनिङ्ग दे रक्खी है।

मैं चुप हो गया। गाना स्पष्ट सुनाई दे रहा था। मैंने स्वर से जान लिया कि वह हसीना का अल्हड़ कोकिल-कण्ठ था। उस सङ्गीत में एक भोलापन था, उस कण्ठ में एक तड़पन थी, जिसके प्रकम्पन से उसके विक्षुब्ध जीवन का इतिहास उमड़ रहा था। मैंने माधव से कहा—यह तुम्हारी भाभी नहीं है।

माधव ने उत्सुकता से पूछा—फिर कौन है?

गाना पूर्व की अपेक्षा और अधिक स्पष्ट हो चला। माधव ने उसे सुना और उसी ध्वनि में धीरे-धीरे गुनगुनाने लगा:—

याद आ जाती है उनकी, याद कर लेता हूँ मैं।
इस दिले-नाशाद को, यों शाद कर लेता हूँ मैं॥

मैंने हँसते हुए माधव से कहा—तुम भी तो अच्छा गा लेते हो।

माधव ने बात टालने के भाव से कहा—नहीं बतलाओगे, यह कौन है?

मैं—छत से देख सकते हो।

माधव ने देख कर कहा—यह तो कोई विचित्र व्यक्ति है। इस स्त्री में सौन्दर्य है, सङ्गीत है, किन्तु .....

मैंने उत्सुकता से प्रश्न किया—किन्तु क्या?

माधव—वेदना का परदा।

मैं—इतनी जल्दी पहिचान गए?

माधव—अभी कैसे, अभी तो यह जान ही नहीं सका कि यह कौन है?

"यह कौन है?" इसका उत्तर स्वयं मैं भली प्रकार नहीं जानता था। हाँ, इतना अवश्य जानता था कि वह एक भङ्गिन के यहाँ रहती है, जिसे कोई भी सन्तान नहीं है। मैंने उत्तर में कहा—यह एक भङ्गिन के यहाँ रहती है।

माधव—लेकिन है बड़ी सुन्दरी। इसके रूप-रङ्ग तो इसे भङ्गिन नहीं बतलाते।

मैं—जो कुछ भी हो। सौन्दर्य के लिए सब लोग एक हैं। वह बड़ा और छोटा क्या जाने?

माधव—फिर भी माता-पिता के जीवन और परिस्थिति इत्यादि का सन्तान पर अवश्य प्रभाव पड़ता है।

मैं—सम्भव है, किन्तु प्रकृति के कार्य में कोई बाधा नहीं उपस्थित कर सकता। वही सौन्दर्य सत्य है, जिससे नेत्रों को आनन्द मिले, किन्तु स्पर्श करने का साहस न हो। उसकी पवित्रता ही सौन्दर्य का सत्य रूप है। जिसे देखते ही ईश्वर की स्मृति हो आवे, उसे ही हम प्राकृतिक सौन्दर्य कह सकते हैं।

माधव—फिर नेत्रों के आनन्द के बाद तो स्पर्श ही उसके परिणाम-स्वरूप सम्मुख आ जाता है। समस्त इन्द्रियों का एक-दूसरे से ऐसा घनिष्ट सम्बन्ध है, कि वे एक-दूसरी के द्वारा परिचालित होती रहती हैं।

मैं इसका उत्तर सोच ही रहा था कि मेरी स्त्री ने मुझे नीचे बुलवाया। माधव भी चलने के लिए उठ खड़ा हुआ। हम दोनों ही नीचे उतरे। हसीना अपनी चाची के कमरे के सामने खड़ी थी, माधव उस पर एक तीव्र कटाक्ष फेंक कर बाहर चला गया। हसीना ने भी उसे देख लिया।

२

जब मेरी भङ्गिन ने हसीना को मेरी स्त्री के सम्मुख रक्खा, तब वह दो दिनों की भी नहीं हुई थी। उसकी कोमल उँगलियाँ अभी परम पिता परमेश्वर की ही खोज में ऊपर उठ रही थीं। उसे संसार की माया ने स्पर्श तक नहीं किया था। भङ्गिन की गोद से उसने मेरी स्त्री की ओर देखा और उधर ही देखती रह गई।

श्री० हृदयनारायण जी, बी० एस-सी०; एल्-एल्० बी०

आप मुरादाबाद काँङ्ग्रेस कमिटी के मन्त्री और 'डिक्टेटर' हैं, जो हाल ही में गिरफ़्तार हुए थे। आप मुरादाबाद के ज़िला-जेल में 'ए' क्लास में रक्खे गए हैं।

मेरी स्त्री ने भङ्गिन से पूछा—तुम इसे कहाँ पा गई?

भङ्गिन ने गहरा श्वास लेकर कहा—कहाँ पा गई, दुलहिन! सन्तान की इच्छा थी, अपने पेट से नहीं पा सकी तो ईश्वर ने ऐसे ही दिया। उनकी कृपा तो चाहिए। सबकी सुनते हैं। आज प्रातःकाल सड़क साफ़ कर रही थी, अभी अच्छी तरह प्रकाश भी नहीं

हुआ था, मोरी की ओर बढ़ी तो अकस्मात मेरी खरहरी रुक गई। हाथ डाल कर देखा तो यही बच्ची थी। सर्दी में बेहोश, अपने कष्टों को भूल रही थी। यमराज इसकी ओर बढ़ा आ रहा था। जल्दी में उठा लाई।

मेरी स्त्री की आँखों में आँसू भर आए। ममता की प्रबल धारा में उसका व्यक्तित्व आप से आप बह पड़ा। सिसकते हुए उसने कहा—इसे किसी स्त्री ने ही फेंक दिया है।

श्री० पोपटलाल शाह

आप वर्धा-निवासी, सुविख्यात रेलवे-सत्याग्रही हैं, जिन पर ३ बार चलती हुई गाड़ी को चेन खींच कर रोकने का अभियोग चल चुका है। जब कभी गाड़ी में भीड़ के कारण मुसाफ़िरों को तकलीफ़ होती है, आप चेन खींच कर गाड़ी रोक देते हैं। तीसरे केस में आप छोड़ दिए गए हैं।

अपनी इज़्ज़त बचाने के लिए, हाय री स्त्री जाति !! तुममें इतनी कठोरता आ गई? छिः!

भङ्गिन ने अपने आँसू पोंछते हुए कहा—हाँ, दुलहिन, देखो न; जहाँ मैं जीवन-पर्यन्त सन्तान के लिए तरसती रही—फुल्ल-कुसुमित, यौवन का वसन्त आया और चला भी गया, किन्तु लालसा पूरी न हुई। मगर ऐसी भी माताएँ हैं, जो अपनी सन्तानों का इस प्रकार तिरस्कार कर देती हैं।

भङ्गिन ने लड़की का मुख चूम लिया और उसकी ओर सङ्केत करके कहा—बेटी, तू मेरे पेट से क्यों न हुई!

स्त्री—इसे अपने ही पेट से समझ लो और पालन करो। उसे क्या ज्ञान है?

भङ्गिन—हाँ, इसीलिए तो उठा लिया। अपने मन की लालसा भी इसी से पूरी कर लूँगी। आख़िर, मेरे आगे-पीछे कोई है भी तो नहीं!

* * *

आज वही हसीना हो गई है। जैसा नाम है, उससे कहीं बढ़ कर सौन्दर्य! अब उसके यौवन का वसन्त है, जिसमें उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग विकसित हो रहे हैं। वह निखरी हुई गोराई, झलकता हुआ कुन्दन-सा रङ्ग, काले-काले लम्बे घुँघराले बाल, कर्णागत आँखें और कोकिल-कण्ठ!! कितने ही उसके चरणों में अपने को झुका देते हैं, उसके यौवन के अमर हो जाते हैं; किन्तु हसीना! ओह, इतनी भोली और नादान है, कि उसे इसका पता ही नहीं। इसी प्रकार सब से अल्हड़पन की बातें करती है। हँसती और निस्सङ्कोच होकर गाती है। अभी उसके शैशव-काल ने बिदाई नहीं ली है। वह यौवन में सन्ध्या की तरह लिपटा हुआ है, जहाँ सन्ध्या की लालिमा है, रात्रि की कालिमा भी है। इस समय हसीना का चौदहवाँ वर्ष हो रहा है।

एक दिन की बात है। मैं सवेरे चाय पी रहा था। मेरी स्त्री वहीं बैठी पान बना रही थी। भङ्गिन बरामदे में आकर खड़ी हो गई। मैंने उसे देखा और स्त्री से कहा—देखो, भङ्गिन क्यों खड़ी है?

स्त्री ने मुझे पान दिया और बरामदे के सामने होकर भङ्गिन से पूछा—कहो, कुछ ज़रूरत है या वैसे ही चली आई?

भङ्गिन—आपसे कुछ मतलब है, उसी लिए आई हूँ।

स्त्री—हसीना को कहाँ छोड़ दिया, कई दिनों से नहीं दिखलाई देती है।

भङ्गिन—कहीं होगी, घर पर भी तो नहीं रहती है। मैं तो यह जानती हूँ कि आपके यहाँ होगी, लेकिन

उसका यहाँ भी पता नहीं है। इधर-उधर घूमती होगी। ज़माने का रङ्ग ऐसा है कि किसी का कुछ ठिकाना नहीं रह गया। यौवन-काल पाप हो जाता है और सौन्दर्य अभिशाप। किसी की बहू-बेटी की इज़्ज़त नहीं रहने पाती। इसीलिए तो चाहती हूँ कि हसीना की शादी कर दूँ, वह अपने घर जाय। लेकिन.........

स्त्री—लेकिन क्या? कोई अड़चन है?

भङ्गिन—एक-दो नहीं, लाखों अड़चनें हैं। ग़रीबों के लिए तो शादी-विवाह दुश्वार ही हो जाता है। एक पहिले था और एक आज का ज़माना!!

स्त्री—तुम लोगों में भी अड़चनें पड़ती हैं? न दहेज ही देना पड़ता है, न ज़ेवर ही देना कोई आवश्यक है। फिर क्या, दस-पाँच रुपए खाने-खिलाने में लगते होंगे, सो तुम्हारे पास होंगे ही।

भङ्गिन—सौ से तो कम लगेंगे ही नहीं। आप लोगों के दो-चार हज़ार ख़र्च होते हैं, तो हम लोगों के दो-चार सौ ही। लेकिन आप लोगों को तो भगवान ने दे रक्खा है। हम लोग कहाँ से लावें!! आप ही लोगों की दया का भरोसा है न?

स्त्री—तो हसीना के लिए क्यों परेशान हो? उसने तो अपना विवाह ठीक कर लिया है।

भङ्गिन—आप भी हँसी करती हैं, वह कहाँ विवाह ठीक करेगी? हाँ, किसी बदमाश ने कुछ कहा-सुना हो तो बात ही और है। जवानी में लाखों यार-दोस्त हो जाते हैं।

स्त्री—नहीं-नहीं, वह कह रही थी, किसी बड़े घर के बाबू ने उससे विवाह करने की इच्छा प्रकट की है। हसीना भी उसे चाहती है।

भङ्गिन—किसी बड़े आदमी से वह क्या खाकर विवाह करेगी। है तो भङ्गिन ही के घर की पली हुई। बाज़ार में बहुत से बाबू जवानी पर लट्टू हो जाते हैं, लेकिन कौन किसका हुआ है, दुलहिन!

स्त्री—तो कितने रुपयों की ज़रूरत पड़ेगी। मैं बाबू जी से तो कह दूँ।

भङ्गिन—यही, पचीस रुपयों की। ज़िन्दगी में यही काम करना है, इसी तरह सेवा करती रहूँगी और गुज़र हो जाएगी।

स्त्री—अच्छा जाओ, ज़रा हसीना को भेज देना।

३

माधव की तृष्णा जाग्रत हो गई। वह हसीना के लिए आकुल होने लगा। उसके हृदय में वही मूर्ति थी, जिसका सूक्ष्म रूप प्राप्त करके भी उसे शान्ति नहीं मिलती थी। वह उस सौन्दर्य को स्थूल रूप में चाहता था और उसी की खोज में उन्मत्त होकर उसने अपने व्यक्तित्व को नीचे गिरा दिया। उसके कार्य-क्रम में शिथिलता आ गई। जिस गुण, जिस त्याग ने उसे मनुष्यत्व से ऊपर उठा दिया था, अब वह उसे ठुकराने लगा। सब लोग

श्री० सी० ए० अय्यामूथू

आप दक्षिण-भारत में स्वदेशी का प्रचार कर रहे हैं

आश्चर्य करने लगे। राष्ट्रीय जीवन में अब भी माधव का आदर था। उसमें कितना कठिन त्याग था? ओह! अभी एफ़०ए० की परीक्षा भी न दे सका था कि असहयोग-आन्दोलन का झोंका आ गया। माधव ने अपने को, अपने परिवार की आशाओं को, उस झोंके के चरणों पर अर्पण कर दिया। एक छोटा, परिमित साधन वाला परिवार इसे क्यों सहन करने लगा। एक महान त्यागी युवक का निष्ठुर बहिष्कार कर दिया। किन्तु राष्ट्रीय दल में इसकी प्रशंसा थी, इसके महान त्यागों के साथ सहा-

नुभूति थी। व्याख्यान देने में एक ही था। राजनीति-शास्त्र का पूर्ण ज्ञाता था। स्वयं एक कवि होते हुए, एक चित्रकार था। कलाओं ने ख़ूब अपनाया और जिस ओर माधव ने झुकाया, झुकती गईं। राष्ट्रीय कविताओं में इसकी रचनाएँ प्रमुख थीं। घर के बाहर इसका इतना आदर हुआ, इतना अधिक स्वागत हुआ कि निर्वासित होने की कसक इसके हृदय से लुप्त हो गई। किन्तु इधर इसकी प्रवृत्ति चारों ओर से हट कर एक किनारे आ लगी। इसके सम्मुख अब वही हसीना थी। एकान्त

पं० हरिश्चन्द्र बाजपेयी

आप लखनऊ के सुप्रसिद्ध कार्यकर्ता हैं, जिन्हें दूसरी बार गिरफ़्तार करके ६ मास का कठिन कारावास-दण्ड और १००) रु० जुर्माने की सज़ा दी गई है। आप करबन्दी आन्दोलन के सम्बन्ध में गिरफ़्तार हुए हैं।

में उसके स्वरूप का चिन्तन करता, स्मृति के झोंकों में चित्र बनाता और कल्पना के सहारे कविताएँ लिखता। कला के परदे में हसीना का रङ्ग और भी चटकीला होने लगा और कविताओं तथा चित्रों ने इनका रहस्योद्घाटन भी करना प्रारम्भ कर दिया। सब लोगों ने समझ लिया कि माधव प्रणय की ज़ञ्जीरों में जकड़ गए हैं, जिससे मुक्त होना कठिन है।

सन्ध्या का समय था। गङ्गा की धाराएँ शिथिलता के साथ ऐसी अलसाई हुई आगे बढ़ रही थीं, जैसे उन्हें भी आने वाली रजनी की निद्रा ने दबा दिया हो। आकाश नक्षत्रों से खचित, मनोहर तथा निर्मल था। सब लोग घाट पर बैठे इस प्राकृतिक सौन्दर्य का आनन्द ले रहे थे। चरण बढ़ाती रजनी ने अपना काला परदा डाल दिया। धीरे-धीरे सब लोग अपने घरों के मार्ग पकड़ने लगे, किन्तु घाट की दाहिनी ओर बैठी एक सुन्दरी ज्यों की त्यों बैठी रही। अँधेरे में उसे कौन पहिचान सकता था। उसकी आँखें नदी पर जमी हुई थीं और कभी-कभी उसके मुख से कुछ अस्फुट शब्द निकल पड़ते थे। सारी दिशाएँ झङ्कृत हो जातीं और उन शब्दों को उसके पास ठुकरा देतीं। वह इधर-उधर देखने लगती। कुछ और अँधेरा हुआ। स्त्री ने कहा—अभी नहीं आए!

तब तक किसी ने उसके समीप जाकर सङ्कोच से कहा—हसीना!

"तुम कौन?"

"तुम्हारे प्रेम का भिखारी!"

"सत्य कहते हो?"

"हाँ, सत्य कहता हूँ—इसी गङ्गा की शपथ लेकर।"

"अच्छा आओ, तुम्हें गले लगा लूँ, मेरे प्रियतम!"

माधव की प्रसन्नता का कोई ठिकाना नहीं रहा। जिस हसीना को उसने इतनी कठिनाइयों में बन्द देखा था, आज वह उसके सम्मुख उसकी प्रियतमा होकर बैठी है और निस्सङ्कोच गले लगाने को कह रही है। यह आश्चर्य नहीं है तो और क्या!! माधव सहमते हुए आगे बढ़ा, किन्तु समीप पहुँचने पर हसीना उससे अधिक कठिनाइयों में बन्द मिली, जिसकी उसने कल्पना की थी।

हसीना ने घृणा के साथ कहा—तुम हटो, मेरे सामने से भाग जाओ।

माधव—नहीं हसीना, ऐसा न कहो, भिखारी को कभी लौटाया नहीं जाता।

हसीना—लेकिन तुम तो भिखारी नहीं हो।

माधव—फिर क्या?

हसीना ने ज़ोर से कहा—शैतान।

माधव—तो उसी नाते मेरी भिक्षा दो। स्त्रियों का हृदय कोमल होता है। मेरी बात मान लो हसीना!

हसीना—दूर हटो, मैं तुमसे नहीं बोलना चाहती।

माधव—तुमने ही तो गले लगाने के लिए बुलाया। स्मरण करो।

हसीना—बुलाया, लेकिन तुम्हें नहीं, अपने प्रियतम को।

माधव—तो क्या मुझे भिक्षा न दोगी?

हसीना—नहीं दूँगी, नहीं।

माधव—इसका परिणाम जानती हो?

हसीना—हाँ, मेरी मृत्यु।

माधव—फिर तुम्हारे सौन्दर्य का मूल्य?

हसीना—मृत्यु।

माधव—मृत्यु तो सबका अन्त होता है। सौन्दर्य मुरझा जाता है, मनुष्य वृद्ध होकर मर जाता है। सौन्दर्य का मुख्य उपयोग है उसका उपभोग। कुसुम यदि विकसित होकर, बिना उपभोग के ही मुरझा जाता है, तो उसका कोई मूल्य नहीं।

हसीना—लेकिन यह सौन्दर्य तो मेरा है नहीं। यह तो किसी को समर्पित किया जा चुका है। इस पर अब स्वयं मेरा ही अधिकार नहीं है। यह मुरझा जाए तो मैं कुछ नहीं कर सकती।

माधव—किन्तु पुष्प की सुगन्ध किसी व्यक्ति-विशेष के लिए नहीं है, तुम निस्सङ्कोच मेरी भिक्षा दे सकती हो।

हसीना—यह कदापि नहीं हो सकता।

माधव—मैं तेरा दास हूँ। तुम्हारे यौवन पर अपना सब कुछ समर्पण कर सकता हूँ। लेकिन तुम मुझे स्वीकार करो।

हसीना—मैं तुम्हारे वैभव और उत्सर्ग को ठुकराती हूँ। बस आगे कुछ न कहना।

हसीना ने घर की ओर चरण बढ़ाया, किन्तु माधव ने सम्मुख खड़े हो, रोक कर कहा—नहीं जा सकती हो।

हसीना ने क्रोध से कहा—तुम रोक लोगे?

माधव—हाँ, तुम्हारे यौवन का सौदा करके ही छोड़ूँगा। सावधान किए देता हूँ।

हसीना—अच्छा, मैं भी कहती हूँ कि तुम मेरा कुछ भी नहीं कर सकते। चाहे इस शरीर पर अधिकार कर लो, किन्तु इस प्राण और प्राण की साधना प्रेम पर कदापि नहीं अधिकार कर सकते।

माधव—शरीर से सब कुछ करा सकता हूँ।

हसीना—अच्छा, देखती हूँ तुम क्या करा सकते हो, तुम्हारा पाशविक बल मेरे आत्मिक बल पर कहाँ तक सफल होता है।

हसीना इधर-उधर शङ्कित नयनों से झाँकने लगी, फिर पीछे की ओर हटी और माधव आगे बढ़ने लगा। एकाएक माधव रुक कर इधर-उधर देखने लगा। हसीना ग़ायब! क्या हुई, किधर गई, इसका रहस्य उसे नहीं मालूम हो सका। लज्जित होकर घर की ओर चला। गङ्गा इस दृश्य को देख रही थी। अगणित

वयोवृद्ध श्री० सेठ सुन्दरदास वल्लभदास

आप ६५ वर्ष की परिपक्व अवस्था में कराची 'वार-कौन्सिल' के 'डिक्टेटर' नियुक्त हुए हैं।

तारे इसके साक्षी थे। वह तेज़ी के साथ भागने लगा। उसके पद-ध्वनि की प्रतिध्वनि उसे इस कृत्य पर धिक्कारती जाती थी। उसे ऐसा मालूम हुआ जैसे सारा विश्व ही उसके कृत्य पर उसे अपराधी बना रहा हो और उसके दण्ड का विधान कर रहा हो। वह जितने वेग से भागता था, उसके चरणों से सिमटी उसकी भयाविनी भावना भी दौड़ी चली जा रही थी! उसे छिपने के लिए कोई स्थान नहीं मिला।

४

प्रातःकाल ही माधव मेरे यहाँ आया। उसका मुख तेजहीन हो गया था। हृदय शङ्का की लहरों के साथ ऊपर-नीचे हो रहा था। मैंने उसके मुख-मण्डल पर ध्यान दिया, तो उससे यह स्पष्ट हो गया कि वह अपनी आत्मा के विरुद्ध मेरे यहाँ आया है। उस समय मैं अपनी डायरी लिख रहा था। बीच ही में रुक कर पूछा—क्यों माधव, परेशान से क्यों हो?

श्री० पन्दुअन्ना शिरालकर

आप कराद (सूरत) के ज़िला कॉङ्ग्रेस कमिटी के प्रधान हैं, जिनकी गिरफ़्तारी बम्बई हाईकोर्ट ने क़ानून के विरुद्ध बतलाया था। आप हाल ही में जेल से रिहा हुए हैं।

माधव ने मेरे प्रश्न का कुछ भी उत्तर नहीं दिया। उसकी आँखें किसी की खोज में थीं और उसीके साथ उसकी चेतना-शक्ति भी विसुध हुई सी अन्यत्र चक्कर काट रही थी। मैंने फिर पूछा—क्यों माधव, चिन्तित क्यों हो?

माधव ने एक रूखी हँसी में झेंपते हुए कहा—नहीं, चिन्तित तो नहीं हूँ भाई?

मैं—तुम इसे छिपा लो, तुम्हारी जिह्वा इसे गुप्त रख ले, लेकिन तुम्हारा मुख तो इसे चिल्ला कर कह रहा है।

माधव—हो सकता है, लेकिन उस चिन्ता और उसके कारण को मैं स्वयं ही नहीं जानता।

माधव हसीना के सम्बन्ध में कुछ पूछना चाहता था। आत्मा के विरुद्ध उसने कितने ही साहस किए, किन्तु सफल नहीं हो सका। मैंने कहा—क्यों भाई, कुछ जल-पान करोगे?

माधव ने अन्यमनस्कता से उत्तर दिया—नहीं, आज तो कुछ भी इच्छा नहीं है। अब आज्ञा दो, चलूँ।

मैं—अभी जल्दी क्या पड़ी है। बैठो, तुम्हारी भाभी पान बना कर भेजती ही होंगी।

माधव—नहीं, जाने दो। फिर कभी आऊँगा।

माधव सीधे उठ कर चला गया। मैंने स्त्री से पान मँगाए, उसने पान दिए और वहीं बैठ गई। मैंने पूछा—आजकल तुम्हारी हसीना नहीं आती है। क्या हाल है?

स्त्री ने कहा—मैंने तो भङ्गिन से कहा था कि भेज देना, लेकिन वह नहीं आई। मालूम होता है, किसी से आँखें लड़ गई हैं।

मैंने मुस्कराते हुए कहा—क्यों नहीं, आँखों की लड़ाई तो तुम लोगों के लिए बहुत सरल हो गई है। मैंने तो इसका तनिक भी अनुभव नहीं किया। जानती हो तो तनिक बतलाओ न।

स्त्री ने झुँझलाते हुए उत्तर दिया—क्यों नहीं, सारी बातें तो स्त्रियों को ही मालूम रहती हैं। उन्हीं का सारा अपराध रहता है। जो कुछ होता है, वे ही करती हैं—पुरुष बेचारे क्या जानें? स्त्रियाँ उन्हें अपने वश में कर लेती हैं और बन्दर की तरह इच्छानुकूल नचाती हैं। क्यों, यही न?

मैंने कहा—कुछ तो ठीक ही है।

स्त्री उठ कर जाने लगी। मैंने उसकी बाँह पकड़ ली और कहा—कहाँ चली?

स्त्री ने मुँह बनाते हुए कहा—तुमसे दूर। कहीं तुम भी मेरी आँखों के शिकार न बन जाओ, और मेरे वश में हो जाओ।

मैं—क्या अभी कुछ बाक़ी रह गया है?

स्त्री—कुछ शेष रह गया होगा, तभी तो ख़ैरियत से

बीत जाती है, नहीं तो न जाने क्या हो जाता ! जा रही हूँ, अब भी तुम अपने को बचाओ, और अपने मित्रों से भी स्त्रियों की माया से दूर रहने के लिए कह दो ।

मैं अभी इसका उत्तर देने ही जा रहा था कि नीचे से रुदन की आवाज़ आई । मेरी स्त्री छत की ओर बढ़ी, तब तक भङ्गिन ने ज़ोर से रोते हुए पुकारा—दुलहिन ! दुलहिन !!

स्त्री ने नीचे उतर कर पूछा—क्यों, सब कुशल तो है ?

भङ्गिन—हसीना का कहीं पता नहीं है ।

स्त्री ने चौंक कर फिर पूछा—ऐं ! हसीना का कहीं पता नहीं है, कब से ?

भङ्गिन—कल दोपहर से ।

स्त्री—कहीं तलाश किया ? देखना चाहिए, कोई बदमाश तो नहीं ले गया ।

भङ्गिन—क्या कहूँ, कुछ अक़ल काम नहीं करती । इधर-उधर खोजा, किन्तु कहीं भी पता नहीं चला । बाबू जी से कहिए तो ।

स्त्री—अच्छा !

मेरी स्त्री ने आकर कहा । सुनते ही मेरा कलेजा धक् से हो गया । आज ही उसकी बातें हो रही थीं, और वह ग़ायब !! कितनी भोली थी । अपनी इस अवस्था में भी वह मुझसे उसी प्रकार निस्सङ्कोच बातें करती थी, जैसे लड़कपन में । इधर-उधर सोचने पर भी मुझे यह नहीं मालूम हो सका कि उसका कैसे पता चलाऊँ । कहीं भी उसके जाने की पहिले से सम्भावना होती तो अपने प्रयास के लिए सहारा-स्वरूप एक सूत्र पर जाता, किन्तु वह तो मेरे यहाँ, केवल मेरे ही यहाँ आती थी । अब उसके लिए कहाँ जाऊँ । इसी तान-बीन में उलझा हुआ था कि घड़ी ने दस बजा दिए । झटपट भोजन कर कचहरी जाने की तैयारी की, तब तक मेरी भङ्गिन आ पहुँची । उसने घबड़ाहट के शब्दों में कहा—बाबू जी, अब तो मैं लुट गई । क्या किया जाय ?

मैंने कहा—कहाँ जाती थी, यह तुम्हें मालूम है ?

भङ्गिन—कहाँ कहूँ, आप ही के यहाँ तो आती थी ।

मैं—और कहीं काम करने नहीं जाती थी ?

भङ्गिन—काम करने तो नहीं, घूमने के लिए घाट पर जाया करती थी ?

मैं उसे सान्त्वना देकर आगे बढ़ा । किन्तु हसीना की बातें अब भी मेरी स्मृति में सजग थीं । उसने कभी-कभी अपने प्रेम की बातें कही थीं, किन्तु उसमें इतना अल्हड़पन भरा था कि हम लोगों ने उस पर कुछ ध्यान नहीं दिया । अन्यथा उस व्यक्ति का कुछ पता चल गया होता, जिसके विषय में वह कहा करती थी । उससे इस समय पर कुछ सहायता अवश्य ही मिलती ।

मेरी गाड़ी आगे बढ़ी जा रही थी और मेरा चित्त हसीना की खोज में परेशान था । कचहरी अभी चार फ़र्लाङ्ग की दूरी पर थी, तब तक एक कॉन्स्टेबिल ने सलाम किया और हाथ ऊपर उठाया । गाड़ी रुक गई । मैंने पूछा—क्या है ?

श्री० बलवन्तराव पिम्पारकर

आप वर्धा के ज़िला कॉङ्ग्रेस कमिटी के मन्त्री हैं, जो हाल ही में ४ मास का कठिन कारावास-दण्ड भुगत कर छूटे हैं ।

कॉन्स्टेबिल—हुज़ूर, आपके यहाँ किसी व्यक्ति का आवागमन होता रहा है ? सम्भवतः वह कोई असहयोगी है ।

मैं—अच्छा !

कॉन्स्टेबिल—किसी ने एक स्त्री के साथ दुर्व्यवहार

करने की चेष्टा की थी। स्त्री उस व्यक्ति का नाम नहीं जानती, किन्तु उसका संक्षिप्त परिचय दे रही है।

मैं समझ गया, वह माधव था। उसी की दृष्टि हसीना के ऊपर पड़ी थी। वह इस पर मुग्ध था और उसी का यह परिणाम है। मैंने कहा—अच्छा, शाम को आना, तब इस पर बातें होंगी। कॉन्स्टेबिल चला गया।

मैं माधव के चरित्र पर दिन भर आलोचना करता रहा। आख़िर उसने इतने त्याग किए, क्या अपनी विलास की इच्छा का त्याग नहीं कर सका? मनुष्य
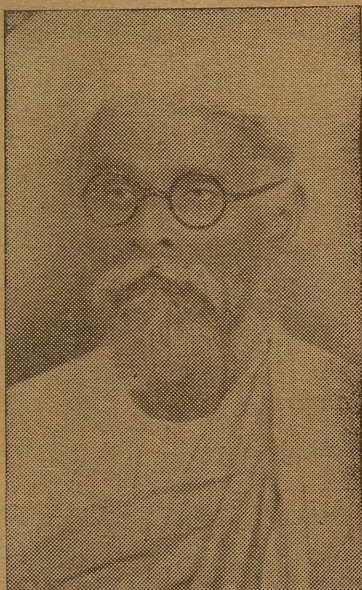
श्री० कशी करमसी मास्टर

आप बम्बई के वयोवृद्ध राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता और म्युनिसिपल-कमिश्नर हैं, जिन्हें नमक-आन्दोलन के सम्बन्ध में ६ मास का दण्ड दिया गया है।

अपने को कितनी छोटी बातों में नीचे गिरा देता है। मनुष्यत्व की कसौटी पर चढ़ना इसीलिए तो परम कठिन कहा गया है। माधव से मुझे इस पतन की तनिक भी आशा नहीं थी। उसके प्रति श्रद्धा थी और मैं उसे सर्वदा अपने से श्रेष्ठ समझता रहा। किन्तु मनुष्य ही तो है!

सन्ध्या-समय कचहरी से आया। आते ही देखा, बाहर की बैठक में एक युवक बैठा था। एक बार उसके मुख पर दृष्टि डाली। उसके नेत्रों से एक विचित्र प्रतिभा निकल रही थी। सुन्दर २२ वर्ष का युवक था। मुझे देखते ही वह उठ खड़ा हुआ। मैंने पूछा—कहिए, आप कहाँ से आए?

युवक ने गम्भीरता से उत्तर दिया—बहुत दूर से नहीं आया हूँ।

मैं—फिर मेरे योग्य सेवा?

युवक मेरे और सन्निकट आ गया और कुर्सी की ओर झुक कर उसने कहा—आप हसीना को तो जानते होंगे?

मैं—जी हाँ, क्या उसके सम्बन्ध में आप बातें करना चाहते हैं?

युवक ने 'हाँ' कह कर उसकी सारी कहानी सुना डाली। माधव के विषय में भी प्रश्न किए और उसके हृदय में प्रतिकार का भाव जाग्रत होकर उपद्रव करने लगा, जिसे मैंने उसके मुख पर मँडराते हुए देखा। उस समय मैंने उसे शान्त करना ही उचित समझा और कहा—मनुष्य भूलों का अवतार है। भूल में ही मनुष्यता है। उत्थान और पतन ही इसके दो स्तम्भ हैं। हम और आप भी ऐसा कर सकते हैं, अस्तु अपराधी को क्षमा कर देना ही उचित है। वह अपनी भूल का प्रायश्चित्त स्वयं ही करेगा। उसकी आत्मा रो उठेगी और एकान्त में उसकी आँखें आँसुओं से उसके सारे पापों को धो देंगी।

युवक थोड़ी देर चुप रहा। फिर कुछ सोच कर बोल उठा—तो क्या आप प्राणिमात्र के लिए ऐसा कहते हैं?

मैं—अवश्य। यदि प्राणिमात्र अपराधों पर हृदय से पश्चात्ताप न करे तो दण्ड से उसे कुछ भी लाभ नहीं।

योंही युवक से कुछ देर बातें होती रहीं। उसने अनेक जटिल प्रश्न किए। वर्तमान शासन-प्रणाली की उपयोगिता तथा अनुपयोगिता पर शङ्काएँ उठीं और टिप्पणियाँ हुईं। फिर वह उठ कर चला गया। उसकी स्मृति अब भी उसी प्रकार सजग है। उसकी प्रतिभा, शरीर और उसके ज्ञान के हम अब भी क़ायल हैं। उसके प्रति मेरे विचार बहुत ही ऊँचे हैं।

माधव और हसीना का मामला अभी निश्चय नहीं हुआ। मुझे वह स्थान छोड़ कर प्रतापगढ़ आना पड़ा। किन्तु जहाँ भी चला जाऊँ, दोनों ही उसी प्रकार मेरी

स्मृति पर खिंचे रहेंगे। यहाँ आए एक वर्ष से ऊपर हो रहा है, हसीना और माधव के विषय में जानने की प्रबल इच्छा होती रही है, किन्तु कुछ भी पता न चला।

५

प्रयाग में कुम्भ की भीड़ लगी हुई थी। नित्य ही दो-चार के मृत्यु-समाचार सुनाई देते। किन्तु उस धर्म की बलिहारी है, जिसके नाम पर, अन्ध-विश्वासी होकर कई लाख व्यक्ति प्राण-दान के लिए तैयार हो जाते हैं। एक दिन, सन्ध्या-समय ज्योंही भाँग लेकर बैठा, मेरी स्त्री ने कहा—एक बात कहनी है। करोगे?

मैं—करूँगा या नहीं, यह तो बात सुनने पर ही कह सकूँगा।

स्त्री—तब तो तुम कर चुके। ये बातें उनसे कहो जो तुम्हें न जानते हों।

मैं—चिढ़ क्यों गईं, कहती क्यों नहीं?

स्त्री—नहीं, पहिले यह बतला दो कि करोगे?

मैंने जल्दी में कह दिया—हाँ, यदि शक्ति से बाहर नहीं है तो कर दूँगा।

स्त्री ने झुँझला कर कहा—तुम्हारी शक्ति में तो कुछ भी नहीं है। क्यों?

मैंने हँस कर कहा—क्या तुम भी नहीं हो?

स्त्री—बस, हो चुका। तुम कर चुके। यदि कभी मेरे मुँह से कोई बात निकल जाय तो आगे-पीछे की सारी सूझने लगती है। इसीलिए तो कभी कुछ कहती नहीं।

मैं—अच्छा कहो, करने की कोशिश करूँगा।

स्त्री ने मुँह बना कर कहा—कर चुके कोशिश।

मैं—अच्छी बात है।

स्त्री चिढ़ कर जाने लगी। मैंने उसकी बाँह पकड़ ली और कहा—कहो, मैं करूँगा।

बम्बई प्रान्तीय कॉङ्ग्रेस कमिटी के सञ्चालक 'वार-कौन्सिल' के वीर सत्याग्रही नेताओं का ग्रूप, जिनके नेतृत्व में हाल ही में दो लाख व्यक्तियों का जुलूस निकला था। अगली पंक्ति में खड़े हुए (बाईं ओर से) श्री० गिल्दर, श्री० मुन्शी (प्रधान) श्री० चन्द्रचूड़ और श्री० नायक।

स्त्री प्रसन्न हो गई और कहा—कुम्भ-स्नान करा दो।

मैं—यही तो मैं भी सोचता था। इस सर्दी में अपने तो परेशान होगी ही, मुझे भी परेशान करोगी।

स्त्री—तो पुण्य भी तो लूटोगे।

मैं—फिर तुम्हारे जाने की क्या आवश्यकता है। मैं जाकर स्नान कर आता हूँ, मेरा सारा पुण्य तुम ले लेना।

स्त्री—क्यों न कहोगे। इसी में ऐसा विचार होता है न! जो रुपए कमा लाते हो, जो नाम कमा रक्खे हो, वह मुझे क्यों नहीं दे देते?

मैं—रुपए-पैसे पाप हैं, इसलिए अपने पास ही इन्हें रखता हूँ और कुम्भ-स्नान पुण्य-कर्म है, इसलिए सारा का सारा तुम्हें दे दूँगा।
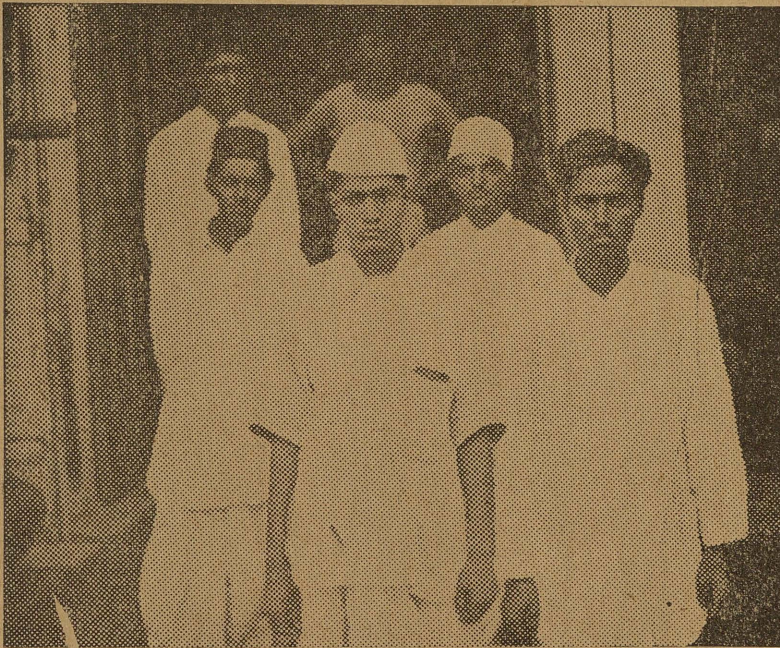
बम्बई के वे स्वयंसेवक, जिन्होंने मेसर्स हाजी आदम जी और हाजी करीम के यहाँ तब तक अनशन-सत्याग्रह किया, जब तक उन्होंने विलायती कपड़े का व्यापार बन्द नहीं कर दिया।

स्त्री—हाँ, बहुत अच्छी तरह समझती हूँ। लेकिन कुम्भ-स्नान में प्रयाग अवश्य जाऊँगी, चाहे तुम जो भी कहो।

ख़ैर, मेरी स्त्री ने हठ पकड़ ली और मुझे भेजने के लिए वाध्य होना पड़ा। किन्तु भेजता किसके साथ, नौकरों का कुछ विश्वास नहीं था। इतनी भीड़ में वे क्या कर सकते थे। मेरे लिए केवल यही उपाय था कि मैं भी साथ हो लेता। प्रातःकाल की गाड़ी से जाना निश्चय हुआ। मेरी स्त्री नई रोशनी की होती हुई भी पुराने पाखण्डों में कुछ विश्वास रखती है। तमाम रात तैयारी में व्यस्त रही। बिना मेरी आज्ञा के ही उसने मेरे कपड़े इत्यादि सूट-केस में रख दिए। अपने लिए तो पूछना ही क्या था। धर्म के लिए अलग, दान के लिए अलग और घूमने के लिए अलग सामान किए। स्टेशन जाने के लिए दो घण्टे पूर्व ही गाड़ी मँगा ली गई। हम दोनों एक नौकर लेकर प्रयाग के लिए चल पड़े।

स्टेशन पर गाड़ी ठसाठस भरी आई। हम लोगों के टिकट सेकेण्ड क्लास के थे। किसी प्रकार बैठने के लिए स्थान मिला। किन्तु जो कष्ट हुआ, उसे केवल धर्म के नाम पर मेरी स्त्री ने सहन किया, अन्यथा वह सर्वथा उसकी रुचि के प्रतिकूल था। गाड़ी प्रयाग पहुँची। हम लोग उतर कर स्टेशन से बाहर चल पड़े। नौकर कुली से सामान लिवाए पीछे आ रहा था। ज्योंही स्टेशन से बाहर हुए, एक सुन्दरी स्त्री सामने आई। उसका पहिनावा सामयिक होते हुए भी हिन्दुत्व के रङ्ग में सराबोर था। उसने मेरी स्त्री को देखा और देखते ही सामने झुक कर कहा—चाची, चरण छू सकती हूँ?

मेरी स्त्री घबड़ा गई, किन्तु उस सुन्दरी के मुख को देखते ही बोली—"हसीना!!" और उससे चिपक गई। उस समय दोनों की आँखों से झर-झर अनुराग बरस रहा था। दोनों प्रेम के रङ्ग में रँग गई थीं। हसीना ने मेरी स्त्री का हाथ पकड़ लिया और आगे बढ़ी। सामने उसकी मोटर लगी थी। हसीना ने कहा—चाची, तुम्हें इसमें बैठ कर मेरे यहाँ चलना होगा।

मैं भी मोटर के पास पहुँच गया। हसीना ने कुछ

लज्जा का भाव दिखलाते हुए मुझे प्रणाम किया। मैंने कहा—हसीना, अच्छी तरह तो हो।

उसने कहा—आपका आशीर्वाद है।

मैं—अपनी चाची को कहाँ घसीटे जा रही हो?

हसीना—अपनी कुटिया में। आपको भी मेरी सेवा स्वीकार करनी होगी।

मैं—नहीं, इस समय हम लोगों को छोड़ दो। कहीं दूसरी जगह ठहर जाएँगे।

हसीना—नहीं, यह नहीं हो सकता।

तब तक एक सुन्दर युवक बोल उठा—आप ऐसा क्यों कह रहे हैं, क्या हम लोगों का भाग्य आपकी सेवा के लिए नहीं है?

मैंने देखा, यह वही युवक था, जिसे मैंने अपनी बैठक में देखा था, जिसकी स्मृति मुझे अब भी बनी हुई थी! मैंने कहा—"आपको कुछ पहिचानता हूँ।" तब तक हसीना ने मेरी स्त्री से कहा—चाची, यही वह हैं, जिनके सम्बन्ध में मैं बका करती थी। आजकल यहाँ डिप्टी कलेक्टर हैं।

हवेरी (ज़िला धारवाड़) के कुछ सत्याग्रही स्वयंसेवकों का ग्रूप—जो हाल ही में लिया गया है। बीच में श्री० प्रामन्नः हास्मानी खड़े हैं, जिन्हें ११ मास का कठिन कारावास-दण्ड दिया गया है।

हम उस युवक से बातें करने लगे, तब तक देखा—हसीना और मेरी स्त्री हाथ मिलाए हँसती हुई मोटर में जा बैठीं। हम भी उस युवक के साथ मोटर में बैठ गए। थोड़ी देर में ही हम लोग एक बँगले पर पहुँच गए। यहाँ उतरते ही हसीना ने हँसते हुए मेरी स्त्री से कहा—चाची, अब मैं हसीना नहीं हूँ।

मेरी स्त्री ने उत्सुकता तथा आश्चर्य से पूछा—फिर?

हसीना ने लज्जा से उत्तर दिया—सुगन्ध सेना।

मेरी स्त्री ने मुस्कराते हुए कहा—लेकिन मेरे लिए तो तुम हसीना ही रहोगी।

हसीना—आपकी मर्ज़ी।

मैं जिस प्रश्न से भागना चाहता था, वही सम्मुख आ गया। जिन जीर्ण ज़न्जीरों को अब तक बचाए था, आज उनके टूट जाने की सम्भावना प्रतीत होने लगी। प्रयाग ही में यह होने को था!! हसीना और उसके पति दोनों की ही जाति का कुछ पता नहीं था, फिर हसीना के लिए इतना तो स्पष्ट ही था कि वह भङ्गिन के घर पली है। उसके हाथ का स्पर्श किया हुआ भोजन! पानी!! क्या किया जाय? यही धर्म-सङ्कट था। कभी अपनी स्त्री पर चिढ़ता था तो कभी अपने धर्म पर। लेकिन अन्त में सोचा—होटल से ख़राब थोड़े ही हैं। ये लोग भी मनुष्य ही हैं। यदि इनमें स्वच्छता है तो बहुत अच्छे हैं। बहुत देर तक मैंने सोचा, फिर अपनी स्त्री से कहा—स्नान करना चाहिए न?

स्त्री ने कहा, फिर क्या। और वह तैयार होने लगी।

अभी तक हम लोगों ने हसीना के हाथ का पान ही खाया था। मैंने सोचा, बाज़ार में कुछ खा-पी लेंगे। फिर दिन की गाड़ी से ही चल पड़ेंगे। खाने-पीने की झञ्झट ही दूर हो जाएगी। किन्तु देखा, हसीना भी तैयार हो रही है। हसीना ने हँसते हुए मेरी स्त्री से कहा—चाची, मेरी साड़ी क्या अब भी न दोगी?

मेरी स्त्री ने बॉक्स से एक पीली साड़ी निकाली और हसीना को देती हुई बोली—क्यों न दूँगी। लो, यह पीली साड़ी है। अब तो घाट पर बातें होंगी न?

हसीना के मुख पर लज्जा की लालिमा दौड़ गई, और डिप्टी कलेक्टर साहब हँसने लगे। ख़ैर, हम चारों ही स्नान करने चले।

भारतवर्ष में भिखारियों की कमी नहीं है। हमारे तीर्थ-स्थान तो इनके गढ़ ही हैं। प्रयाग और कुम्भ का

स्नान! फिर भिखारियों का पूछना ही क्या था। हम लोगों को पग-पग पर भिखारियों को हटाना पड़ता था। मेरी स्त्री और हसीना बातें करती हम लोगों के पीछे आ रही थीं। आते-आते हम लोग एक धर्मशाला के आगे पहुँचे, तब तक देखा—मेरी स्त्री और हसीना एक भिखारिणी से बातें कर रही थीं।

भिखारिणी वृद्धा थी, उसके शरीर पर फटे जीर्ण कपड़े उसकी दुर्दशा के साक्षी थे। वह हसीना से बातें तो करती थी, किन्तु साथ ही उसके मुख का अध्ययन करती जा रही थी। मेरी स्त्री और हसीना आगे बढ़ने लगीं, वह फिर सामने आकर खड़ी हो गई और हसीना से पूछा—तुम काशी से आ रही हो?

हसीना—हाँ, तुमसे मतलब?

भिखारिणी ने हसीना का मुख देखा और पूछा—तुम्हारा नाम हसीना है?

हसीना चकित हो गई और कहा—हाँ, तुम कैसे जानती हो?

भिखारिणी रोने लगी। हम लोग आगे खड़े यह दृश्य देख रहे थे। मेरी स्त्री ने उसे चुप करा कर पूछा—तुम कौन हो, इन्हें कैसे जानती हो?

भिखारिणी—मैं भी काशी की रहने वाली हूँ। ब्राह्मण-वंश की बेटी हूँ। आज अपने कर्म का फल भोग रही हूँ। मेरे ही पाप से हसीना का ऐसा नाम पड़ा, अन्यथा यह.........

भिखारिणी का गला भर आया। वह अब आगे कुछ भी न कह सकी। मेरी स्त्री और हसीना दोनों ही गाल पर हाथ रक्खे प्रतिमा की तरह खड़ी थीं। हसीना के जीवन के ऐतिहासिक पृष्ठ उघड़ रहे थे और वह उसे सुन रही थी। मेरी स्त्री ने एक बार भिखारिणी के मुख का अध्ययन किया, फिर हसीना को देखा। उस भिखारिणी के वृद्धावस्था का मुख अब भी हसीना के उत्फुल्ल मुख से मिलता था। मेरी स्त्री ने कहा—फिर भिखारिणी क्यों हो गई?

बम्बई के १८वें 'वार-कौन्सिल' की कार्यकारिणी समिति—(बीच में बैठी हुई) श्रीमती गङ्गाबेन पटेल (प्रधान) (उनके बाईं ओर) श्रीमती शान्ताबेन पटेल (उप-प्रधान) (दाहिनी ओर) कुमारी सुमन्त त्रिवेदी (सम्पादिका "कॉङ्ग्रेस बुलेटिन") (पीछे खड़े हुए) श्री० हिम्मतलाल शाह और श्री० मानसिंह जगताप (मन्त्रीगण)

भिखारिणी—माँ, तुम लोगों का सुहाग बना रहे, एक पैसा दे दो।

हसीना ने झिड़कते हुए कहा—कितनों को दिया जाय, सारा रास्ता ही तो चींटियों की तरह तुम लोगों से पट गया है?

भिखारिणी ने रोते हुए कहा—हिन्दू-समाज के नाम पर, अपने कर्मों के परिणाम से। अपनी कथा क्या कहूँ! मैं एक बड़े घराने की बेटी थी। अपने १६वें वर्ष में ही विधवा हो गई। फिर.........

मेरी स्त्री—फिर क्या?

भिखारिणी—कुछ नहीं। अच्छा, हसीना, देखो तो तुम्हारे बाएँ पैर में नीचे एक बड़ा सा काला चिह्न है?

हसीना ने अपना मोज़ा उतार लिया। देखा तो उसके आश्चर्य का कुछ ठिकाना ही नहीं रहा। उसने स्वयं ही जीवन में कभी उस चिन्ह को नहीं देखा था। हसीना सिसक-सिसक कर रोने लगी। मेरी स्त्री ने भिखारिणी से कहा—अच्छा माँ, हम लोगों के साथ चलो। अब तुम्हारे दुखों का अन्त आ गया।

हसीना ने उस भिखारिणी के चरण छू लिए। उसने आशीर्वाद दिया और उनसे कहा—अब तो हमरे दुखों का अन्त आ ही गया। तुम लोग जाओ, स्नान कर लो, फिर आते समय.........!

हम लोग घबड़ा रहे थे। मैं तो बहुत कुढ़ रहा था। कहाँ से कहाँ स्त्री के फन्दे में पड़ गया। मैंने अपने को सँभालने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु नहीं सँभल सका। मुझे कहना ही पड़ा—तुम लोग आओगी, या यहीं त्रिवेणी-स्नान होगा?

मेरी स्त्री इसे सुनते ही जल-भुन कर आगे बढ़ी। भिखारिणी की बातों के उद्‌घाटन के लिए हसीना उत्सुक थी। वे दोनों आगे बढ़ने लगीं। तब तक भिखारिणी ने कहा—हाय माधव! यह तेरा ही कर्म है, जिसने मुझे ऐसा बनाया!!

मैंने इसे सुना और सुनते ही भाँप गया। मेरे साथी और हम आगे बढ़े, किन्तु उस वृद्धा भिखारिणी से मिलने की उत्सुकता हम लोगों को पीछे ही खींचती जाती थी। किसी प्रकार त्रिवेणी-स्नान करके हम लोग लौटने लगे। वृद्धा भिखारिणी की बहुत खोज की गई, किन्तु उसका कहीं भी पता नहीं था। मैंने हसीना के मुख पर दृष्टि दौड़ाई। उस पर लज्जा और चिन्ता क्रीड़ा कर रही थीं। उसके रक्ताभ मुख पर एक चित्र अङ्कित हो गया, जिसे लाख प्रयत्न करने पर भी मैं नहीं समझ सका।

जादू भरी हथेली

[प्रोफ़ेसर रामकुमार वर्मा, एम० ए०]

तप्त हृदय पर बरस पड़ीं जब,
आँसू की दो धारें!
छिपी रह गईं मन ही में—
मन की भीषण चीत्कारें॥

हृदय और भी क्यों जलता है,
पाकर थोड़ा पानी।
नया रूप रख कर आई है,
मेरी व्यथा पुरानी!!

जब जीवन ही निष्ठुर प्रेमी—
सा नीरस है सूखा।
फिर क्यों है यह हृदय—
प्रेम के दो टुकड़ों का भूखा?

इच्छाएँ हैं मूक, किन्तु वे—
हैं कितनी मतवाली!
मधु की इच्छा है पर मेरी—
टूट गई है, प्याली!!

मेरी आशे, सरल बालिके!
बहुत धूल में खेली।
आ, मैं ज़रा चूम लूँ तेरी,
जादू भरी हथेली॥

रहस्यवाद के कुछ अनुभव*

[श्री० भुवनेश्वर 'प्रसाद' बी० ए०]

रहस्यवाद पूर्ण का स्पष्ट तात्कालिक अनुभव है, इसी अन्तिम सत्य के अनुभव करने का दावा प्रत्येक रहस्यवादी करता है, पर वे स्वयं कहते हैं कि ब्रह्मानन्द का अनुभव कर लेने पर भी मनुष्य परिमित रहता है और कुछ विशेष अवस्थाओं में ही अनन्त का अनुभव करता है।

यह अनुभव बड़ा आकस्मिक और विशद होता है, मनुष्य की साधारण अवस्था का अन्त हो जाता है और उसे एक निरपेक्ष चेतना का अनुभव होता है। वह अपने को उसमें लीन पाता है, 'ज्ञाता और ज्ञेय' एक हो जाते हैं—वह एक तूफ़ान होता है, जिसके आवेश में मन्सूर अनलहक़ चिल्ला उठा और कबीरदास कह उठे थे :—

मैं लागा उस एक से, एक भया सब माहिं।
सब मेरा मैं सबन का, तहाँ दूसरा नाहिं॥

रहस्यवादियों की इस अवस्था में ब्रह्म केवल एक अनुभव-गम्य विषय होता है, पर उसका साक्षात्कार ही उनका अन्तिम ध्येय रहता है। चेतना का यह स्पष्ट परिवर्तन है, जहाँ 'असत्य' का अस्तित्व 'सत्य' में लीन हो जाता है। पर यदि निरपेक्ष का अनुभव रहस्यवादी करता है, तो उसमें निरपेक्षता के गुण अवश्य आ जाते होंगे? अनन्त का अनुभव कर लेने पर रहस्यवादी में उसके कुछ गुण अवश्य आ जाते होंगे?

इसका उत्तर देता हुआ सन्त पॉल लिखता है :—

"If any man be in Christ, he is a new creature ; the old things have passed away behold they are become new."

अवश्य रहस्यवादी में कुछ परिवर्तन अवश्य हो जाते हैं और वह बक़ौल टकवेल के

"By the great illumination which visits him he sees all things in the radiance of a new and transfiguring light."

वास्तव में रहस्यवादियों की चेतना में ऐसा परिवर्तन हो जाता है कि वह अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार नहीं करते। वे अपने जीवन को निरपेक्ष के जीवन से पृथक नहीं समझते। इसलिए रहस्यवादी की परिमित आत्मा पूर्ण की आत्मा में विलीन हो जाती है।

जब मनुष्य रहस्यवादी हो जाता है, तो वह जान लेता है कि केवल परमेश्वर ही सब शाश्वत वस्तुओं का आदि और अन्त है। वही एक था, है और रहेगा। उस समय वह अपने को सारे ब्रह्माण्ड का अखण्ड स्वामी समझने लगता है, सब जड़-चेतन पदार्थों में अपने को देखने लगता है—वीराने में, बाग़ में, बुलबुल की चहक में, कोयलों की कुहुक में, नसीम की मस्त अठखेलियों में, साक़ी की रसीली आँखों में, छलकते हुए जाम में, उसी यार का जलवा है—श्याम की मोहनी झाँकी है।

रामतीर्थ पूर्व के एक प्रसिद्ध वेदान्ती हैं—यह रहस्यवादी भी थे। जब वे ब्रह्मानन्द का अनुभव करते थे, जब उनकी समाधि लगती थी, ईश्वर के साक्षात्कार से उनकी आत्मा ताण्डव करने लगती थी। वे चिल्ला उठते थे :—

"Bone of bone, my blood of blood are mountains, rivers, Sun and rains."

टेहर्न, जो पश्चिम का एक प्रसिद्ध रहस्यवादी है, प्रायः चिल्ला उठता था :—

"जब सारा समुद्र तुम्हारी नसों में बहने लगेगा, जब स्वर्ग तुम्हें चारों ओर से ढक लेगा, जब तारों को तुम राजमुकुट की तरह धारण करोगे तभी और केवल तभी, तुम इस संसार के सच्चे सुख का अनुभव करोगे, अन्यथा नहीं। जब तुम्हें पता चलेगा कि तुम सब जल-थल, चर-अचर के स्वामी हो, तभी तुम्हें सच्चे सुख का अनुभव होगा।

रहस्यवादी अपनी एकरूपता और सब सांसारिक

---

* इस लेख का अन्तिम भाग लिखने में एक अङ्ग्रेज़ी लेख से सहायता ली गई है जिसके लिए लेखक श्री० ओझा जी का आभारी है।—लेखक

जीवों में अभिन्नता स्थापित करता है और यह अन्तर्भाव रहस्यवाद की एक अनिवार्य वस्तु है। उपनिषदों में बार-बार कहा है 'तत्वमसि' अर्थात् "तेरी आत्मा ब्रह्म है" इसका अभिप्राय यही कि तू ब्रह्माण्ड से अभिन्न है "तू सार्वभौमिक है।"

* * *

(विरह और मिलन) अद्भुत और अदम्य आत्म-प्रकाश की भावना से विरह का भाव स्फुरित होता है।
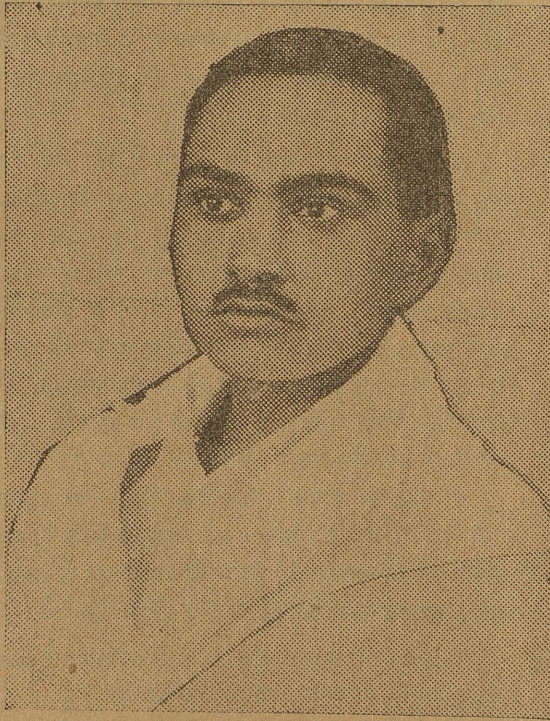
श्री० हिम्मतलाल शाह

आप बम्बई के १८वें "बार-कौन्सिल" के मन्त्री हैं।

जब आनन्द के कम्पन ने अव्यक्त को तिरोहित करके व्यक्त सृष्टि में मिलन की उत्कण्ठा का परिस्फुटन किया था, सृष्टि के रोम-रोम, कण-कण में विरह का चिरस्थायी भाव व्याप्त था।

सृष्टि का जन्म विरह की एक प्रबल भावना से हुआ था। और अव्यक्त आत्म-पुरुष और व्यक्त संसार (प्रकृति) इसी चिर-विरह में आनन्द पा रहे हैं।

रहस्यवादियों ने इस विरह के भाव का अदम्य आत्मऽभिव्यक्ति के साथ अनुभव किया है। प्रसिद्ध रहस्यवादी रवीन्द्रनाथ* कहते हैं :—

चिर जनमेर वेदना, ओहे चिर जीवनेर साधना।

और अपने अन्तर में एक विरहिणी स्त्री का अनुभव करते हैं—

आमार माझारे जे आछे से गो कोन बिरहिणी नारी?

और उन्हीं की एक कविता में बार-बार की असंख्य वेदनाओं के भीतर दुःख-सुख की कितनी ही घटनाओं में एक विगूढ़ विरह लोटा-लोटा फिरता है।

घरे-घरे आज कत वेदनाय
तोमारि गभीर विरह घनाय।
कत प्रेम हाय कत वासनाय
कत सुखे-दुःखे काजे हे॥

संसार के प्रायः सब रहस्यवादी ऐसा ही चिल्ला उठे हैं। अनेक सब विशेषताओं की तरह यह भी सार्वभौमिक है। सूफ़ी लोग उम्र भर हिज्र में ख़ून के आँसू रोते रहे।

कौन सी है वह जुदाई की घड़ी जो उम्र भर,
आरज़ूए वस्ल में यह दिल भटकता ही रहा।

वास्तव में रहस्यवादी की दो प्रधान अवस्थाएँ होती हैं—"साधक" और "सिद्ध"। जब तक मनुष्य ईश्वर का साक्षात्कार नहीं कर लेता—उसके प्रयत्न में रहता है, वह एक प्रगाढ़ विरह का अनुभव करता है। यदि समस्त भूमण्डल के रहस्यवादियों का इतिहास देखा जाय तो पता चलेगा कि साधक की अवस्था में हर एक रहस्यवादी सनातन नारीत्व (Eternal Femenine) के भाव में सृष्टि-जन्य विरह के आनन्द का अनुभव करता रहा है। विरह का यह भाव इतना सुन्दर तथा अनोखा है कि जिस दिन हमारे हृदय में आनन्द का आधिक्य होता है, विरह की व्याकुलता भी

*रवीन्द्रनाथ रहस्यवादी हैं या नहीं, यह थोड़े दिनों से विवादास्पद है। यदि हो सका तो एक स्वतन्त्र निबन्ध में अपने भी विचार व्यक्त करने का प्रयत्न करूँगा।—लेखक

बढ़ जाती है। प्रियजन के मिलन के अवसर पर फाल्गुन की ज्योत्स्नामयी निस्तब्ध रात्रि में, शरद के सुन्दर प्रभात में, एक अकारण विरह मन मथित कर देता है। रवीन्द्र नाथ लिखते हैं :—

पूर्णिमा निशीथे जबे दशे दिके परिपूर्ण हासिं,
दूरस्थिति कोथा होते वाजाय व्याकुल करावासिं,
झरे अश्रुराशि !

पूर्णिमा की निस्तब्ध रात्रि में जब सब दिशाओं में एक सुमधुर ज्योत्स्ना मुसकाती रहती है, न मालूम कौन दूर बैठ कर अत्यन्त व्याकुल स्वर में बंशी बजा देता है और यह आँसुओं की झड़ी लग जाती है। यह रोना केवल रोने के लिए है—

इस अकारण रोने और स्वर्गीय विरह (Divine Despair) का आनन्द रहस्यवादी ही ले सकता है। इसीलिए कबीर ने कहा है :—

सब रङ्ग ताँत रबाब तन, विरह बजावे नित्य;
और न कोऊ सुनि सकै, कै साईं कै चित्त।

प्रसिद्ध पार्शियन रहस्यवादी ईराक़ी ने भी ऐसा ही कहा है :—

इसरारे-ख़राबात बेख़बर मस्त न दानद
हुशियार चे दानद के दराँ कोई चेराजस्त

जन्म के इस चिरस्थायी दुःख का उल्लेख शेली ने अपनी To The Sky Lark नामक कविता में इस प्रकार किया है :—

Yet it we could scorn
Hate, and pride, and fear
If we were things born
Not to shed a tear,
I know not how thy joy we ever
shold come near.

और

. . . Our sincerest laughter
With some pain is fraught;
Our sweetest songs are those
That tell of saddest thoughts.

टेनीसन भी पश्चिम का एक उल्लेखनीय रहस्यवादी है। वह स्वयं इस अकारण रोने का कारण न समझ सका और उसने अपने Princes नामक महाकाव्य में एक स्थल पर लिखा है :—

Tears, idle tears, I know not what they mean,
Tears from the depth of some divine despair
Rise in the heart, and gather to the eyes,
In looking on the happy autumn fields
And thinking of the days that are no more.

* * *
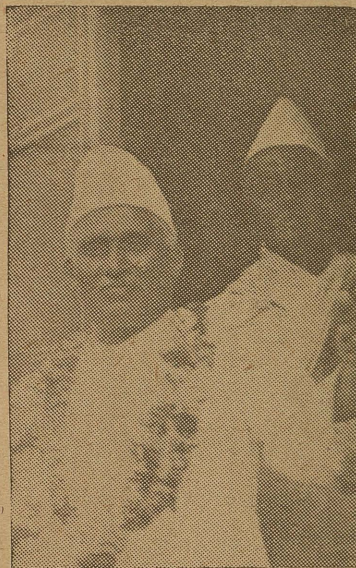
डॉक्टर बी० एम० तम्बे

आप योतमाल (मध्य-प्रान्त) के सुप्रसिद्ध नेता हैं, जिन्हें हाल ही में ६ मास का दण्ड मिला है। आप ११ वर्ष तक इन्दौर के मेडिकल ऑफ़िसर रह चुके हैं।

रहस्यवाद में सृष्टि उसी पूर्ण सुन्दर की छाया है। रहस्यवादी शरीर को परदा मात्र मानते हैं। सूफ़ियों की अनेक कविताओं में यह भावना उदय हुई है।

कोई माशूक़ है इस परदए ज़ंगारी में

और—

दरपरदा यह कौन आख़िर सर-गर्मे तमाशा है ?

मनुष्य इस अन्धकार को तिरोहित करके विश्वात्मा के रहस्यों का आलिङ्गन करता है और उसमें लीन हो जाता है। यह अवस्था सिद्ध की है जिसमें प्रेमी का सर्वान्तम प्रियतम में लीन हो जाता है। शुष्क और नीरस ब्रह्म को सूफ़ियों ने प्रियतम का रूप देकर सरस और माननीय चेष्टाओं के अन्तर्गत कर दिया है। तसव्वुफ़ की सारी कविता इनके अनाहूत उद्गार हैं।

इस चिर-विरह और अपूर्व मिलन के मन्थर भाव ने

श्री० बी० एन० माहेश्वरी

आप बम्बई के राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता हैं। जब से राष्ट्रीय आन्दोलन प्रारम्भ हुआ है, आप दूसरी बार हाल ही में जेल गए हैं! आप 'बी' (माण्डवी) वार्ड से म्युनिसिपुल कॉरपोरेशन की ओर से मेम्बरी के उम्मीदवार भी हैं।

रहस्यवादियों के मुख से अभिनव सुन्दर गीत गवाए हैं। चैतन्य और सूर का सखी-भाव किसे पागल नहीं कर देता? मीरा के रसीले गीतों को सुन कर कौन रसिक जन विह्वल नहीं हो जाता?

इस मिलन का प्रथम फल एक अलौकिक अनन्त आनन्द की प्राप्ति है, और अन्तिम एकाकारता।

यह अन्तिम अनुभव, जैसा हम पहले देख चुके हैं, बड़ा विशद और आकस्मिक होता है, जिसके लिए मनुष्य में कुछ परिवर्तन हो जाना आवश्यक है। प्रसिद्ध रहस्यवादी टेनीसन अपनी पुस्तक Higher Pantheism में लिखता है :—

"And the ear of man cannot hear, and the eye of man cannot see."

अर्थात्—मानवी उपकरणों से 'उसका' अनुभव नहीं हो सकता। ईराक़ी कहता है :—

हम दीदए तो बायद, ता चेहरए तो बीनद,
का नेज़ा के आँ जमालस्त, इसाँ चे कार दारद।

उसका समकालीन जलालुद्दीन रूमी भी, जो परशिया का प्रसिद्ध रहस्यवादी था, लिखता है :—

गोश पिनहा कुजास्त ताशनवद
अज़ जहाने निहाँ सलाम अलैक

इसलिए उस अनुभव के लिए मनुष्य को अपने चिर-सञ्चित ज्ञान, बुद्धि और तर्क सब को विदा करना पड़ता है। अपनी कविता Ancient Sage में महाकवि टेनीसन लिखता है :—

For knowldge is the Swallow on the lake
That sees and stirs the surface shadow there
But never hath depth into the abysm.

तङ्ग आ के रूमी चिल्ला उठता है :—

ऐ यार तेरे कूचे का रस्ता किससे पूछूँ?

और स्वयं गा उठता है :—

'धुवरन्दा बबीनी बुरीदा सेर
के ग़लताँ शक सूये मैदाने जाँ

कबीरदास ने भी कहा है :—

मैं घर फूँका आपना लूका लीना हाथ।
वाहू का घर फूँक दूँ जो चले हमारे साथ॥

बारहवीं शताब्दी के बूढ़े ख़य्याम ने भी इसी भाव को अपनाया है। पर वह रहस्यवादी थे या नहीं, यह विवादास्पद है। पर इस गुत्थी को संसार के सभी रहस्यवादियों ने इसी चुटकी से सुलझाया है। 'ज्ञान' को हर हालत में रहस्यवादी को विदा करना पड़ता है। प्रसिद्ध कवि वर्डस्वर्थ लिखता है :—

Our meddling intellect
Mis-shapes the beauteous forms of things

तसव्वुफ़ में मानवी ज्ञान का प्रारम्भ से ही बायकॉट किया है। उस 'तजल्ली' के लिए क़ल्ब या दिल ही की आवश्यकता है। वह एक ऐसा अनुभव गम्य विषय है जिसमें मस्तिष्क की शक्तियाँ 'बेसूद' हैं। अपने को पूर्णतया ही उत्सर्गित करना होगा। ईराक़ी कहता है :—

बाख़ुदत कारज़ाद बायद कर्द

इसी ख़ुदी के परदे के पीछे 'कमाल' छिपा है—

गुम कर ख़ुदी को तो तुझे हासिल कमाल हो।

एक अर्द्ध ऐतिहासिक घटना प्रसिद्ध है। संयोगवश कभी जहानारा की एक बाँदी से परियों की प्यारी भाव-भङ्गियों का क्रीड़ा-स्थल नाज़ोअन्दाज़ से पला हुआ आईना गिर कर चूर हो गया। उसने डरते-डरते कहा :—

अज़ क़ज़ा आईनए चीनी शिकस्त

जहानारा भी तो 'सूफ़ी ख़्यालात' की थी "बदनसीब दारा से मुतअस्सिर थी"। उसने मुसकान बिखेरते हुए कहा :—

ख़ूब एक असबाबे-ख़ुदबीनी शिकस्त

सच है।

× × × यह छोड़ी जिसने ख़ुदबीनी,
उसे सब कुछ नज़र आया।

* * *

"वह अपूर्व घड़ी"—

हिज्र की पहाड़ सी रातें, रात-दिन के अश्क़, हर घड़ी की ख़लिश और तिलमिलाहट और उस पर उस शोख़ की बेरुख़ी और सङ्गदिली बस वही एक आरज़ू—बेबाक सीधी और सची।

अल्लाह तू ही तू रहे और तू ही तू रहे।
बाक़ी न मैं रहूँ, न मेरी आरज़ू रहे॥

दुनिया दीवाना समझती है, पर उसे तो सब ही बद-होश बेगाने देख पड़ते हैं।

दर शहर एके तनहा हुशियार नमीं बीनद

पर प्रेम की मदिरा के नशे से वह हुशियार नहीं होना चाहता।

इस ख़्वाब से जगना नहीं चाहता।

मन मस्ते मए इश्क़म हुशियार न ख़्वाहम शुद।
वज़ ख़्वाबे-ख़ुश मस्ती बेदार न ख़्वाहम शुद॥

—रूमी

मेरे अलबेले साक़ी यह 'सर्द आतिश' के दौर न टूटने पावे

भर-भर के दिए जा मेरे साक़ी यह जाने-सोज़,

* * *

आख़िर—

साक़ी ने अपने हाथ दिया भर के जामे सोज़
इस ज़िन्दगी के कैफ़ का टूटा ख़ुमार आज।
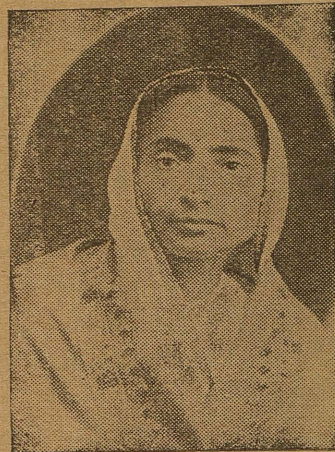
श्रीमती कीकीबेन छबीलदास

आप कराची की 'डिक्टेटर' हैं।

उफ़ कैसा दिव्य स्वरूप है? क्या बाँकी झाँकी है? देखते ही आँखें सहम जाती हैं। विचारों की प्रबल सरिता पल में सूख जाती है। और प्रेम का एक प्रबल सागर उमड़ पड़ता है।

दरियाए इश्क़ बह रहा लहरों में बेशुमार

अब तो कलमा-कलाम, मन्त्र-तन्त्र सब भूल गए। गुम-सुम हो कर बैठ गए।

In such access of mind
Of visitations form the living God.
Thought was not in enjoyment it expired.

अब तो ब्रह्माण्ड रहस्यवादी से अभिन्न है

हम आबमो हम शरीम-हम तिफ़्लमो हम पीरम
हम चाकरो हम मीरम हम आइनमो हम आनम

वज्द के इस प्रबल झोंके में हाफ़िज़ भी कुछ कह गुज़रे हैं :—

नदीमो मत खो साक़ी हमः औसत
ख़याल आबो गुले-दर रहे बहानः

धूल-कणों और पानी से बना शरीर 'बहानः' है। माया है। और—

नक़ाब रूई तो जानाँ मनम के चूँ गोई
ज़े रुख़ नक़ाबे-वहाफ़िग़न मरा बरान्दाज़ी

जब तक यह 'नक़ाब' नहीं हटती सत्य, असत्य, दृश्य और दर्शक का यह 'पर्दा क़ताँ' नहीं होता।

मन बर दरीचः दिलवस्त गोशे जाँ नहादम,
राज़े-निहाँ शुनीदम दन्दाओ लब न दीदम।

कोई कहते हैं रहस्यवादी का यही अन्तिम और सर्वोपरि अनुभव है, पर कुछ रहस्यवादियों ने ईश्वर के प्रत्यक्ष दर्शन पर ही ज़ोर दिया है। टेनीसन और पश्चिम के अनेक रहस्यवादियों का अनुभव यहीं तक सीमित है, उन्होंने इसी पर सन्तोष किया—"मै" के पहले ही दौर पर 'क़नायत' की। टेनीसन ने अपनी पुस्तक Higher Pantheism में लिखा है :—

The Sun, the Moon, the Stars, the Seas, the hills and plains
Are not these, O Soul the vision of Him who reigns
Is not the vision He ? Though he be not that which he seems

पर यहाँ तो बक़ौल कबीर के :—

कहा-सुनी तो है नहीं, देखा-देखी बात

लेकिन टॉमसन ने, जो एक पश्चिम का प्रसिद्ध रहस्यवादी है, कबीर और ईराक़ी का ही साथ दिया है :—

But now I seek the One in every form

और

The gentle light that shines behind the storm
The dream that many a twilight hour enfolds.

संसार के प्रायः सभी रहस्यवादियों ने साक्षात दर्शन को ही अपना ध्येय माना है।

रहस्यवाद और प्रेम तथा इसके दूसरे सञ्चारी भावों पर मैं विस्तृत रूप से लिखने का विचार कर रहा हूँ, इसलिए लेख को यहीं, अपनी कुछ शेरों के साथ, समाप्त करता हूँ। शेर मौज़ू हैं इसलिए (हालाँकि डरते-डरते) यहाँ दिए जाते हैं :—

वह सामने है और नज़र कुछ नहीं आता,
रुख़सत हुआ मुझसे मेरा एहसासे-नज़र आज।
दीवाना हुआ जाता हूँ ऐ जोशे-तमन्ना,
हर परदए पै हम से गुज़र जाए नज़र आज॥

* * *

ऐ जोशे-तबअ उठ गई अब नज़्र तअइयुन,
अब आँख जिधर उठती है आते हैं नज़र आज

नोट कर लीजिए !

पत्र-व्यवहार करते समय जो ग्राहक अपना ग्राहक-नम्बर नहीं लिखेंगे, उनके पत्रों अथवा आदेशों पर ध्यान नहीं दिया जायगा ; और उनकी आज्ञा-पालन में देरी होने के लिए संस्था ज़िम्मेदार न होगी। पाठक स्वयं समझ सकते हैं, इतनी विशाल ग्राहक-संख्या में किसी व्यक्ति-विशेष का पता लगाना तब तक कठिन है, जब तक उनका ग्राहक-नम्बर पत्र में लिखा न हो। ग्राहक-नम्बर प्रत्येक लिफ़ाफ़े अथवा रैपर पर लिखा होता है। पाठकों को स्मरण रखना चाहिए Regd. No. A. 1154 अथवा A. 2085 पत्रों के नम्बर हैं, ग्राहकों के नहीं। ग्राहक-नम्बर नाम के पहिले छपा अथवा लिखा होता है, इसे नोट कर लीजिए। इसके द्वारा आपकी तथा हमारी—दोनों की परेशानियाँ कम हो सकती हैं।

—व्यवस्थापक

मिलन

अब न कभी पूछूँगी तुमसे, 'ऐ, किसको कहते हैं प्यार !'
रहने दो मेरा अधरामृत, मेरे अधरों में सुकुमार !!

—कुमार

[चित्रकार मुन्शी अब्दुल रहमान चग़ताई]

पुनर्जीवन

मूल-लेखक--महात्मा काउण्ट टॉल्सटॉय

[अनुवादक—प्रोफ़ेसर रुद्रनारायण जी अग्रवाल, बी० ए०]

यह रूस के महान् पुरुष काउण्ट लियो टॉल्सटॉय की अन्तिम कृति है। यह उन्हें सबसे अधिक प्रिय थी। इसमें दिखाया गया है कि किस प्रकार कामान्ध पुरुष अपनी अल्प-काल की लिप्सा-शान्ति के लिए एक निर्दोष बालिका का जीवन नष्ट कर देता है; किस प्रकार पाप का उदय होने पर वह अपनी आश्रयदाता के घर से निकाली जाकर अन्य अनेक लुब्ध पुरुषों की वासना-तृप्ति का साधन बनती है; और किस प्रकार अन्त में वह वेश्यावृत्ति ग्रहण कर लेती है। फिर उसके ऊपर हत्या का झूठा अभियोग चलाया जाना, संयोगवश उसके प्रथम भ्रष्टकर्ता का भी जूररों में सम्मिलित होना, उसकी ऐसी अवस्था देख कर उसे अपने किए पर अनुताप होना, और उसका निश्चय करना कि चूँकि उसकी इस पतित दशा का एक मात्र वही उत्तर-दायी है, इसलिए उसे उसका घोर प्रायश्चित भी करना चाहिए—सब एक-एक करके मनोहारी रूप से सामने आते हैं, और वह प्रायश्चित का कठोर निर्दय-स्वरूप, वह धार्मिक भावनाओं का प्रबल उद्रेक, वह निर्धनों के जीवन के साथ अपना जीवन मिला देने की उत्कट इच्छा, जो उसे साइबेरिया तक खींच कर ले गई थी! पढ़िए और अनुकम्पा के दो-चार आँसू बहाइए। इसमें दिखाया गया है कि उस समय रूस में त्याग के नाम पर किस प्रकार मनुष्य-जाति पर अत्याचार किया जाता था। उन्हें सुधारना तो एक ओर—वे समाज के पहले से भी घोरतर शत्रु बना दिए जाते थे। आप इसमें रूस के वर्तमान साम्यवाद का बीज-रूप में दर्शन पाएँगे। द्रव्य तैयार था, प्रस्फुटित होने की देर थी। मानवी हृदय का विश्लेषण जिस दक्षता के साथ किया गया है, उसके लिए इतना ही कहना पर्याप्त है कि यह उस व्यक्ति की प्रकृष्ट रचना—उनकी पकी हुई आयु का सर्वोत्तम प्रसाद है—जिसके जोड़ का व्यक्ति संसार में दूसरा नहीं है। छपाई-सफ़ाई दर्शनीय, सजिल्द पुस्तक का मूल्य लागत-मात्र केवल २) स्थायी ग्राहकों से १॥)

दाम्पत्य जीवन

इस पुस्तक के सम्बन्ध में प्रकाशक के नाते हम केवल इतना ही कहना काफ़ी समझते हैं कि ऐसे नाज़ुक विषय पर इतनी सुन्दर, सरल और प्रामाणिक पुस्तक हिन्दी में अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है। इसकी सुयोग्य लेखिका ने काम-विज्ञान (Sexual Science) सम्बन्धी अनेक अङ्गरेज़ी, हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी तथा गुजराती भाषा की पुस्तकें मनन करके इस कार्य में हाथ लगाया है। जिन अनेक पुस्तकों से सहायता ली गई है, उनमें से कुछ मूल्यवान् और प्रामाणिक पुस्तकों के नाम ये हैं:—

(1) Motherhood and the Relationship of the Sexes by *C. Gasquoine Hartly* (2) Confidential Talks with Husband & Wife by *Layman B. Sperry* (3) Youth's Secret Conflict by *Walter M. Gallichan* (4) The Threshold of Motherhood by *R. Douglas Howat* (5) Radiant Motherhood (6) Married Love and (7) Wise Parenthood by *Dr. Marie Stopes.*

जिन महत्वपूर्ण विषयों पर प्रकाश डाला गया है, उनमें से कुछ ये हैं:—

सहगमन, ब्रह्मचर्य, विवाह, आदर्श-विवाह, गर्भाशय में जल-सञ्चय, योनि-प्रदाह, योनि की खुजली स्वप्न-दोष, डिम्ब-कोष के रोग, कामोन्माद, मूत्राशय, जननेन्द्रिय, नपुंसक, अति-मैथुन, शयन-गृह कैसा होना चाहिए? सन्तान-वृद्धि-निग्रह, गर्भ के पूर्व माता-पिता का प्रभाव, मनचाही सन्तान उत्पन्न करना, गर्भ पर तात्कालिक परिस्थिति का असर, गर्भ के समय दम्पति का व्यवहार, यौवन के उतार पर स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध, रबर-कैप का प्रयोग, माता का उत्तरदायित्व आदि-आदि सैकड़ों महत्वपूर्ण विषयों पर—उन विषयों पर, जिनके सम्बन्ध में जानकारी न होने के कारण हज़ारों युवक-युवतियाँ बुरी सोसाइटी में पड़ कर अपना जीवन नष्ट कर लेती हैं; उन महत्वपूर्ण विषयों पर जिनकी अनभिज्ञता के कारण अधिकांश भारतीय गृह नरक की अग्नि में जल रहे हैं; उन महत्वपूर्ण विषयों पर, जिनको न जानने के कारण स्त्री पुरुष से और पुरुष स्त्री से असन्तुष्ट रहते हैं—भरपूर प्रकाश डाला गया है। हमें आशा है, देशवासी इस महत्वपूर्ण पुस्तक से लाभ उठाएँगे। पृष्ठ-संख्या लगभग ३५०, तिरङ्गे Protecting cover सहित सुन्दर सजिल्द पुस्तक का मूल्य २॥) रु० 'चाँद' तथा पुस्तक-माला के स्थायी ग्राहकों से १॥।=) मात्र! पुस्तक सचित्र है!! केवल विवाहित स्त्री-पुरुष ही पुस्तक मँगावें!

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद
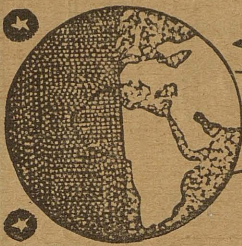
[श्री० मुन्शी नवजादिकलाल जी श्रीवास्तव]

मिश्र का स्वाधीनता-संग्राम

फ़्रिका का पूर्वोत्तर भाग 'मिश्र' देश के नाम से विख्यात है। इसके दक्षिण ओर नोविया, पश्चिम में सहारा मरुभूमि, उत्तर की ओर ट्रिपोली और रूम-सागर तथा पूर्व की ओर लाल-सागर है। इस देश के मध्य भाग में 'नील' नामक महानद है, जो इसका सर्वस्व है, क्योंकि इसके किनारे की भूमि अत्यन्त उपजाऊ है! मिश्र का जलवायु बिलकुल शुष्क है। वर्षा केवल उत्तरीय मिश्र में कभी-कभी थोड़ी-सी हो जाती है। मिश्र मुस्लिम-धर्म-प्रधान देश है। यहाँ के निवासी काकेशस, अरब और तुर्क हैं। कुछ यूरोपियन भी रहते हैं। यहाँ की प्रधान भाषा अरबी है। मिश्र में रूई, दाल और शक्कर की पैदावार अच्छी होती है। ये चीज़ें यहाँ से दूसरे देशों को भी भेजी जाती हैं। कपड़ा तथा धातु की बनी चीज़ें बाहर से आती हैं। मिश्र के बराय-नाम बादशाह या शासक को 'ख़दीव' कहते हैं। पहले यह तुर्किस्तान के सुल्तान के अधीन था, परन्तु गत महासमर के बाद से अङ्गरेज़ों के अधीन है। कैरो या काहिरा मिश्र की राजधानी है। यह नील नद के किनारे बसा हुआ विशाल नगर अफ़्रिका का सब से बड़ा नगर माना जाता है। एले-क्ज़ण्डरिया यहाँ का प्रधान बन्दरगाह है। यहीं वह संसार की मशहूर स्वेज़ नाम की नहर है, जिस पर अधिकार जमाने के लिए यूरोपियन जातियाँ लालायित रहती हैं।

भारतवर्ष तथा मिश्र की प्राकृतिक अवस्था बहुत कुछ मिलती-जुलती है। जिस तरह यहाँ की भूमि उपजाऊ है, उसी तरह मिश्र में भी खाने की चीज़ें बहुतायत से पैदा होती हैं। फलतः खाद्य पदार्थ सुलभ होने के कारण भारतवासियों की तरह मिश्री भी आराम-तलब और आलसी हो गए थे, और इसी से भारतवर्ष की तरह मिश्र को भी अपनी स्वाधीनता खोकर विदेशियों की गुलामी करनी पड़ी थी! परन्तु, जिस तरह ईश्वर की विमल-विभूतियों के आविर्भाव ने इस सोए हुए भारत को जाग्रत किया है, उसी तरह मिश्र की महान आत्माओं ने भी उसे स्वाधीनता की ओर परिचालित किया है। इस समय जैसा उज्ज्वल भविष्य भारतवर्ष का है, उससे कहीं उज्ज्वल मिश्र का है।

आज से हज़ारों शताब्दी पूर्व, दुर्भाग्यवश एक बार हिकसस जाति के लोगों ने मिश्र पर अधिकार जमा लिया था। उस समय इनके अत्याचारों से सारा मिश्र थर-थर काँप रहा था। हिकससों के विरुद्ध सर उठाने की भी किसी में ताक़त न थी। उस समय दक्षिण-मिश्र में एक छोटा सा करद-राज्य था। वहाँ का राजा था तो एक छोटी रियासत का मालिक, परन्तु उसमें तेजस्विता थी। वह हिकससों का अत्याचार नहीं सह सका। उसने देश के प्रमुख व्यक्तियों को बुला कर एक गुप्त सभा की और उन्हें समझाया कि ये विदेशी हमारे धन, मान और धर्म को खुले-ख़ज़ाने लूट रहे हैं। उनके अत्याचारों और उत्पातों से देश तबाह हो रहा है, दरिद्रता बढ़ रही है; देशवासी हीनवीर्य हो रहे हैं और हम कानों में तेल डाले पड़े हैं—अवस्था के दास बन गए हैं। क्या हम मनुष्य नहीं हैं, जो ऐसे अत्याचार को चुपचाप सह रहे हैं?

देशवासियों ने कड़क कर उत्तर दिया—हम मनुष्य हैं। विदेशियों के अत्याचार अब हर्गिज़ बर्दाश्त न करेंगे और उन्हें अपने देश से निकाल कर ही दम लेंगे!

देशवासियों का उत्साह देख कर राजा ने विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया। उत्तर में हिकससों ने भी अत्याचार की मात्रा बढ़ा दी। हिकससों के राजा अपेप ने विद्रोही नरेश को लिखा कि थिवेस नगर की झील से अपने हाथियों को फ़ौरन हटा लो, क्योंकि उनकी चिङ्घाड़ से मेरी नींद में बाधा पड़ती है।

हमारे देश में गाय जितनी पूज्य और पवित्र मानी जाती है, उन दिनों मिश्र में हाथी भी वैसे ही पूज्य और पवित्र माने जाते थे। दूसरे, वह झील, जहाँ मिश्रियों के पूज्य हाथी चिङ्घाड़ा करते थे, राजा अपेप के आरामगाह से सैकड़ों मील के फ़ासले पर था। इसलिए मिश्री समझ गए कि यह महज़ छेड़ख़ानी है। अपेप को उनकी स्वतन्त्रता छीन कर ही सन्तोष नहीं है, वह उन्हें अच्छी तरह कुचल डालना भी चाहता है। यह सोच कर मिश्री भी तैयार हो गए। उपर्युक्त करद-नरेश सेकनेनरा के सेनापतित्व में एक महती सेना तैयार हो गई। भीषण संग्राम छिड़ गया। एक ओर मुक्ति-कामी मिश्री युवक और दूसरी ओर शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित हिकसस-सेना थी। परन्तु वीर-वर सेकनेनरा ने शत्रुओं के दाँत खट्टे कर दिए। उसकी तीक्ष्ण धार तलवार के सामने विपक्षी योद्धाओं का एक क्षण ठहरना भी दूभर हो गया!

अन्त में युद्ध करते-करते सेकनेनरा शत्रुओं के व्यूह में घुस गया। चारों ओर शत्रु-सेना थी और बीच में रण-बाँकुरा सेकनेनरा था। मानो द्रोण के चक्र व्यूह में सप्त-महारथियों से घिरा हुआ अभिमन्यु खेल रहा हो! हिकससों ने देखा कि सम्मुख समर में इस नर-केसरी से लोहा लेना टेढ़ी खीर है, इसलिए उन्होंने एक अत्यन्त घृणित उपाय का अवलम्बन किया। एक गुप्त घातक ने पीछे से जाकर सेकनेनरा पर आक्रमण किया। सेकनेनरा आहत होकर गिर पड़ा। उसी समय एक दूसरे हत्यारे ने उसके सिर में छुरा भोंक दिया! वीर के शरीर की रक्त-धारा से बसुन्धरा लाल हो गई! वीर-श्रेष्ठ सेकनेनरा की वे अन्तिम घड़ियाँ थीं! स्वर्ग की वीराङ्गनाएँ हाथों में जयमाला लिए उसके स्वागत के लिए स्वर्ग-द्वार पर खड़ी थीं। सेकनेनरा ने एक बार घृणापूर्ण दृष्टि से अपने कायर शत्रुओं की ओर देखा। इसके बाद उसने अपने साथियों को सम्बोधन करके कहा—"वीरो, मातृभूमि की स्वाधीनता के लिए मर मिटना, परन्तु शत्रु को पीठ न दिखाना।" इसी समय किसी कायर ने अस्त्राघात से उसका मस्तक चूर्ण कर दिया। हिकससों ने ख़ुशी के नारे लगाए। किन्तु मिश्री युवक इससे ज़रा भी हतोत्साहित न हुए। आँख के सामने ही अपने सरदार की कायरता-पूर्ण हत्या देख कर वे और भी उत्तेजित हो उठे और ऐसा सधा हुआ हाथ मारना आरम्भ किया, कि हिकससों को छठी का दूध याद आ गया! थोड़ी देर के बाद

श्रीमती कृष्णाबाई पञ्जीकर

गाँवों में घूम-घूम कर स्वदेशी का प्रचार करने वाली—धारवाड़ की महिला-रत्न, जो इस समय जेल में हैं।

ही शत्रु-दल मैदान छोड़ कर भाग खड़ा हुआ। मिश्र के आकाश में फिर से स्वाधीनता की पताका फहराने लगी।

पराजित हिकससों ने इसके बाद भी थोड़ा बहुत उत्पात मचाया, परन्तु अन्त में राजा अमेस के ज़माने में, सदा के लिए मिश्र से विदा हो गए।

इस घटना के प्रायः एक हज़ार वर्ष बाद फ़ारस के राजा कैम्बिसस ने मिश्र पर अधिकार जमाया। मिश्रियों ने प्राणों की बाज़ी लगा कर कैम्बिसस को रोका था।

परन्तु एक देशद्रोही मिश्री के विश्वासघात के कारण उन्हें हार जाना पड़ा ! फ़ारस-नरेश ने मिश्र को तो जीत लिया, परन्तु मिश्रियों के हृदय को वे नहीं जीत सके ! समय-समय पर बराबर विद्रोह की भीषण ज्वाला धधकती और बुझती रही। अन्त में दरायुस के ज़माने में, यह ज्वाला इतने ज़ोरों से धधक उठी, कि फ़ारसियों को मिश्र से अपना बोरिया-बँधना समेट लेने के लिए बाध्य होना पड़ा !

परन्तु साल भर के बाद फ़ारसियों ने फिर मिश्र पर

श्रीमती रत्नबाई

आप दक्षिण कनारा महिला-संघ की मन्त्रिणी हैं, जो हाल ही में जेल गई हैं।

चढ़ाई की। इस समय फ़ारस के राज-सिंहासन पर जारजेफ़्स नाम का नरेश आसीन था। उसकी अगणित सेना के सामने मिश्रियों को हार जाना पड़ा। मैदान शत्रुओं के हाथ रहा ! जारजेफ़्स ने अपने छोटे भाई एकीमेनस को मिश्र के राजसिंहासन पर बिठाया। एकीमेनस महाक्रूर और निष्ठुर स्वभाव का आदमी था। उसने मिश्रियों पर भीषण अत्याचार आरम्भ कर दिया ; मिश्री दब गए।

सुदीर्घ बीस वर्ष बीत गए। इसी समय फिर मिश्र में जाग्रति के लक्षण दिखाई देने लगे। वीर साधक इनरास और अमीर तियास की ज्वालामयी वाणी से पराधीन मिश्र-निवासियों के मुर्दा-दिलों में पुनः जोश पैदा हुआ। स्वाधीनता के लिए मर-मिटने की लालसा से एक बार फिर मिश्री युवक बेचैन हो उठे। देखते-देखते भयङ्कर विद्रोहानल से मिश्र का कोना-कोना धधक उठा।

फ़ारस-नरेश ने यह ख़बर सुनी, तो क्रोध से आग-बबूला हो उठा और विद्रोहियों को कुचल डालने के लिए चार लाख पैदल सेना और दो सौ रण-पोत प्रेषित किया। उसे आशा थी, कि इतनी बड़ी सेना देखते ही मिश्री भाग खड़े होंगे। परन्तु फल विपरीत हुआ। मिश्रियों ने पहले ही प्रतिज्ञा कर ली थी, कि या तो स्वतन्त्र होकर रहेंगे, या स्वतन्त्रता प्राप्त करने की पुण्य-पूत चेष्टा में मर मिटेंगे।

इसके बाद भीषण संग्राम आरम्भ हुआ। एक लाख फ़ारसी खेत रहे, और बाक़ी तीन लाख प्राण लेकर भाग खड़े हुए।

फ़ारस-नरेश बौखला उठा ! उसने फिर पाँच लाख सैनिकों को मिश्र पर चढ़ाई करने के लिए भेजा। मिश्रियों ने असीम साहस के साथ इस महती सेना का सामना किया। परन्तु दैव-दुर्विपाकवश उनका सेना-नायक वीरवर इनरास घायल होकर गिर गया। देखते-देखते युद्ध की गति पलट गई। बेचारे मिश्र को एक बार फिर फ़ारसियों की अधीनता स्वीकार कर लेनी पड़ी। आहत इनरास की हत्या कर डाली गई ! यह जघन्य कार्य देख कर मिश्री पागल हो उठे !! पुनः लोहा बजने की सम्भावना, मानो पर फैला कर मँडराने लगी। इस समय अगर कोई उपयुक्त सञ्चालक होता तो निश्चय ही मिश्र वाले फ़ारसियों का तुमतुमा मिटा कर ही दम लेते। परन्तु मिश्र की साढ़ेसाती की आयु अभी पूरी नहीं हुई थी !

इस विजय के बाद फ़ारस-नरेश ने एक और चाल चली। उसने अपने भाई को हटा कर इनरास और अमीर तियास के लड़कों को मिश्र के राज-सिंहासन पर बिठाया और स्वयं उनका अभिभावक बन कर सेना आदि का इन्तज़ाम उसने अपने हाथ में रक्खा। परन्तु मिश्र वाले इस फन्दे में न आए। फ़ारस-नरेश की इस

उदारता को उन्होंने एक व्यङ्ग समझा। यह उनके लिए घाव पर नमक हो गया !

इस बार मिश्रियों ने स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए ज़बरदस्त तैयारी की। सञ्चालक हुए अमीर तियास। अबकी बार मिश्रियों को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। फ़ारस-नरेश को मिश्र पर राज्य करने की आशा-भरोसा को सदा के लिए तिलाञ्जलि देकर चल देना पड़ा !

इसके बाद सदियों तक मिश्र स्वाधीन था। साम्राज्यवादी जातियों की नज़र तो उस पर अवश्य ही थी; परन्तु किसी ने उसकी ओर क़दम बढ़ाने का साहस नहीं किया। अन्त में तुर्किस्तान वालों ने अपने धार्मिक प्रभाव के कारण मिश्र के ख़दीव को अपने अधीन कर लिया, परन्तु उनकी नीति मिश्र की उन्नति के लिए विशेष घातक न थी और न वे उसे गुलाम बना कर ही रखना चाहते थे।

मिश्र के प्राचीन इतिहास के उपर्युक्त दिग्दर्शन से पाठकों ने समझ लिया होगा, कि नील-नद विधौत मिश्र-देश प्राचीन सभ्यता का लीला-निकेतन है। आज भी इतिहास के पृष्ठों में उसका निदर्शन मौजूद है। मिश्र का कितनी बार उत्थान और पतन हुआ है, इसका कोई ठिकाना नहीं। परन्तु आज दुर्भाग्यवश मिश्र पराधीन है ! उसका ऐश्वर्य, प्राचीन सभ्यता और बाहुबल आज अन्तःविहीन अन्धकार के अतल-तल में तिरोहित हो गया है ! स्वाधीनता की बलिवेदी पर हँसते-हँसते प्राण विसर्जन करने वाला मिश्र, आज अङ्गरेज़ों का ग़ुलाम बना हुआ है ! उसकी दुर्गति का मूल कारण स्वेज़ की वह नहर है, जिस पर वाणिज्य की सुविधा के लिए अधिकार जमाए रखना अत्यावश्यक है। यह नहर मिश्र के मध्य भाग से निकाली गई है। नहर को अपने क़ब्ज़े में रखने के लिए मिश्र को मुट्ठी में रखना अत्यावश्यक है। इसी मूल नीति के कारण अङ्गरेज़ मिश्र की गर्दन पर सवार हैं। इसके सिवा एशिया, अफ्रिका और यूरोप के अधिकांश स्थानों पर अधिकार जमाए रखने के लिए भी मिश्र का अङ्गरेज़ों के अधिकार में रहना ज़रूरी है। इसीलिए इङ्गलैण्ड के राजनीतिज्ञ स्वेज़ नहर के जन्मकाल से ही मिश्र पर अपना अधिकार जमाने की धुन में थे ? फलस्वरूप मिश्र में एक जातीय दल का आविर्भाव हुआ और उसने ख़दीव के विरुद्ध घोर आन्दोलन करना आरम्भ किया। ऐसे नायाब मौक़े से भला अङ्गरेज़ कब चूकने वाले थे ? उन्होंने फ़ौरन ख़दीव को ब्रिटिश साम्राज्य के सुशीतल छाया में आश्रय प्रदान किया ! और वैदेशिक स्वार्थ की रक्षा के बहाने स्वयं भी मिश्र में घुस आए !! उस समय मिश्र के जातीय दल के सूत्रधार थे अरबी पाशा। उन्होंने उसी समय अपने देश-वासियों को सावधान कर दिया कि इन भले आदमियों से होशियार रहने में ही कल्याण है ! अङ्गरेज़ों ने अरबी पाशा को निकाल बाहर किया। उस समय जातीय दल

श्रीमती सुनीति देवी मित्रा

आप लखनऊ की सर्व-प्रथम 'डिक्टेटर' थीं, जिन्हें झण्डा-सत्याग्रह के सम्बन्ध में ६ मास का कारावास-दण्ड दिया गया था। आप हाल ही में जेल से मुक्त हुई हैं।

यथेष्ट बलशाली न था इसलिए अङ्गरेज़ों ने बड़ी आसानी से मिश्र पर अपना सिक्का जमा लिया। देश-द्रोही ख़दीव उनके हाथों का खिलौना बन गया; परन्तु जातीय दल भी चुप न था। वह बराबर आन्दोलन करता रहा।

इसी समय यूरोप में महासमर का भयङ्कर दावानल धधक उठा इसलिए अङ्गरेज़ों की दृष्टि में मिश्र का महत्व और भी बढ़ गया और उन्होंने उसे एक समर-

शिविर के रूप में परिणत कर दिया। भारतवर्ष, इङ्गलैण्ड तथा ऑस्ट्रेलिया से बहुत बड़ी-बड़ी पलटनें बुला कर वहाँ रक्खी गईं। साथ ही अङ्गरेज़ों की ओर से इस बात की आशा भी दिलाई गई कि महासमर के बाद मिश्र की स्वाधीनता की भी रक्षा की जावेगी। भोले-भाले मिश्री अङ्गरेज़ों की इस चालबाज़ी को समझ न सके। उन्होंने नाना प्रकार की मुसीबतें उठा कर भी अङ्गरेज़ों की सहायता की, परन्तु महासमर के समाप्त होते ही अङ्गरेज़ों ने अपना असली रूप प्रकट कर दिया।

श्रीमती भिखारबाई

आप बम्बई की महिला-रत्न हैं, जिन्हें विदेशी कपड़े की दूकान पर धरना देने के अपराध में ४॥ मास का दण्ड मिला है।

मिश्र की भलाइयों का बदला घोर दमन और अमानुषिक अत्याचारों द्वारा चुकाया जाने लगा। हज़ारों स्वतन्त्रता-प्रेमी मिश्री जेल की चहारदीवारी के अन्दर बन्द कर दिए गए। जातीय आन्दोलन को समूल ध्वंस कर देने के लिए बड़ी ही निर्मम नीति से काम लिया गया! सारे मिश्र में त्राहि-त्राहि मच गई। परन्तु आन्दोलन नहीं रुका। यह देख कर अङ्गरेज़ों ने दूसरे अमोघास्त्र का प्रयोग किया। लॉर्ड बेलफ़ोर, मि० लॉयड जॉर्ज, लॉर्ड कर्ज़न और सर वेलेन्टाइन शिरोल आदि ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने मार्सोई की अन्तिम शर्त का आश्रय लेकर मिश्र को ब्रिटेन के शासनाधीन रखने का दावा उपस्थित किया। उन्होंने सन्धि-सभा के प्रेज़िडेण्ट मि० उडरो विलसन को समझाया कि ग्रेट-ब्रिटेन, फ़्रान्स और मित्र-शक्ति की अधीनस्थ जातियों के लिए 'आत्म-निर्णय' (Self-Determination) की नीति का अवलम्बन करने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि ये सभी अपनी वर्तमान राजनीतिक अवस्था से अत्यन्त सन्तुष्ट हैं; ग्रेट-ब्रिटेन और फ़्रान्स के राम-राज्य में किसी को कोई कष्ट नहीं है।

परन्तु, मिश्र वाले ग्रेट ब्रिटेन के राम-राज्य के सुख से अच्छी तरह अघा गए थे। उन्होंने एक क्षण के लिए भी विश्राम नहीं किया। अमेरिका के परम चतुर और उदार-हृदय राष्ट्रपति मित्र राज्यों की चिकनी-चुपड़ी बातों में आ गए। दुर्बल राष्ट्रों को आत्म-निर्णय का अधिकार दिलाने की उनकी लालसा वन्ध्या के पुत्रवती होने की लालसा की तरह मन में विलीन हो गई! परन्तु मिश्र के स्वतन्त्र होने की अदम्य-लालसा का इससे बाल भी बाँका न हुआ। उपर्युक्त घटना के प्रायः दस वर्ष पूर्व की मार्सोई-सन्धि के अनुसार मिश्र पर अपना अप्रतिहत प्रभाव जमाए रखने का अधिकार ग्रेट-ब्रिटेन को प्राप्त हो गया। परन्तु मिश्र ने इस चालबाज़ी को व्यर्थ करने के लिए कमर बाँध लिया था। मिश्र के चमकते हुए सूर्य स्वर्गवासी ज़ग़लुलपाशा ने स्वाधीनता-यज्ञ के प्रधान ऋत्विक का पद ग्रहण किया। उनके नायकत्व में मिश्र अपने लक्ष्य की ओर तेज़ी से बढ़ चला। महात्मा ज़ग़लुल तथा सहकर्मी कर्मवीरों ने समस्त जाति को अच्छी तरह समझा दिया, कि स्वाधीनता की आकांक्षा रखने वाली जाति को कोई प्रबल से प्रबल शक्ति भी पराधीनता की लौह-श्रृङ्खला में चिरकाल तक आबद्ध नहीं रख सकती। अगर तुम्हारी लगन सच्ची है, तो कोई भी बाधा-विघ्न तुम्हें रोक नहीं सकता। इसके उत्तर में ग्रेट-ब्रिटेन की उदारता आँखें गुरेर कर खड़ी हो गई। बेचारे मिश्री, दमन की चक्की में अबाध गति से पीसे जाने लगे! परन्तु स्वाधीनता के सच्चे पुजारियों पर अत्याचारियों की लाल आँखों का कोई प्रभाव न पड़ा। स्वाधीनता के मरण-यज्ञ में वीरों ने

हँसते-हँसते अपने प्राणों की आहुतियाँ प्रदान करना आरम्भ कर दिया। सचमुच वह दृश्य बड़ा मनोहर था, बड़ा मनोरम! वीरवर ज़ग़लुल की दृढ़ता की कहानी और ग्रेट-ब्रिटेन के रोष-कम्पायित आँखों के अङ्गारे उगलने का हृदयग्राही वर्णन, पाठकों को एक बार मिश्र के इतिहास के पन्नों में अवश्य पढ़ना चाहिए।

गत १९२०-२१ में, जिस समय भारत में अहिंसात्मक असहयोग की दुन्दुभी बज उठी थी ; साधक-श्रेष्ठ महात्मा गाँधी स्वाधीनता-प्राप्ति के अभिनव उपाय की परीक्षा में लगे थे, ठीक उसी समय मिश्र-वासियों ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध प्रबल आन्दोलन आरम्भ करके ग्रेट-ब्रिटेन के धुरन्धर राजनीतिज्ञों को स्तम्भित कर दिया था। समस्त जगत आश्चर्य-विमुग्ध नेत्रों से यह अभावनीय दृश्य देख रहा था। वीर मिश्रियों के अटल स्वाधीनता-प्रेम के सामने ग्रेट-ब्रिटेन के पशुबल को मत्था टेकने के लिए वाध्य हो जाना पड़ा। उस समय ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध समस्त संसार में असन्तोष फैला हुआ था। इङ्गलैण्ड में बेकारी की समस्या प्रबल हो उठी थी। रूस, इटली, फ़्रान्स, तुर्किस्तान, ईरान, अफ़ग़ानिस्तान, जापान, चीन और हिन्दोस्तान आदि कोई देश ऐसा न था, जहाँ ब्रिटेन के प्रति अनास्था का भाव न उत्पन्न हुआ हो। उसी समय तुर्किस्तान में कमालपाशा ने और चीन में कर्मवीर सनयातसेन ने ब्रिटेन की साम्राज्य-लिप्सा के विरुद्ध तुमुल आन्दोलन आरम्भ किया था। जापान, रूस, इटली आदि ब्रिटेन को सन्देह की नज़रों से देखने लगे थे। भारत में महात्मा गाँधी का असहयोग आन्दोलन एक अपूर्व नवयुग की सूचना दे रहा था। ग़र्ज़े कि उस समय ब्रिटेन पर वास्तव में विपत्ति की घनघटा घहरा रही थी।

परन्तु हम तो ब्रिटिश-धूर्तता के क़ायल हैं। शहज़ोरों से दबने और कमज़ोरों को पीसने में संसार की कोई जाति हज़रत जॉनबुल का मुक़ाबला नहीं कर सकती। जब ये देखते हैं, कि इनके न्याय और उदारता का पर्दाफ़ाश हो रहा है, यहाँ अब स्वार्थपरता को छोड़े बिना काम न चलेगा, तो वे झट शान्तिपूर्ण समझौते का आश्रय लेकर संसार की आँखों में धूल झोंक देते हैं। उस समय वे फ़ौरन 'कॉन्फ़्रेन्स' या 'कमीशन का अमोघ फन्दा फेंकते हैं। इससे उनके स्वार्थों की भी सिद्धि होती है और संसार को घपले में डाल देने का भी मौक़ा मिल जाता है। मिश्र के सम्बन्ध में भी अङ्गरेज़ों ने अपने उसी चिर-अभ्यस्त उपाय का अवलम्बन किया। जब उन्होंने देखा कि शान्ति और शृङ्खला की रक्षा की दुहाई देकर आन्दोलनकारियों को पीसने से काम न चलेगा, तो झट श्रीमान मिलनर महोदय की अध्यक्षता में एक रॉयल कमीशन, मिश्र की राजनीतिक अवस्था की जाँच के लिए भेज दिया। परन्तु मिश्र वाले इस चालबाज़ी से

कुमारी सीताबाई बलबल्ली

आप बगलकोट (करनाटक) स्त्री-सेविका-संघ की नेत्री हैं, जो हाल ही में राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के कारण गिरफ़्तार हुई हैं।

वाक़िफ़ थे। फलतः भारतीय रॉयल कमीशन के सूत्रधार श्रीमान साइमन महोदय की तरह मिलनर साहब को भी मिश्र में 'स्याह स्वागत' ही नसीब हुआ। एक भी निवासी उस रॉयल कमीशन के सामने अपना दुःख निवेदन करने अथवा गवाही देने न गया! मिलनर साहब को अपना-सा मुँह लेकर अपने घर लौट जाना पड़ा। अपने प्यारे मिश्र को दायित्व-ज्ञान हीन दुष्ट आन्दोलनकारियों के पञ्जों से निकालने के लिए अङ्गरेज़ों

ने चेष्टा तो बहुत की, परन्तु मिश्र की बदक़िस्मती ने कुछ भी न होने दिया। अस्तु,

जब उन्होंने देखा कि कमबख़्त किसी तरह मानते ही नहीं, तो एक 'सीमाबद्ध स्वाधीनता' (?) देकर उन्हें फुसलाने की चेष्टा की गई। श्रीमान लॉयड जॉर्ज की उदार-हृदय सरकार ने इस अमूल्य दान के एवज़ में थोड़ी क्षमता अपने हाथों में रख लिया। अर्थात् केवल बाहरी शत्रुओं से मिश्र की रक्षा करने का भार, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और आर्थिक प्रबन्ध अपने अधिकार

कुमारी ई० नारायणखुट्टी, बी० ए०

आप कालीकट की सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय कार्यकर्त्री हैं, जिन्होंने हाल ही में जेल-यात्रा की है।

में रख कर बाक़ी सब कुछ (?) उसे सौंप दिया गया! इसके साथ ही यह व्यवस्था भी कर ली गई कि अगर कहीं ब्रिटेन के आर्थिक व्यापार को ठेस लगने की सम्भावना दिखाई पड़ेगी, तो मिश्र की अभ्यन्तरीय नीति में वह दख़ल दे सकेगा। फलतः स्वाधीनता प्राप्त कर लेने पर भी मिश्र को राजनैतिक, अर्थनैतिक और अन्तर्जातीय व्यापार में ब्रिटेन के चरणों का ही आश्रय लेना पड़ा।

परन्तु मिश्रवासियों के हृदयों में स्वतन्त्रता की जो भीषण ज्वाला धधक रही थी, वह इन पानी के छींटों से बुझने वाली न थी। श्री० ज़ग़लुलपाशा और उनके अक्लान्त सहकर्मी-वृन्द स्वाधीनता के इस ओस-कण से सन्तुष्ट न हुए। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में घोषणा कर दी कि हमें आंशिक स्वतन्त्रता नहीं चाहिए। हम तो जब तक जीवित रहेंगे, तब तक पूर्ण स्वतन्त्रता के लिए लड़ते रहेंगे। फलतः उन्होंने पूर्ण उत्साह के साथ अपना आन्दोलन जारी रक्खा। देखते-देखते फिर वही दावाग्नि धधक उठी। चारों ओर एक अपूर्व उत्साह दृष्टि-गोचर होने लगा। स्वाधीनता लाभ करने की प्रबल आकांक्षा ने समस्त जाति के दिल में बिजली का सञ्चार कर दिया। अङ्गरेज़ों द्वारा अनुमोदित जातीय पार्लामेण्ट का निर्वाचन आरम्भ हुआ। पूर्ण स्वाधीनतावादी बहुत से मिश्री उसके सदस्य बने। पार्लामेण्ट पर राष्ट्रीय प्रभाव डाल कर देश को पूर्णरूप से स्वाधीन कर देने के लिए परम स्वाधीनतावादी ज़ग़लुलपाशा प्रथम प्रधान-मन्त्री बने। इसी समय ब्रिटिश मन्त्रि-मण्डल भी बदल गया। मि० मेकडॉनल्ड प्रथम बार ब्रिटेन के प्रधान-मन्त्रि पद पर नियुक्त हुए। उनकी अर्थात् मज़दूरों की सरकार ने मिश्र के साथ एक समझौता कर लेने का विचार प्रकट किया। वार्तालाप आरम्भ हो गया, परन्तु ब्रिटेन के साम्राज्यवाद सम्बन्धी विचारों में कोई परिवर्तन परिलक्षित नहीं हुआ। इधर ज़ग़लुल ने भी अपना पूर्ण स्वाधीनता वाला दावा क़ायम रक्खा। परन्तु उनकी आकांक्षा की पूर्ति का पथ कण्टकाकीर्ण ही रह गया। वह चाहते थे, मिश्र को एक पूर्ण स्वाधीन राष्ट्र के रूप में परिणत करना और मि० मेकडॉनल्ड चाहते थे उसे साम्राज्य के शिकञ्जे में कसे रखना। फलतः समझौते की बातचीत विफल होकर रही।

मेकडॉनल्ड की सरकार के पतन के बाद इङ्गलैण्ड का शासन-सूत्र पुनः कञ्ज़रवेटिव दल के हाथों में चला गया। मि० बालडवीन ने नवीन मन्त्री-सभा का सङ्गठन किया। इसके साथ ही इङ्गलैण्ड की राजनीतिक अवस्था में भी विशेष परिवर्तन हुआ। इस दल की चेष्टा से फ़्रान्सीसी और अङ्गरेज़ों ने अपनी पुरानी प्रतिद्वन्द्विता भूल कर उत्तरीय अफ़्रिका (मोरक्को और मिश्र) पर अपना पूर्ण प्रभुत्व स्थापित रखने का दृढ़ सङ्कल्प किया। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए इटली, फ़्रान्स और इङ्गलैण्ड एकता-सूत्र में आबद्ध हुए। इङ्गलैण्ड ने मिश्र

के राष्ट्रीय दल को सम्पूर्ण रूप से कुचल डालने की इच्छा से भयङ्कर दमन आरम्भ कर दिया। उस समय भी मिश्री पार्लामेण्ट का मन्त्रित्व ज़ग़लुलपाशा के अधिकार में था। उन्होंने विदेशियों के अत्याचार से मिश्र को बचाने के लिए एक नया क़ानून बनाने का विचार किया। अङ्गरेज़ों को इस बात की ख़बर मिली तो उन्होंने मिश्र-वासियों को धमकाना आरम्भ किया। परन्तु दृढ़-हृदय पाशा महोदय ऐसी धमकियों से विचलित होने वाले न थे। अङ्गरेज़ों ने उन्हें लिखा कि अगर वे अपना सङ्कल्प परित्याग नहीं करेंगे, तो हम मिश्र पर गोले बरसा कर उसे भून डालेंगे। इस समय बम्बई के भूतपूर्व लाट लॉर्ड लॉयड मिश्र में ब्रिटेन की ओर से हाई कमिश्नर थे। उन्होंने ज़ग़लुलपाशा को लिखा कि आप मन्त्रित्व परित्याग कर दें, नहीं तो हम मिश्र के विरुद्ध युद्ध-घोषणा करेंगे। पाशा ने देखा कि प्रबल ब्रिटिश शक्ति के साथ प्रत्यक्ष रूप से लोहा लेने में देश का कल्याण नहीं है। स्वार्थ वश ब्रिटेन अगर मिश्र पर चढ़ाई कर देगा, तो वह बहुत दिनों के लिए पराधीनता की ज़ञ्जीर में बँध जायगा। इसलिए उन्होंने मन्त्रित्व से इस्तीफ़ा दे दिया। परन्तु मातृ-भूमि को इस सङ्कटावस्था में छोड़ कर निश्चिन्त रूप से बैठ जाना भी महामना पाशा के लिए कठिन था। मन्त्रि-पद से अलग होते ही उन्होंने मिश्री पार्लामेण्ट के विपक्षियों का नेतृत्व ग्रहण किया।

श्रीमती पद्मावती अशर

आप बम्बई की सुप्रसिद्ध गुजराती महिला हैं। झण्डा-अभिवादन दिवस की सरकारी आज्ञा का तिरस्कार करने के कारण आपको ६ सप्ताह का कारावास दण्ड दिया गया है।

महात्मा ज़ग़लुल स्वाधीनता-कामी मिश्र के दीक्षा-गुरु थे। सन् १९०६ से सन् १९२७ तक उन्होंने अपनी

मातृ-भूमि को शृङ्खला-मुक्त करने के लिए जो घोर परिश्रम किया था, उसकी तुलना नहीं हो सकती। इस नर-केसरी की बदौलत मिश्र में नवजीवन का सञ्चार हुआ था। देश के लिए मिश्रियों ने जो अलौकिक त्याग स्वीकार किया था, उसका सारा श्रेय एकमात्र स्वर्गवासी ज़ग़लुलपाशा को है। बारम्बार अङ्गरेज़ों द्वारा लाञ्छित और अपमानित होकर भी पाशा कभी हतोत्साह नहीं हुए थे। मातृ-भूमि के चरणों पर उन्होंने अपना सारा जीवन उत्सर्ग कर दिया था। राज-शक्ति ने उन्हें गिराने में कोई दक़ीक़ा बाक़ी नहीं रक्खा था, परन्तु अपने असीम आत्म-बल और त्याग द्वारा उन्होंने अपने देशवासियों के दिलों में घर कर लिया था। जीवन के अन्तिम काल में शासन-तन्त्र से संयुक्त रह कर भी वे सदा-सर्वदा अपने देश को विदेशियों के चङ्गुल से विमुक्त करने में ही लगे रहते थे। सन् १९१९ ई० में अङ्गरेज़ी सरकार ने उन्हें तथा उनके कई साथियों को देश-निकाले की सज़ा देकर माल्टा भेज दिया था। परन्तु इस निर्वासन का नतीजा अङ्गरेज़ों के लिए अच्छा नहीं हुआ। पाशा के हटते ही सारे मिश्र में राजविद्रोह की भीषण आग धधक उठी। अपने देश-प्रिय नेता के निर्वासन का समाचार पाकर

सुप्रसिद्ध नर्तक श्री० उदयशङ्कर की १८ वर्षीय फ़्रेञ्च सहयोगिनी—मिस सिमकी

जिन्होंने भारतीय नृत्य-कला में अलौकिक उन्नति प्राप्त की है। जब आप भारतीय वेष-भूषा में भारतीय नृत्य करती हैं, तो स्वयं फ़्रान्स वालों तक को आपके भारतीय युवती होने का धोखा हो जाता है। इस चित्र में पाठक इन्हें भारतीय ढङ्ग से नाचते हुए देखेंगे।

सारा मिश्र खलबला उठा। चारों ओर मार-काट और ख़ून-ख़राबी का बाज़ार गर्म हो उठा। इसलिए अन्त में झख मार कर अङ्गरेज़ों ने पाशा को मुक्त कर दिया। पाशा महोदय की अक्लान्त चेष्टा से ही मिलनर कमीशन का सफलतापूर्ण बहिष्कार हुआ था। इसी सिलसिले में वे कई बार इङ्गलैण्ड गए और ब्रिटेन के प्रधान-मन्त्री को बारम्बार समझाया कि मिश्र स्वाधीन होकर ही रहेगा, परन्तु इसका कोई फल नहीं हुआ। इसी समय मिश्र के मॉडरेट लीडर, हमारे देश के सर सप्रू और जयकर आदि की तरह केवल व्याख्यानबाज़ी के भरोसे देश का कल्याण-साधन करने वाले, आदिलपाशा आदि ने उन्हें कई बार मिश्र के प्रधान मन्त्रि-पद पर प्रतिष्ठित करने का इरादा किया, परन्तु ज़ग़लुल ने स्वीकार नहीं किया। वह किसी तरह भी अपने आदर्श को परित्याग करना नहीं चाहते थे। प्रथम निर्वासन से लौटने पर उन्होंने क्षण भर के लिए भी विश्राम न करके अपनी सम्पूर्ण शक्ति द्वारा स्वाधीनता-आन्दोलन चलाना आरम्भ कर दिया। ब्रिटेन के राजनीतिज्ञ पाशा की शक्ति के क़ायल थे। वे अच्छी तरह जानते थे कि यह महान पुरुष जो चाहे वही कर सकता है। अङ्गरेज़ों ने बारम्बार पाशा को निर्वासित करके, नज़रबन्द करके और जेल देकर उनकी शक्ति की पूरी जाँच की थी। सिसली और एडेन में नज़रबन्दी के दिन व्यतीत करने पर सन् १९२२ में पाशा महोदय निर्वासित करके जिबराल्टर भेजे गए। वहाँ जाने पर उनका स्वास्थ्य अत्यन्त ख़राब हो गया था। उस समय अङ्गरेज़ों ने उनकी धर्मपत्नी को उनके साथ रहने की अनुमति प्रदान की थी। परन्तु वह वीराङ्गना भी किसी तरह कम न थी। उस समय वह पति के अधूरे कार्यों की पूर्त्ति में लगी थीं। इसलिए लोगों के कहने पर भी वह कार्य छोड़ कर जिबराल्टर जाने को प्रस्तुत न हुईं। अन्त में स्वास्थ्य की ख़राबी के कारण, सन् १९२३ ई० में पाशा मुक्त होकर अपने देश लौट आए। उनके पदार्पण करते ही एक बार फिर मिश्र जाग उठा। उसी समय नवीन शासन-संस्कार की भी प्रतिष्ठा हुई, ज़ग़लुल ने मन्त्रि-पद ग्रहण किया। इसके बाद उनके इस्तीफ़ा देने की नौबत आई, जिसका ज़िक्र हम ऊपर कर चुके हैं।

महात्मा ज़ग़लुल के जीवन का लक्ष्य था मिश्र को स्वाधीन करना, इसलिए वे जब तक जीते रहे, तब तक बराबर इसके लिए संग्राम करते रहे। उनके जीवन का मूल-मन्त्र था—'कार्यम् वा साधयामि शरीरं वा पातयामि !' यद्यपि वे अपने जीवन-काल में ही मिश्र को पूर्ण स्वाधीन नहीं देख सके, परन्तु उन्होंने अपने देशवासियों को जो महान मन्त्र प्रदान किया है, उसकी शक्ति अमोघ है। उस महामन्त्र की बदौलत आज न सही, कल मिश्र अवश्य ही एक सम्पूर्ण स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में दिखाई देगा। ईश्वर की कृपा से महात्मा ज़ग़लुल को धर्मपत्नी भी वैसी ही मिल गई थी। इस पुण्यवती महिला के संसर्ग ने पाशा के जीवन को और भी उज्ज्वल बना दिया था। देश-सेवा के कार्यों में छाया की भाँति

स्याम की राजकुमारी, जो शीघ्र ही यूरोपीय देशों में भ्रमणार्थ जाने वाली हैं।

उन्होंने पति का साथ दिया था। उनके बन्दी या द्वीपान्तरित होने पर कई बार उन्होंने उनके कार्यों को सँभाल कर अपनी कार्यदक्षता का परिचय दिया था। जिस समय जिबराल्टर में पाशा का स्वास्थ्य ख़राब हो गया था, उस समय लोगों ने बहुत कहा कि आप पाशा के पास चली जायँ, आपकी शुश्रूषा से उनका स्वास्थ्य ठीक हो जायगा; परन्तु पाशा ने तो उन्हें पहले से ही राष्ट्र-सेवा का महान कार्य सौंप रक्खा था। उन्होंने पत्नी को जिबराल्टर आने की आज्ञा नहीं दी।

महात्मा ज़ग़लुलपाशा के जीवन का इतिहास वास्तव में मिश्र की स्वाधीनता का इतिहास है। पाशा का त्याग, आदर्श कर्मनिष्ठा और देश-प्रेम की तुलना नहीं हो सकती। बहुतों की धारणा है कि अगर सन् १९२७ में

पाशा की मृत्यु न हो जाती और वे कम से कम दो वर्ष भी और जीवित रह जाते, तो मिश्र पूर्ण रूप से स्वाधीन हो जाता। परन्तु किसी ने सच कहा है कि—"मेरे मन कछु और है, कर्ता के कछु और !"

अस्तु, महात्मा ज़गलुल के इस्तीफ़ा देकर अलग हो जाने पर श्री० सरवत पाशा मिश्र के प्रधान-मन्त्री नियुक्त हुए। अङ्गरेज़ों ने अपने स्वार्थों की रक्षा करते हुए, मिश्र के साथ फिर नए सिरे से समझौता करने का विचार किया। इस सम्बन्ध में सरवत पाशा से बातचीत करने का भार सर ऑस्टिन चेम्बरलेन ने ग्रहण किया। बहुत दिनों तक लिखा-पढ़ी हुई। शायद दोनों एक बार मिले भी, परन्तु कोई नतीजा नहीं निकल सका। अङ्गरेज़ अपने स्वार्थों को तिल भर छोड़ने को भी प्रस्तुत न हुए। फलतः सरवत पाशा भी अपने पूर्ण स्वाधीनता के सिद्धान्त पर डटे रहे। उस समय मिश्र की पार्लामेण्ट में राष्ट्रीय दल की ही प्रधानता थी। इसलिए ब्रिटिश हाई-कमिश्नर की सलाह से मिश्र के राजा फ़ाद ने पार्लामेण्ट को तोड़ दिया। फिर नवीन पार्लामेण्ट का सङ्गठन हुआ और महमूद नए मन्त्री चुने गए। अङ्गरेज़ों ने महमूद पाशा के साथ भी सन्धि की चर्चा आरम्भ की। इङ्गलैण्ड की वर्तमान मज़दूर-सरकार ने एक लम्बा-चौड़ा प्रस्ताव लिख भेजा, जिसका सार-मर्म नीचे दिया जाता है :—

(१) मिश्र से ब्रिटिश फ़ौज हटा ली जायगी, (२) दोनों देशों में परस्पर मित्रता का सम्बन्ध रहेगा, (३) मिश्रस्थ विदेशी प्रजा की जान और माल की रक्षा का दायित्व मिश्र की सरकार पर रहेगा, (४) मिश्री सेना को अगर विदेशी राष्ट्रों से वैदेशिक शिक्षागत सहायता लेने की आवश्यकता होगी तो ब्रिटिश सरकार से अनुमति लेने की आवश्यकता होगी, (५) स्वेज़ नहर की रक्षा के लिए मिश्र में एक ब्रिटिश सेना मौजूद रहेगी, (६) मिश्र के जो अफ़सर विदेशों में नियुक्त होंगे, वे अङ्गरेज़ होंगे, (७) हाई-कमिश्नर के स्थान पर दोनों देशों में एक-एक राजदूत रहेंगे, (८) सुदान का शासन-कार्य सन् १८९९ की सन्धि के अनुसार होता रहेगा, परन्तु इस सम्बन्ध में नवीन सुधार करने का अधिकार इङ्गलैण्ड को रहेगा, (९) इस समझौते के कारण विश्वराष्ट्र-सङ्घ अथवा केलग के समझौते में किसी प्रकार की बाधा नहीं पड़ेगी, (१०) यह केवल २५ वर्ष तक जीवित रहेगी।

इन शर्तों के सम्बन्ध में महमूद पाशा के साथ अङ्गरेज़ों का जो पत्र-व्यवहार हुआ है, उससे मालूम हुआ है कि मिश्री सेना को ब्रिटिश प्रणाली से शिक्षा दी जाएगी और उसका भार इङ्गलैण्ड पर रहेगा। स्वेज़ की रक्षा के लिए जो फ़ौज मिश्र में रहेगी, बिना भाड़ा के ही रहेगी। ब्रिटिश और मिश्र के सिवा कोई हवाई जहाज़ स्वेज़ के ऊपर तेरह मील से अधिक नहीं जा सकेगा। मिश्र के विचार और राजस्व विभाग में जो अङ्गरेज़ अफ़सर नियुक्त हैं, वे कुछ दिनों तक अपने पदों पर बदस्तूर क़ायम रहेंगे।

परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक पण्डितों का कथन है कि उपर्युक्त शर्तें भी चालबाज़ी से ख़ाली नहीं हैं। अङ्गरेज़ किसी तरह मिश्र को पूर्णरूप से स्वाधीन नहीं रहने देंगे।

अस्तु, जिस समय इन शर्तों पर दोनों दलों के नेता विचार कर रहे थे, उस समय मिश्र के राष्ट्रीय दल वालों ने इसका तीव्र विरोध किया था। उन लोगों ने घोषणा की कि मिश्र का वर्तमान शासन-तन्त्र न्यायानुमोदित नहीं है, इसलिए जब तक पार्लामेण्ट का पुनः निर्वाचन न हो, तब तक इस सन्धि के सम्बन्ध में कोई बातचीत नहीं होनी चाहिए। परन्तु इङ्गलैण्ड की वर्तमान मज़दूर सरकार को यह आशा है कि अन्त में मिश्र का राष्ट्रीय दल राज़ी हो जायगा। क्योंकि उसे यह मानना ही पड़ेगा कि इङ्गलैण्ड के अनुदार दल की सरकार इतना देना भी स्वीकार नहीं करेगी। इधर इङ्गलैण्ड का अनुदार दल भी इस सन्धि का घोर विरोध कर रहा है। देखना चाहिए, ऊँट किस करवट बैठता है।

नवद्वीप-यात्रा

[श्री० दीनानाथ जी, सिद्धान्तालङ्कार]

कुछ समय हुआ, हमें नवद्वीप जाने का अवसर हुआ था। धार्मिक, सामाजिक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से यह स्थान बङ्गाल प्रान्त में बड़ा महत्वपूर्ण है। इसलिए इसके सम्बन्ध में कुछ निवेदन करना अनुचित न होगा।

भौगोलिक स्थिति

नवद्वीप का शब्दार्थ "नूतन द्वीप" है। 'नूतन' का अर्थ है 'नया' और 'द्वीप' उस भूखण्ड का नाम है जिसके चारों ओर पानी हो। यह शब्दार्थ इस स्थान पर ठीक चरितार्थ होता है। इसके तीन ओर भागीरथी और एक ओर बरसाती नाला है, जिसमें प्रायः जल रुका रहता है। नगर भागीरथी-तट पर ही आबाद है और नाला रेलवे स्टेशन के पास से चलता दिखाई देता है। गङ्गा की जो धारा नवद्वीप को तीन ओर से घेरे हुए है वह शुद्ध धारा कही जाती है। कहा जाता है कि हरिद्वार से जो गङ्ग-धारा कानपुर-पटना तक आती है, वह मुर्शिदाबाद से दो दिशाओं में विभक्त हो जाती है। एक धारा, जो ढाका इत्यादि के साथ होकर जाती है "पद्मा" कहलाती है और दूसरी नवद्वीप के साथ बहती है, जिसे 'भागीरथी' कहा जाता है गङ्गा की शुद्ध और अजस्र धारा यही मानी जाती है और इसीलिए यह स्थान तीर्थ माना जाता है। इस द्वीप का कुल विस्तार १० मील के लगभग कहा जाता है। इसकी आबादी १६-१७ हज़ार से अधिक नहीं है। शहर रेलवे-स्टेशन से डेढ़ मील के लगभग दूर है। इसके उत्तर-दक्षिण सुन्दर और घने जङ्गल हैं। गङ्गा के पार—दूसरी ओर—सघन वन दिखाई देता है। प्राकृतिक शोभा वस्तुतः रमणीय है। बङ्गाल का मुख्य और एकमात्र तीर्थ-स्थान होने के कारण कई धनाढ्यों की विशाल और सुन्दर कोठियाँ बनी हुई हैं। तुरीयाश्रम-सेवियों के लिए भी कई स्थान बने हुए हैं। धर्मशालाएँ भी हैं। मन्दिरों की बहुतायत है।

यह स्थान कलकत्ता से उत्तर-पश्चिम की ओर ६३ मील दूर है, जहाँ से तीसरे दर्जे का रेल-भाड़ा १≡)॥ आने लगता है।

ऐतिहासिक महत्व

इस स्थान का इतिहास ९६० ई० से पहले का निश्चित रूप से नहीं मिलता है। गौड़ राजा लक्खनसिंह के समय से कुछ-कुछ इतिहास मिलता है। तत्कालीन राजाओं की यही राजधानी कही जाती है, पर कुछ विद्वानों का मत है कि गौड़ और नवद्वीप दोनों थीं।

पर नवद्वीप को अत्यन्त पवित्र, उच्च और तीर्थ-स्थान समझे जाने का एकमात्र प्रधान कारण चैतन्य प्रभु (गौराङ्ग देव वा निमाई) का इस स्थान पर जन्म लेना है। ११वीं-१२वीं सदी में भारत में कई भक्तवरों और सुधारकों ने जन्म लिया था और गौराङ्ग देव वा चैतन्य प्रभु उनमें से एक थे। ये वैष्णव मत के प्रधान संस्थापक और आचार्य माने जाते हैं। बङ्गाल में इस महापुरुष को उसी श्रद्धा और भक्ति की दृष्टि से देखा जाता है जैसे पञ्जाब में गुरु नानक देव को और महाराष्ट्र में तुकाराम देव को।

इस स्थान के महत्व का तीसरा कारण यह है कि नवद्वीप शाक्त मतावलम्बियों का भी केन्द्र है। जिनके तान्त्रिक मत का बङ्गाल में भारी प्रचार है। शहर के ठीक बीच में शाक्तों की देवी का बड़ा भारी मन्दिर है, जहाँ पर प्रातः-सायं उपासकगण बड़ी संख्या में एकत्रित होते हैं। इस स्थान का नाम "पोड़ामाताला" है। शहर के अन्य भागों में भी शाक्तों के मन्दिर हैं। यहाँ पर "बूढ़े शिव" का भी एक प्रसिद्ध मन्दिर है। शिवरात्रि के अवसर पर इस 'बूढ़े शिव' का देवी के साथ प्रति वर्ष बड़ी धूमधाम से विवाह होता है। कहते हैं, एक बार यहाँ के वैष्णवों ने इस 'बूढ़े शिव' की मूर्ति को चुरा लिया। तब वहाँ पर एक और शिव की स्थापना की गई और उसी से देवी का विवाह किया जाने लगा। कुछ काल बाद पुरानी मूर्ति मिल गई, तब नए शिव जी महाराज

को पदच्युत करके फिर पुराने बूढ़े देवता के साथ विवाह किया जाने लगा !!

इस स्थान के महत्व का चौथा कारण विद्या का केन्द्र होना है। भारत के अन्य प्रान्तों में नवद्वीप का प्रसिद्ध नाम "नदिया" है। प्राचीन काल से यह संस्कृत विद्या का और विशेषतः न्याय-शास्त्र का केन्द्र रहा है। काशी की तरह यहाँ पर भी दूर-दूर से पढ़ने के लिए छात्र आते हैं। काशी संस्कृत व्याकरण का और नदिया न्याय-शास्त्र का केन्द्र अभी तक माना जाता है। प्राचीन काल में कई

श्रीमती रीनियस

आप पुदुकोट्टा (मद्रास) के पुलिस-कमिश्नर श्री० एस० टी० रीनियस की धर्मपत्नी हैं, जो पुदुकोट्टा स्टेट की व्यवस्थापिका सभा की सदस्या नियुक्त हुई हैं।

चोटी के पण्डित इसी स्थान से हुए थे। यहाँ के पण्डितगण प्रायः शाक्त मतावलम्बी होने से देवी के उपासक हैं। प्रत्येक छात्र "पोड़ामाताला" में स्थापित देवी को प्रातः-सायं प्रणाम कर अध्ययन करता है।

इस प्रकार वैष्णवों और शाक्तों का केन्द्र होने के कारण यहाँ पर प्रायः दोनों मतावलम्बियों के झगड़े हो जाया करते हैं। वैष्णवों का यहाँ पर रास-उत्सव नाम का बड़ा भारी मेला होता है। इसके मुक़ाबले में शाक्त कार्त्तिक पूर्णिमा पर अपना भारी मेला करते हैं। इस अवसर पर देवी की १५-२० फ़ीट तक ऊँची और भिन्न-भिन्न प्रकार की मूर्तियाँ बड़े समारोह से निकाली जाकर गङ्गा में विसर्जित की जाती हैं। इन मेलों पर मद्य, मांस, व्यभिचार इत्यादि का विशेष प्रचार होता है।

नवद्वीप या 'विधवाद्वीप'

हिन्दुओं के अन्य तीर्थ-स्थानों की तरह नवद्वीप की भी दुर्दशा है। परन्तु एक बात के कारण यहाँ की सामाजिक दशा अन्य तीर्थों से भी गिरी हुई है और वह है विधवाओं का भारी संख्या में होना। लेखक को भारत के कई तीर्थों में जाने का अवसर मिला है, परन्तु विधवाओं की इतनी भारी संख्या बहुत कम देखने में आई है। साधारण दृष्टि से तो मालूम होता है कि यहाँ पर विधवाओं की संख्या पुरुषों से अधिक है। आपको घाटों, बाज़ारों, सड़कों और गलियों में विधवाएँ ही विधवाएँ नज़र आएँगी। इस विचार से अगर नवद्वीप को विधवाद्वीप कह दिया जावे तो अनुचित न होगा। यहाँ की कुल आबादी १७ हज़ार के लगभग है, जिसमें ३ हज़ार पुरुष—जिनमें बच्चे भी शामिल हैं और शेष १४ हज़ार स्त्रियाँ हैं। इन १४ हज़ार स्त्रियों में भी ८० फ़ी सदी के लगभग विधवाएँ हैं। इन विधवाओं में बहुतेरी युवती भी हैं। इन्हें "सेवादासी" के नाम से भी कहा जाता है। मन्दिरों के अधिकारियों और गोसाइयों में एक-एक के पास ३-४ और किसी-किसी के पास १० तक सेवादासियाँ हैं। इस प्रकार इन बेचारियों को मन्दिरों के गोसाइयों और यात्रियों का दयापात्र बनते हुए अपने पेट के लिए कुमार्ग-गामी बनना पड़ता है। अब पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं कि यहाँ पर कितना भयङ्कर दुराचार और व्यभिचार फैला होगा। विधवा बहिनों की इस हृदय-बेधक दुर्दशा को देख, आँखों में अनायास आँसू आ जाते हैं। ये बहिनें बङ्गाल प्रान्त की ही हैं, परन्तु बङ्गाली इनके उद्धार के प्रति एकदम निश्चेष्ट हैं। क्या बङ्गाल के हिन्दू नेता इधर ध्यान देंगे?

मातृ-मन्दिर

इस प्रान्त के हिन्दू गर्भवती विधवाओं वा कुमारिकाओं को भी बिरादरी के डर से यहाँ के मातृ-मन्दिरों में छोड़ जाते हैं, जहाँ पर उन्हें प्रसव-काल तक रक्खा

जाता है। यह सब कार्य यथासम्भव गुप्त ही होता है। सरकार द्वारा स्वीकृत वा सहायता प्राप्त मातृ-मन्दिर तो यहाँ पर एक या दो ही हैं, पर गुप्त रूप से ५०-६० के लगभग हैं। इस नीम-सरकारी मातृ-मन्दिर में केवल १६ बिस्तर (Beds) ही हैं, और ख़र्च भी बहुत पड़ता है, इसलिए कुछ स्थानाभाव और कुछ अधिक व्यय के भय से सर्व-साधारण इस मातृ-मन्दिर से कुछ विशेष लाभ नहीं उठा सकते और तब उन्हें गुप्त मातृ-मन्दिरों की शरण लेनी पड़ती है। ये गुप्त मातृ-मन्दिर स्पष्ट और सीधी भाषा में, गर्भ-हत्या और शिशु-हत्या के अड्डे हैं। इनमें होता यह है कि या तो अधिकांश गर्भ गर्भावस्था में अथवा उत्पन्न होते ही नष्ट कर दिए जाते हैं और यदि अभागा, हठी बच्चा फिर भी बचा रहा तो इन "मातृ-मन्दिरों" (?) के रक्षक उन्हें २) या ३) फ़ी बच्चे के हिसाब से गङ्गा-पार कृष्णनगर के ईसाइयों को सौंप देते हैं। नवद्वीप के एक वयोवृद्ध और अनुभवी वैद्य महाशय ने हमें बताया कि कम से कम ५० बच्चे प्रति मास इस प्रकार इस तीर्थ-स्थान में नष्ट किए जाते हैं। हिन्दुओं की इस नीचता और क्रूरता पर क्या किसी टिप्पणी की आवश्यकता है? जहाँ पर जाति के लालों और विकास के अङ्कुरों को इस प्रकार निर्दयतापूर्वक नष्ट-भ्रष्ट करके ठुकराया जावे, वहाँ विनाश, पतन और क्षय के अतिरिक्त क्या हो सकता है? बङ्गाल के हिन्दू वस्तुतः अपने पैर पर आप ही कुल्हाड़ी मार रहे हैं। हिन्दुओं से उत्पन्न यही बच्चे बड़े होकर हिन्दुओं को ही विधर्मी बनाने का कार्य करते हैं। "मियाँ की जूती मियाँ के सिर पर" इसी का नाम है।

भजनाश्रम

भिवानी और कलकत्ता के कुछ मारवाड़ी सेठों के रुपए से यह संस्था स्थापित की गई है। प्रतिदिन प्रातः ६ से १० और सायं ६ से ९ बजे तक विधवाएँ, जिनकी संख्या २०० से ऊपर होती है—यहाँ पर इकट्ठी हो, "हरे कृष्ण, हरे कृष्ण ; कृष्ण कृष्ण हरे हरे! हरे राम, हरे राम ; राम राम हरे हरे!!" का उच्च स्वर से लगातार सस्वर आलाप करती हैं, जिसके बाद प्रत्येक को दोनों समय १ पाव चावल और थोड़ी दाल-तरकारी का सीधा दिया जाता है। इस आश्रम के संस्थापकों ने तो शायद विधवाओं के अन्दर भक्ति-भाव का प्रचार करने और उन्हें हरि-भजन की ओर लगे रहने के लिए इस प्रणाली का प्रारम्भ किया हो, पर इसका फल सर्वथा विपरीत हो रहा है। भक्ति की जगह दिखावट और कृत्रिमता अधिक है। भजन के स्थान पर गुप्त दुराचार के प्रचार का अड्डा यह आश्रम बन रहा है। जिन विधवाओं को प्रातः-सायं कुछ खाने को तो दे दिया जाता है, पर रात गुज़ारने के लिए जिन्हें अपना प्रबन्ध आप करना पड़ता है, वे क्या करती होंगी वा दुष्ट पुरुष उनसे क्या-क्या करवाते होंगे, यह सहज ही में अनुमान किया जा सकता है। भजन के

डॉक्टर के० लक्ष्मी देवी, एल० सी० पी० एस०

आप हाल ही में होने वाले आन्ध्र प्रान्तीय महिला-सम्मेलन की सभानेत्री थीं।

लिए जो विधवाएँ प्रातः-सायं एकत्रित होती हैं उनके सम्बन्ध में भी हमने कुछ बातें देखीं, जिन्हें हम यहाँ पाठकों के सम्मुख रखना आवश्यक समझते हैं—(१) हमने देखा कि युवती विधवाओं को तो आगे लैम्प के प्रकाश में और मुख्य प्रवेश-द्वार के सामने ही बिठाया जाता है और बूढ़ी, अधेड़ स्त्रियों को पीछे की ओर एक कोने में फेंक दिया जाता है। (२) इन युवतियों के बीच में कुछ पुरुष—सम्भवतः आश्रम के कार्यकर्त्तागण—बैठे उनके साथ पूर्व-लिखित भजन का आलाप करते और

इधर-उधर ताकते रहते हैं। साथ ही, अन्य दर्शकगण भी जँगले के बाहर यथेच्छ बैठ सकते हैं। (३) भजन करते-करते तीन-चार युवती विधवाएँ जो प्रायः आगे की पंक्ति में ही बिठाई जाती हैं, एक निश्चित समय के बाद पहिले इधर-उधर सिर मारती हैं और फिर खड़ी होकर नाचने सी लगती हैं। उनके चारों ओर स्त्री-पुरुष का सम्पूर्ण समूह यथापूर्व "हरे कृष्ण" इत्यादि उपर्युक्त टप्पे का सस्वर गान करते रहते हैं। इस प्रकार आध-पौन घण्टा तक नाच-सा होता रहता है, फिर शायद कुछ भक्ति के

श्रीमती बसुमती ठाकोर

आप सूरत कॉङ्ग्रेस कमिटी की 'डिक्टेटर' हैं, जो हाल ही में गिरफ़्तार कर ली गई हैं।

आवेश और कुछ थकावट के कारण वही स्त्रियाँ बेहोश सी होकर नीचे गिरने को होती हैं कि उसी समय उन्हें कुछ पास बैठी स्त्रियाँ सँभाल कर लिटा देती हैं और उनके मुख को ढाँप दिया जाता है। इस सम्पूर्ण घटना-चक्र के कुछ बाद ही भजन समाप्त होता है और इन स्त्रियों को उठा कर अन्यत्र ले जाया जाता है। यह सब क्रिया प्रतिदिन प्रातः-सायं होती है। यह कहाँ तक भक्ति-उद्रेक और ईश्वर-भजन-जनित परमानन्द के कारण होता है, यह हम नहीं कह सकते। पर वहाँ कई बार जाकर देखने और स्थानीय सज्जनों से बातचीत करने से इतना तो अवश्य प्रतीत होता है कि यह सब काण्ड कुछ पूर्व-निर्धारित (Pre-arranged) और (Mechanical) सा ही होता है। भक्ति का यह भूत कुछ निश्चित स्त्रियों पर ही—और वे भी विशेषतः युवती—प्रतिदिन लगभग निश्चित समय पर और एक ही प्रकार से आरूढ़ होता हो, शेष पर नहीं, यह भी समझ में नहीं आता। यह भी सुना था कि जो स्त्री इस प्रकार बेहोश-सी हो जाती है, उसे अन्य स्त्रियों की अपेक्षा कुछ अधिक और उत्तम सीधा दिया जाता है।

इस भजनाश्रम में यात्रियों के ठहरने और भोजन इत्यादि का भी प्रबन्ध है, जिसके लिए प्रतिदिन कुछ—सम्भवतः ॥)—देना होता है। ठहरने के सम्बन्ध में जो नियमावली टँगी हुई है, उससे जान पड़ता है कि सब प्रान्तों के लोग इस आश्रम में नहीं ठहर सकते। जिन-जिन प्रान्तों के यात्री ठहर सकते हैं, उनमें बङ्गाल और पञ्जाब का नाम नहीं है। पता नहीं, यह प्रान्तीय भेद-भाव यहाँ पर क्या सोच कर रक्खा गया है? इस आश्रम में ठहरने वाले यात्रियों में अधिकांश संख्या मारवाड़ियों की ही होती है।

इस आश्रम पर व्यय किए जाने वाले धन का व्यय इससे अच्छे रूप में भी हो सकता था, पर हिन्दुओं में धन के सद्व्यय का भाव अभी कहाँ?

ललिता-सखी

यह कोई आश्रम, मन्दिर वा विद्यालय नहीं है, अपितु जीवित-जाग्रत एक सखी हैं, जिन्होंने अपना नाम "ललिता" रक्खा हुआ है। पाठक यह मत समझें कि ये वास्तव में कोई स्त्री हैं, परन्तु एक बङ्गाली ब्राह्मण महाशय ने कृष्ण-उपासना के लिए सखी-भाव से अपने को स्त्री-रूप में परिवर्तित कर लिया है। आपने स्त्रियों का सा ही रूप बनाया है। बातचीत में भी अपने लिए आप स्त्री-लिङ्ग, वचन वा क्रिया प्रयुक्त करते हैं। वेश-भूषा और व्यवहार (जैसे मास में एक बार ४ दिन के लिए रजोदर्शन के कारण अपवित्र रहना) भी स्त्रियों सा ही है। आपसे मिलने का हमें दो-तीन बार अवसर प्राप्त हुआ। आप अपने को कृष्ण भगवान की दासी-रूप मान, उनकी उपासना करते और उसीका प्रचार करते

हैं। आपका कहना है कि कृष्ण-पद प्राप्त करने के लिए यही सर्वोत्तम उपाय है। आपकी आयु ४० साल के लगभग है। इनके पास नवद्वीप तथा अन्य स्थानों की बहुतेरी स्त्रियाँ आती हैं और इन्हें "दीदी" (बड़ी बहिन) कह कर पुकारती हैं। भक्ति वा प्रेमवश वे रमणियाँ इनकी गोदी में भी जा बैठती हैं और प्रेमालाप करती हैं। हिन्दुओं की विचित्र खोपड़ी के कारण इन "सखी" महाशय की ख़ूब पूजा होती है और इनके कई चेले-चेलियाँ हैं। ये "सखीनुमा" महाशय इस समय लाखों की जायदाद के मालिक बने हुए हैं।

मन्दिर-प्रवेश

नवद्वीप के सब मन्दिर सब जातियों के लिए खुले हुए नहीं हैं। अधिकांश मन्दिरों में ब्राह्मणों के अतिरिक्त शेष जाति वालों से २ आना, ४ आना और ८ आना तक प्रवेश-फ़ीस ली जाती है। अछूतों के लिए कई मन्दिरों में प्रवेश निषिद्ध है। पाठक यह बात ध्यान में रक्खें कि चैतन्य महाप्रभु, जिनकी नवद्वीप जन्म-भूमि कही जाती है और जिनकी मूर्ति ही अधिकांश वैष्णव मन्दिरों में है—जात-पाँत सर्वथा नहीं मानते थे, उनके अनुयायियों और भक्तों में न केवल अछूत ही, अपितु कई मुसलमान भी थे !!

इन संस्थाओं के अतिरिक्त यहाँ पर संस्कृत पढ़ने वाले छात्रों के निवास के लिए एक मारवाड़ी सज्जन की ओर से "वेद-विद्यालय", रोगियों की सेवा-शुश्रूषा तथा निवास के लिए एक कमिटी के अधीन "सेवा-आश्रम" एक "पुस्तकालय" और "वाचनालय" इत्यादि संस्थाएँ भी यहाँ हैं।

उपसंहार

अन्य तीर्थ-स्थानों की तरह और कई अंशों में उनसे भी अधिक नवद्वीप इस समय व्यभिचार, पाखण्ड, छल और ढोंग का केन्द्र बना हुआ है। बङ्गाल के नवयुवकों ने जिस प्रकार सन् १९२४ में तारकेश्वर महन्त के विरुद्ध तुमुल आन्दोलन और सत्याग्रह कर उसे पदच्युत कराया था, क्या अब भी वे अपने प्रान्त के एकमात्र प्रधान तीर्थ-स्थान के सुधार की ओर तनिक भी ध्यान नहीं देंगे ?

श्री० ए० भुवाराहम पिल्लाई

आप चिदामहारम (मद्रास) के टाउन हाई स्कूल के प्रमुख हिन्दी-अध्यापक हैं। आप तामिल भाषा के बड़े प्रकाण्ड विद्वान हैं। इस वर्ष आपने मद्रास विश्व-विद्यालय से सर्वोच्च परीक्षा पास की है। आपको १,०००) रु० का नक़द पुरस्कार भी दिया गया है।

March 1931

THE INDIAN ELEPHANT IS AN INTELLIGENT ANIMAL, AND WILL ALWAYS REMEMBER

AN ACT OF KINDNESS OR ABUSE
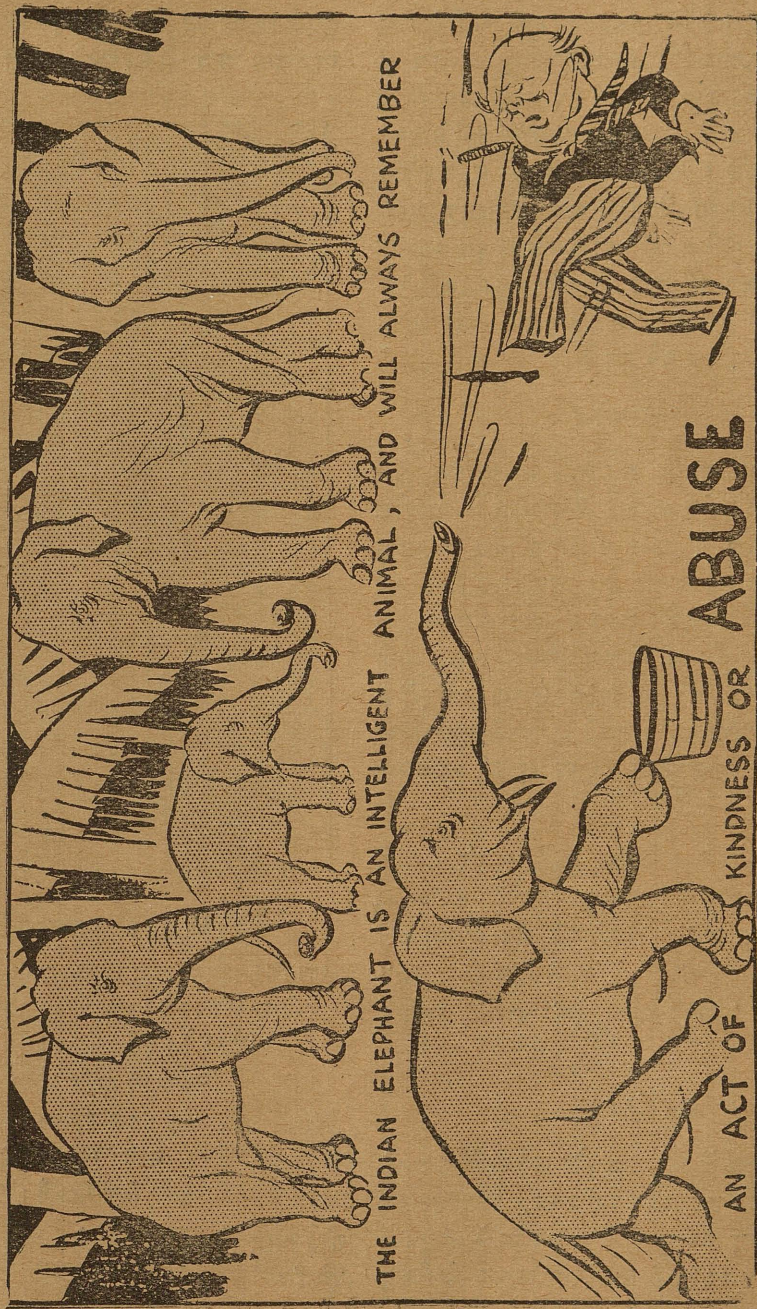
हिन्दोस्तानी हाथी बड़ा बुद्धिमान जानवर है

वह हमेशा मेहरबानियों और अपमानों को ख़ूब समझता है, वह बदला लेना भी जानता है

(यह कार्टून "डेली हेरेल्ड" नामक विलायती पत्र में प्रकाशित हुआ था)

स्वनामधन्य मोतीलाल नेहरू

[श्री० आनन्दीप्रसाद जी श्रीवास्तव]

थे स्वदेश-सीपी के द्युतिमय
मोती, थे लालों में लाल,
भरतखण्ड के गहन सिन्धु के—
थे तुम एक रत्न सुविशाल,

तुम नीतिज्ञों के गौरव थे,
राजनीति-पटु जन की आन,
भोग-त्याग दोनों की सीमा,
जीवित सरल आत्म-सम्मान !

मनोयोग के परम पुजारी,
जनक जवाहिर के द्युतिमान,
और कहें क्या तुमको, तुम थे
मूर्तिमान भारत की शान,

तुम गाँधी के दक्षिण कर थे,
भारतीय जन के अभिमान,
कारागार-यन्त्रणा पाकर
हुए देश पर तुम बलिदान !

भारत-माता के प्यारे, अग-
णित आँखों के तारे तुम !
हाय, छोड़ कर साथ हमारा
क्यों किस लोक सिधारे तुम !

लालच क्या थी तुम्हें स्वर्ग की ;
भवन तुम्हारा तो था स्वर्ग,
भारत के हित से बढ़ कर तुम—
नहीं समझते थे अपवर्ग,

फिर क्यों जाना हुआ तुम्हारा
भारत की विपत्ति के काल,
कौन समझ सकता है जग में
महज्जनों के मन का हाल,

करना था क्या तुम्हें स्वर्ग में—
जाकर प्रजातन्त्र स्थापन,
पर इस कारण से भी भारत
त्याग न सकता था तव मन !

भारत के गुरु, प्रजातन्त्र के
अधिपति का भावी शुभस्थान
कितना शोभित होता तुमसे—
तुम थे, सभी गुणों की खान ।

चले गए तुम हाय छोड़ कर
रोता भारत जन-समुदाय,
नाता हमसे सभी तोड़ कर
बहु विधि से करके निरुपाय ।

कौन करावेगा भारत में
शुभातङ्क से न्याय-विधान ?
कौन करेगा अब स्वतन्त्र—
भारत का शासन-विधि-निर्माण ?

हुआ भाग्य का जो निर्णय था,
कुटिल काल की गति का रोध,
किसके किए हुआ, उसका तो
हो सकता न प्रथम है बोध !

स्वर्गीय पण्डित मोतीलाल नेहरू

जो न करना था, कर गया कोई ! वक़्त से पहिले मर गया कोई !!

"इस समय देश की समस्या हल करने की कुञ्जी ग्रेट-ब्रिटेन के हाथों में है और उसे भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य देने का तथा भारत को उसे स्वीकार करने का अवसर आ गया है । यदि ग्रेट-ब्रिटेन इस अवसर से लाभ उठा कर शीघ्र ही समस्या का निरूपण न करेगा, तो वह दिन दूर नहीं है, जब समस्या की कुञ्जी भारत के हाथों में आ जायगी और वह ग्रेट-ब्रिटेन के हाथों से अपनी स्वतन्त्रता ज़बर्दस्ती छीन लेगा (१९२८) ।××× मैं सदैव सम्मानपूर्वक सन्धि करने के लिए तैयार हूँ ; परन्तु जब तक किसी जीवित बच्चे में नेहरू-रक्त की एक भी बूँद रहेगी, तब तक वह पराजय स्वीकार नहीं कर सकता (मृत्यु के कुछ दिन पहले) ।"

—पं० मोतीलाल नेहरू

स अभागे देश ने जब-जब स्वतन्त्रता के लिए संग्राम छेड़ा है, तब-तब उसे भीषण क्षति उठानी पड़ी है। ऐसे ही विकट समय में इसने महामना गोखले को खोया, ऐसी ही विकट परिस्थिति में लोकमान्य तिलक के नेतृत्व से वञ्चित होना पड़ा, ऐसे ही सङ्कट में उसे देशबन्धु दास और पञ्जाब-केसरी से हाथ धोना पड़ा और वैसी ही, वरन् उससे भी विकटतम अवस्था में उसे अपने महान सेनापति पण्डित मोतीलाल नेहरू के अनन्य सहयोग और अद्वितीय परामर्श से वञ्चित होना पड़ा है । परन्तु इन महान पथ-प्रदर्शकों की मृत्यु से देश की राजनैतिक प्रगति में क्या रुकावटें आई हैं ? उनमें से हर एक के जीवन का एक कार्य निश्चित था और उसे पूर्ण करने के उपरान्त ही उन्होंने संसार से कूच किया है । महामना गोखले ने मिण्टो-मॉर्ले सुधारों की जड़ उखाड़ कर कूच किया था, लोकमान्य तिलक ने भारत के कोने-कोने में 'स्वराज्य के जन्म-सिद्ध अधिकारों' का मन्त्र फूँक कर विदा ली, श्री० देशबन्धु दास ने मॉन्टेगू चेम्सफ़र्ड-सुधार और उसके द्वैध शासन पर कुठाराघात कर अपनी राह ली, और पञ्जाब-केसरी लाला लाजपतराय ने साइमन के आकाश-महल को ढाकर अपना कार्य पूरा किया । उन्हीं की नाईं पण्डित मोतीलाल भी भारत के भावी शासन-विधान की नींव स्थापित कर संसार से कूच कर गए । उन नेताओं में और पण्डित मोतीलाल में अन्तर केवल इतना ही था, कि वे अपने लगाए हुए पौधों को पल्लवित नहीं देख सके ; और पण्डित जी ने उन्हें पल्लवित देख लिया है । जिस शासन-विधान की उन्होंने नींव डाली थी, उसे वे थोड़े समय और जीवित रहते तो, भारत में स्थापित देख लेते । देश के वर्तमान संग्राम के वे प्रमुख जनरल थे और ऐसी विकट अवस्था में उनकी मृत्यु से देश की भीषण क्षति हुई है । उन्होंने अपने जीवन में जिस प्रकार जीवन और

मृत्यु से युद्ध किया है, उससे सदियों तक भारत की सन्तान को शिक्षा मिलेगी।

पण्डित मोतीलाल नेहरू ने अपना जीवन राजाओं की नाईं व्यतीत किया है और उनकी मृत्यु भी राजा की नाईं ही हुई है। पण्डित मोतीलाल के पास जो सात्विक और मूल्यवान निधियाँ थीं, वैसी निधियाँ किस राजा या महाराजा को नसीब हुई हैं? पवित्रता और साधुता, सौन्दर्य और शील, कविता और सङ्गीत, स्नेह और प्रेम मूर्तिमान होकर उनके सम्मुख उपस्थित रहे हैं; और मृत्यु के समय उन्होंने भारत को उस सत्य की प्राप्ति के लिए दृढ़तापूर्वक युद्ध करते अपनी आँखों से देख लिया है, जो उसकी सदैव थाती रही है। उन्होंने मृत्यु के समय जिस नवीन-प्राचीन भारत के दर्शन किए हैं, उसका न तो कोई चित्रकार चित्र ही चित्रित कर सकता और न कोई कवि उस काव्यमय भारत पर अपनी लेखनी उठा सकता है।

पण्डित मोतीलाल जी का जन्म सन् १८६१ के मई में हुआ था। अतएव मृत्यु के समय उनकी आयु लगभग ७० वर्ष की थी। आपके जन्म के चार महीने पूर्व आपके पिता की मृत्यु हो चुकी थी। आपके पिता दिल्ली के शहर-कोतवाल थे। पिता की मृत्यु के बाद आपके लालन-पालन तथा शिक्षा का भार आपके ज्येष्ठ भ्राता पण्डित नन्दलाल नेहरू ने लिया। घर पर अरबी तथा फ़ारसी की शिक्षा पाने के बाद आपने कानपुर के गवर्नमेण्ट हाई-स्कूल से मेट्रिक्युलेशन की परीक्षा पास की। इसके पश्चात् आप प्रयाग के म्योर कॉलेज में भरती हुए और यहाँ उन्होंने चार साल तक शिक्षा प्राप्त की, परन्तु कई अनिवार्य कारणों से आप परीक्षा में न बैठ सके। इसके बाद आपने हाईकोर्ट की वकालत की परीक्षा के लिए तैयारी की और उसमें आप सर्व-प्रथम उत्तीर्ण हुए।

परीक्षा में उत्तीर्ण होने के बाद आपने कानपुर में वकालत आरम्भ की और तीन वर्ष के बाद इलाहाबाद हाईकोर्ट में वकालत करने की इच्छा से आप इलाहाबाद में आकर रहने लगे। थोड़े दिनों में ही पण्डित नन्दलाल जी की मृत्यु हो गई। आप भी हाईकोर्ट के वकील थे। अभी तक पण्डित मोतीलाल को इनसे बहुत सहायता मिला करती थी, परन्तु इनकी मृत्यु के बाद गृहस्थी का सारा भार इन्हीं के सिर पर आ पड़ा। थोड़े दिनों में ही पण्डित जी ने अपनी अपूर्व प्रतिभा का परिचय दिया। आपकी गणना हाईकोर्ट के सर्व-श्रेष्ठ वकीलों में की जाने लगी। अपनी
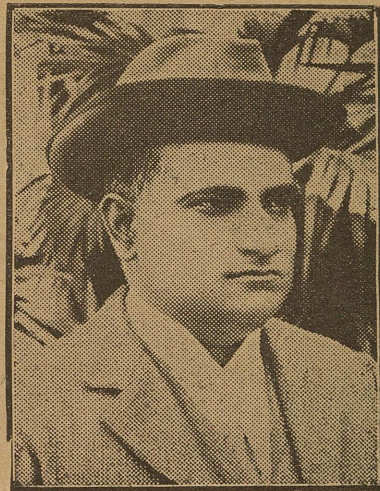
अपनी वकालत प्रारम्भ करने के समय स्वर्गीय पं० मोतीलाल नेहरू का चित्र

अद्वितीय वक्तृत्व-शक्ति तथा अपूर्व बुद्धिमत्ता से वे अपने विरोधी वकील को चकित कर देते थे। आप में मानसिक कार्य करने की शक्ति अपार थी। अपनी बहस में वे हज़ारों पुराने मुक़दमों को उदाहरणार्थ उपस्थित करते थे। इस विषय में आपकी मृत्यु पर शोक प्रकट करते हुए इलाहाबाद हाईकोर्ट के चीफ़ जस्टिस सर ग्रिमवुड मियर्स ने कहा था कि "आप लोगों में से बहुतों को वह दिन याद होगा, जब उन्होंने इटावा के मुक़दमे में रानी किशोरी की ओर से बहस की

थी। संसार में कोई ऐसा वकील नहीं है, जो इस मुक़दमे में पं० मोतीलाल से अधिक बुद्धिमत्ता प्रदर्शित कर सकता।"

परन्तु आप अपना सारा समय वकालत ही में नहीं लगाते थे। आरम्भ से ही उन्होंने राजनैतिक कार्यों में दिलचस्पी दिखाई थी। उस समय राष्ट्रीयता का स्रोत बहुत मन्द गति से बहता था, और भारतीयों को अपनी पराधीनता का पूर्ण बोध न हुआ था। जैसे-जैसे राष्ट्रीय संग्राम ने विशाल रूप धारण किया, वैसे-वैसे पण्डित जी भी उसकी
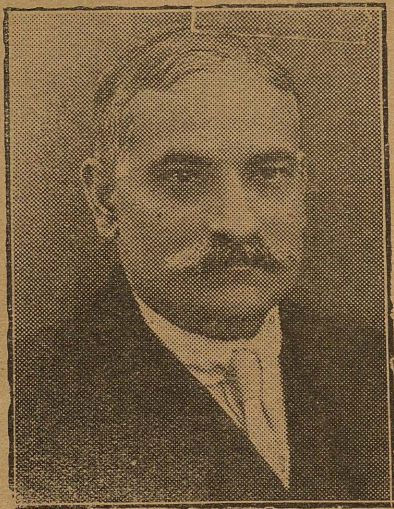
सन् १९१२ का लिया हुआ
स्वर्गीय, पं० मोतीलाल नेहरू का चित्र

ओर अधिक आकर्षित हुए और अन्त में उन्होंने अपना अमूल्य जीवन राष्ट्रीय संग्राम की वेदी पर चढ़ा दिया।

सन् १९०९ से सन् १९२० तक बराबर आप यू० पी० कौन्सिल के प्रतिनिधि चुने गए। सन् १९२० में असहयोग आन्दोलन के सम्बन्ध में आपने कौन्सिल से त्याग-पत्र दिया था। असहयोग आन्दोलन के स्थगित होने के पश्चात् आप भारतीय एसेम्बली के सदस्य चुने गए। आपने वहाँ स्वर्गीय सी० आर० दास के साथ स्वराज्य-पार्टी की स्थापना की थी।

आपका राजनैतिक जीवन तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। आरम्भ में आप बड़े राजभक्तों में से थे। आपको ब्रिटिश सरकार तथा ब्रिटिश राजनीतिज्ञों की बातों पर बहुत विश्वास था। परन्तु जैसे-जैसे आप राजनैतिक क्षेत्र में बढ़े, वैसे ही वैसे आपको ब्रिटिश सरकार की कूटनीति का परिचय मिला और अन्त में आप भारत को ब्रिटिश सत्ता के कट्टर दुश्मन बन गए। आपको यह पूर्ण विश्वास हो गया, कि स्वराज्य माँगने से न मिलेगा—स्वराज्य के लिए युद्ध करना पड़ेगा। आत्म-समर्पण के बिना स्वराज्य प्राप्त न होगा।

सन् १९०७ में आप संयुक्त प्रान्तीय राजनैतिक परिषद् के सभापति चुने गए। उस समय आपको ब्रिटिश लोगों की बातों पर पूर्ण विश्वास था। आपने अपने वक्तव्य में कहा था कि—"मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि इङ्गलैण्ड भारत का सब से बड़ा शुभेच्छु है। वह यहाँ का राज्य किसी बुरी कामना से कदापि नहीं चला रहा है।" धीरे-धीरे ब्रिटिश-सरकार ने अपना रङ्ग दिखाया; बङ्ग-भङ्ग की समस्या उपस्थित हुई। स्वराज्य का आन्दोलन आरम्भ हुआ, स्वदेशी का आन्दोलन बढ़ा और उसके साथ दमन ने भी ज़ोर पकड़ा। स्वदेशी आन्दोलन के नेताओं ने विदेशी माल के बहिष्कार का आन्दोलन उठाया, परन्तु पण्डित मोतीलाल जी इससे सहमत न थे। वे स्वदेशी के विरोधी न थे, परन्तु वे नाशकारी नीति द्वारा इङ्गलैण्ड को अप्रसन्न नहीं करना चाहते थे। वे राजनैतिक सत्ता का विरोध नहीं करना चाहते थे और राजक्रान्ति से उन्हें बड़ी घृणा थी।

युद्ध के समय पण्डित जी ने सरकार को भरपूर सहायता दी। संयुक्त प्रान्त में 'इण्डियन डिफ़ेन्स फ़ोर्स' स्थापित करने का सब श्रेय पण्डित जी को ही है। परन्तु ब्रिटिश सरकार की दमन-

नीति ने उनके शुद्ध हृदय में अविश्वास का बीज बो दिया। "होमरूल" आन्दोलन की नेत्री श्रीमती बेसेण्ट को कारावास दिया गया और हर तरह से जनता के राष्ट्रीय भावों का दमन करने का प्रयत्न किया जाने लगा। यह पण्डित जी के लिए असह्य था। आप भारत-सरकार के पक्के विरोधी बन गए, परन्तु इस समय भी आप ब्रिटिश राजनीतिज्ञों की शुभ कामना पर विश्वास करते रहे। सन् १९१७ की प्रान्तीय परिषद् की बैठक में आप ने लखनऊ में कहा था, कि मैं भारत की सरकार पर ज़रा भी विश्वास नहीं करता, वह भारत की राष्ट्रीय कामनाओं का दमन कर रही है, परन्तु फिर भी मैं ब्रिटिश जाति की और ब्रिटिश नेताओं की न्याय-प्रियता पर विश्वास करता हूँ। मुझे आशा है कि ब्रिटिश सरकार हमारी सारी समस्याओं को न्यायोचित रूप से हल करेगी।

परन्तु धीरे-धीरे उन्हें ब्रिटिश नेताओं की भी कूटनीति साफ़ नज़र आने लगी। वे समझ गए कि ब्रिटिश सरकार सदा अपने अधिकारियों का साथ देगी, सदा उनके कार्यों की प्रशंसा करेगी, चाहे वे कितने ही नृशंस तथा घृणित क्यों न हों। पञ्जाब के घोर दमन तथा जलियाँवाला बाग़ की पाशविक घटनाओं से उनकी आँखें खुल गईं। वे समझ गए कि ब्रिटिश नेताओं की बाह्य सहानुभूति एक जाल-मात्र है। सन् १९१९ के सितम्बर में इलाहाबाद की जनता के सामने भाषण देते हुए आपने कहा था कि—"ब्रिटिश जनता को सदैव यह स्मरण रखना चाहिए कि संसार की कोई जाति अपने अत्याचारियों से बदला लिए बिना चुप नहीं रह सकती। इस विषय में हम अभी बदला नहीं चाहते, हम चाहते हैं कि हमारे साथ न्याय किया जावे। हम चाहते हैं कि हमें अपने ऊपर किए गए अत्याचारों का इज़हार करने का मौक़ा दिया जाय और इन अत्याचारों को दूर करने का साधन ढूँढ़ निकाला जाय। इन अत्याचारों की पूर्ति केवल धन से नहीं हो सकती, न केवल कुछ अधिकारों के देने से हो सकती है। इस महान क्षति की पूर्ति के लिए सम्पूर्ण शासन-प्रणाली को बदलने की आवश्यकता है, जिससे भविष्य में ऐसे अत्याचार न हो सकें। यह कार्य तो केवल स्वराज्य प्राप्त करने पर ही सिद्ध हो सकता है।"

इन शब्दों से पण्डित जी के आन्तरिक परिवर्तन का पूर्ण परिचय मिलता है। उन्होंने स्वतः

एसेम्बली की पोशाक में

स्वर्गीय पं० मोतीलाल नेहरू

जलियाँवाला बाग़ के सम्बन्ध में तहक़ीक़ात की थी। उस महान दुर्घटना के सम्बन्ध में उन्होंने जो पाशविक तथा क्रूर कृत्यों की कथा सुनी थी, उससे उनका हृदय बिलकुल बदल गया और दुर्घटना के समय से वे ब्रिटिश साम्राज्यवाद के कट्टर शत्रु बन गए।

जलियाँवाले बाग़ के भयङ्कर हत्या-काण्ड के बाद अमृतसर में कॉङ्ग्रेस का जो अधिवेशन हुआ था, उसके सभापति पण्डित मोतीलाल नेहरू ही हुए थे और उसी में महात्मा गाँधी के असहयोग आन्दोलन की नींव डाली गई थी। इसी समय से पण्डित मोतीलाल महात्मा गाँधी के कट्टर अनुयायी और उनके ज़बर्दस्त जनरल बन गए।

एक पुराना पारिवारिक चित्र

खड़े हुए—स्वर्गीय पं० मोतीलाल नेहरू। बैठे हुए—राष्ट्रपति पं० जवाहरलाल नेहरू (उनकी गोद में श्रीमती विजय लक्ष्मी पण्डित) और उनकी माता (उनकी गोद में कुमारी कृष्णा नेहरू)

देश में असहयोग का तुमुल संग्राम छिड़ा। कौन्सिलों, अदालतों और सरकारी स्कूलों तथा कॉलेजों का बहिष्कार हुआ। मालूम होता था, कि यह युद्ध भारतीय स्वतन्त्रता का अन्तिम युद्ध होगा। परन्तु, कहा जाता है, जनता महात्मा गाँधी के अहिंसा के आदर्श पर टिकी न रह सकी और उन्हें आन्दोलन बन्द कर देना पड़ा। यह सार्वजनिक संग्राम बन्द होने पर भी पण्डित मोतीलाल का संग्राम बन्द न हुआ। वे ज़बर्दस्त योद्धा थे और चैन से बैठना उनके लिए असम्भव था। असहयोग आन्दोलन स्थगित होने पर उन्होंने वर्तमान शासन-प्रणाली की जड़ काटने के अन्य उपाय सोचे। उन्होंने और श्री० देशबन्धु दास ने कौन्सिलों पर अधिकार जमा कर गवर्नमेण्ट का आन्तरिक बहिष्कार करने की ठानी और इसी उद्देश्य से दोनों ने मिल कर स्वराज्य-पार्टी की स्थापना की। श्री० देशबन्धु दास और

पण्डित जी स्वराज्य-पार्टी के नेता बने और उनके साथ असहयोग आन्दोलन के समय के कई प्रधान नेताओं ने एसेम्बली तथा कौन्सिलों में प्रवेश कर उन पर अपना आतङ्क छा दिया। और इसके फल-स्वरूप गवर्नमेण्ट को रह-रह कर मुँह की खानी पड़ी। परन्तु भारत के भूतपूर्व सेक्रेटरी ऑफ़ स्टेट्स मि० मॉण्टेगू के इण्डिया ऑफ़िस छोड़ते ही हिन्दू-मुसलमानों का वैमनस्य बढ़ने लगा और देश में जगह-जगह हिन्दू-मुसलमानों के झगड़ों का सूत्रपात्र हो गया। इन झगड़ों के कारण महासभा और तबलीग़ तथा तन्ज़ीम आन्दोलन की उत्पत्ति हुई और फलतः स्वराज्य-पार्टी का प्रभाव कम होने लगा। इसी अवसर पर जनता के घोर विरोध करने पर भी साइमन कमीशन की नियुक्ति हुई। कमीशन की नियुक्ति से देश भर में आग लग गई। गवर्नमेण्ट के हाथों न्याय पाने की उसे बिल्कुल ही आशा न रह गई और भारतीय राष्ट्रीयता और गवर्नमेण्ट के बीच में भेद-भाव का ज्वार-भाटा उमड़ पड़ा। लॉर्ड इर्विन ने सन् १९२९ की ३१वीं अक्टूबर की घोषणा से इस ज्वार-भाटे को शान्त करने का बहुत प्रयत्न किया, परन्तु वह केवल बाढ़ को तिनके से रोकने का प्रयत्न था। वह घोषणा जनता को सन्तुष्ट न कर सकी। इसके फल-स्वरूप कलकत्ता कॉङ्ग्रेस ने, जो पण्डित जी के सभापतित्व में ही हुई थी, इस बात की घोषणा कर दी कि यदि एक साल के अन्दर ब्रिटिश गवर्नमेण्ट भारत में औपनिवेशिक स्वराज्य की स्थापना न करेगी तो वह पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा कर देगी। गवर्नमेण्ट इस समय भी जाग्रत सिंह की शक्ति का अन्दाज़ न लगा सकी और उसने कॉङ्ग्रेस की इस चेतावनी को गीदड़भभकी मात्र समझा। कॉङ्ग्रेस के लाहौर के अधिवेशन में पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी गई और उसमें महात्मा गाँधी को सत्याग्रह आन्दोलन प्रारम्भ करने का सम्पूर्ण अधिकार दे दिया गया। लाहौर कॉङ्ग्रेस के बाद देश ने जैसी करवट बदली है, उसे लिखने की आवश्यकता नहीं है। १२वीं मार्च भारत के इतिहास में स्वर्ण-अक्षरों से लिखी जायगी। इसी दिन महात्मा गाँधी ने डाँडी के लिए अपनी
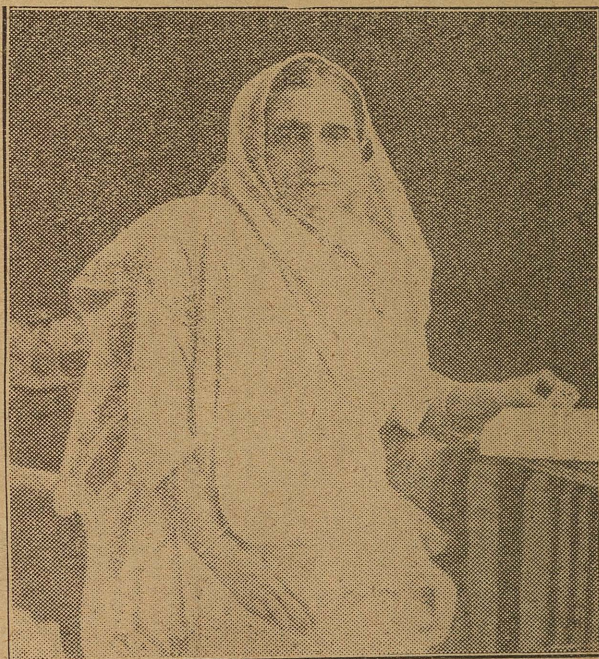
स्वर्गीय पं० मोतीलाल नेहरू की आदर्श धर्मपत्नी और राष्ट्रपति की जननी—श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू

यात्रा प्रारम्भ की थी। ६ ठी अप्रैल नमक-क़ानून भङ्ग करने के लिए निश्चित की गई थी। वास्तव में भारत के वर्तमान विराट आन्दोलन का श्रीगणेश उसी दिन हुआ था। उस दिन से भारत में राजनैतिक असन्तोष की जो भयङ्कर लहर आई, उसे गवर्नमेण्ट न दबा सकी। उसने भारत के साठ हज़ार से ऊपर नर-नारियों को जेलों में ठूँस कर उसे दबाने का प्रयत्न किया, परन्तु

वह सफल न हो सकी। पण्डित मोतीलाल भी इसी संग्राम में जेल भेजे गए थे। और बीमार होकर उन्होंने जो चारपाई वहाँ पकड़ी उसे वे मृत्यु के पहले न छोड़ सके। लोगों का कहना है, कि यदि वे जेल न जाते तो शायद उनकी मृत्यु इतनी जल्दी न होती।

पण्डित मोतीलाल सिद्धान्तवादी न थे; वे एक जीवन के अन्तिम भाग में देश की स्वतन्त्रता पर अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया। देश के लिए उन्होंने अपने राजाओं के से सुख-भोग और हज़ारों रुपए माहवार की आमदनी पर लात मार दी। वे एक प्रतिभाशाली वकील, अनन्य देशभक्त, ज़बर्दस्त सङ्गठनकर्ता और कुशल राजनीतिज्ञ थे। उनकी मृत्यु से इस सङ्कटापन्न समय में देश को
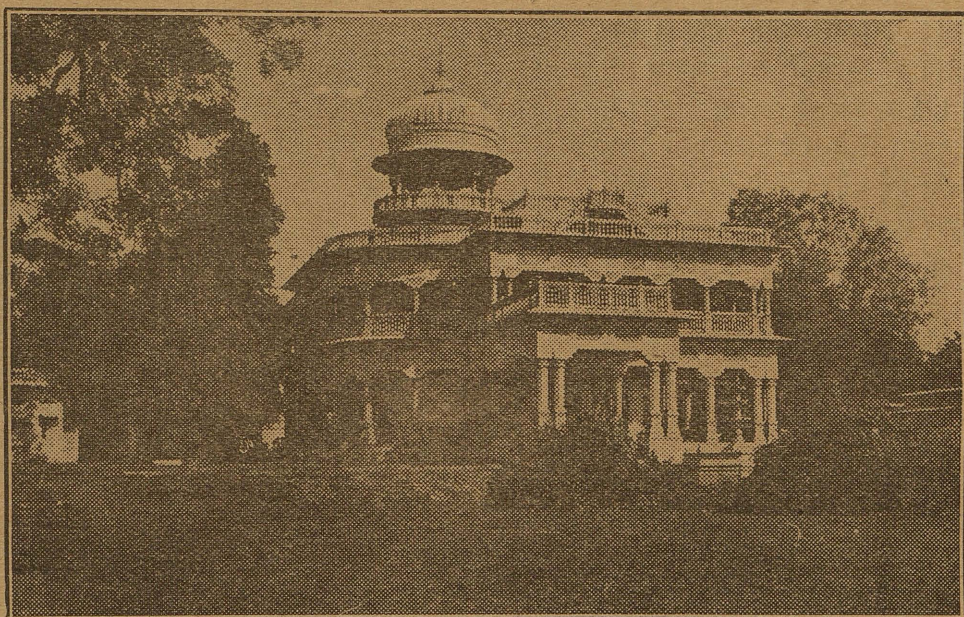
"आनन्द-भवन" के नाम से विख्यात—स्वर्गीय पण्डित जी का राजमहल

दक्ष, दूरदर्शी और व्यवहार-चतुर राजनीतिज्ञ थे; और उनकी इस व्यावहारिक प्रतिभा का आभास 'नेहरू कमिटी रिपोर्ट' से मिलता है। हिन्दू-मुस्लिम एकता के वे बड़े पक्षपाती थे; और यदि वे दोनों को ऐक्य-सूत्र में बाँधने में सफल नहीं हुए तो उसका दोष उन्हें नहीं दिया जा सकता। उन्होंने अपने जो भयानक क्षति पहुँची है, उसकी पूर्ति निकट-भविष्य में असम्भव है। वह सर्व-शक्तिमान परम-पिता उनकी आत्मा को अक्षय शान्ति और परिवार के लोगों को धैर्य प्रदान करें—'चाँद' परिवार की ओर से यही हमारी प्रार्थना है।

सङ्गम के पुनीत तट पर स्वर्गीय पं० मोतीलाल नेहरू के दाह-संस्कार का रोमाञ्चकारी दृश्य

बैठे हुए—पं० जवाहरलाल नेहरू—खड़ी हुईं—श्रीमती सरोजिनी नायडू तथा ६ ठी फ़रवरी को प्रातःकाल ६½ बजे विधवा होने वाली देवी स्वरूपरानी नेहरू

एक आदर्श परिवार

अपनी .कुर्बानी से है मशहूर नेहरू ख़ानदान ! शम्आ-महफ़िल देख ले, यह घर का घर परवाना है !!

सोभाग्यवती श्रीमती कमला नेहरू
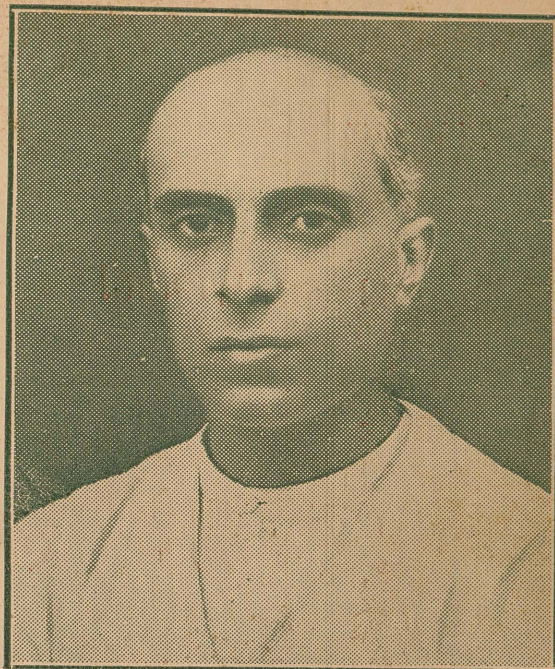
राष्ट्रपति पं० जवाहरलाल नेहरू
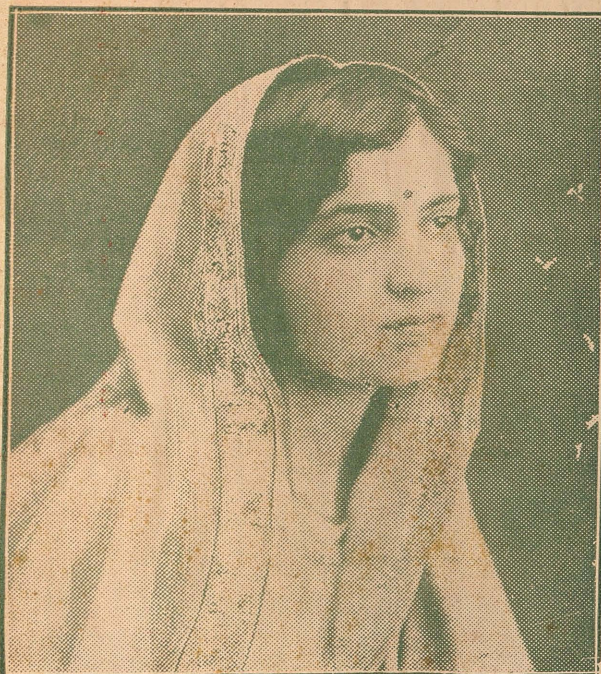
श्रीमती विजय लक्ष्मी पण्डित

कुमारी कृष्णा नेहरू

नारी-जीवन

[श्री० आनन्दीप्रसाद जी श्रीवास्तव]

पत्र-संख्या—२१

[वृद्ध-पत्नी की ओर से बाल-विधवा को]

बहिन,

तुम्हारी विकट अवस्था
हृदय कँपाने वाली थी,
घटा छा रही तुम पर विपदा—
के समूह की काली थी।

तुम अबला थीं, और नित्य
परदे में रहने वाली थीं,
गई लड़कपन में अपने तुम
अति दुलार से पाली थीं।

भय से किया न युद्ध कभी भी
मृदुल तुम्हारे मन ने था,
घेरा बुरी भाँति से तुमको
उन दुष्टों के गण ने था।

धन्य तुम्हारे तन-मन थे जो
रहे सुचेतन वैसे काल,
बड़ा कठिन होता है रखना
धैर्य परिस्थिति पर विकराल।

जिन्हें परिस्थितियों से लड़ना
होता वीर वही होते,
खो-खोकर के धैर्य सँभलते
जो, बस धीर वही होते।

वीर-भाव का, धीर-भाव का
हुआ हमारे सम्यक् नाश,
परदे की यह प्रथा बुरी है
बड़ा विकट बन्धन का पाश !

इसके कारण हो जाती हैं
बड़ी भीरु बहु ललनाएँ,
मन में कहती हैं परदे के
बाहर हैं भय-छलनाएँ।

स्वास्थ्य बिगड़ जाता है उनका,
अविश्वास का दुष्ट प्रभाव
पैदा करता अविश्वास है
उनमें और क्लेश का भाव।

परदे के बाहर दो पग भी
चलना भार उन्हें होता,
बस घर के कमरों-आँगन में
सब संसार उन्हें होता।

क्या जानें वे बाधाओं से
लड़ना, भय का करना रोध,
क्या जानें वे करना अपने
अपमानों का सभ्य-विरोध ?

क्या जानें वे क्या दुनिया है,
क्या है दुनिया में रहना,
उनका जीवन सर सम है,
वे क्या जानें है क्या बहना।

पहने रहती हैं वे यद्यपि
घर में सोने का गहना,
सोने के पिंजरे में यद्यपि
आता है उनको रहना,

पर वे पातीं नहीं जगत् में
कर्मवीरता का गहना,
क्या वे अनुभव कर सकती हैं
मुक्त वायु का मृदु बहना ?

उन सङ्कुचित परिस्थितियों में
पल कर, पा घटना-जञ्जाल
बहिन, हुई होंगी न भला तुम
क्या कातरता से बेहाल ?

मैं अनुमान नहीं कर सकती
किया कौन तुमने सदुपाय,
जिससे तुम बच गईं, कहाँ वे
दुष्ट, कहाँ तुम निर्बलकाय !

बहिन सुनाती हूँ फिर तुमको
मैं अपना आगे का हाल,
आए न वे बहुत दिन मेरे—
पास, शान्त बीता कुछ काल।

उसके बाद एक दिन मेरे
कमरे के बाहर कुछ दूर,
आया एक मनुज, मानो था
यौवन के मद में वह चूर।

अति सुन्दर था, और बदन से
चतुर जान पड़ता था वह,
एक दृष्टि में ही ललनाओं
के मन में गड़ता था वह।

वर्णन मैं कर नहीं सकूँगी,
उसका मुख, उसके लोचन,
अपने प्रति कर लेते थे
आकृष्ट अमल ललना-जन मन।

धीरे-धीरे वह कमरे की
ओर—बढ़ा, आया भीतर,
चाहा मैंने उसे रोक दूँ
मैं कमरे के ही बाहर,

पर उससे कुछ नहीं कह सकी,
कटुता कोमलता को देख,
स्वयं सङ्कुचित हो जाती है
अति असभ्य अपने को लेख।

मुझको था आश्चर्य कि भीतर
वह कैसे आने पाया,
भीतर कभी फटक सकती थी
नहीं पर-पुरुष की छाया।

समझ गई मैं मन में, इसमें
भी रहस्य कुछ है सुविशेष।
अन्य एक षड्यन्त्र रचित है,
सोच हुआ अति मुझको क्लेश।

पूछा मैंने उससे, कैसे
चले आप भीतर आते,
वह बोला तब मुझसे अपने
नेत्र नचा कर मदमाते।

"मैं हूँ नातेदार तुम्हारे
पति का, आया हूँ मिलने,
बड़ी कठिनता से भावज मैं
तुमसे पाया हूँ मिलने।"

इतना कह कर बैठ गया वह,
मुझे लगा कुछ आने क्रोध,
किन्तु परिस्थिति समझ किया
मैंने उसका उस काल निरोध।

* * *

पत्र-संख्या—२२

[बाल-विधवा की ओर से वृद्ध-पत्नी को]

बहिन,

तुम्हारे पत्रों को पढ़—
कर होता है अति आनन्द,
कर देते हैं अल्प समय को
वे जीवन के दुख को मन्द।

शिक्षाएँ मिलती हैं उनसे
होता है उत्साह बहुत,
ललना-उन्नति की, सुधार की
बतलाते वे राह बहुत।

किन्तु बहिन तुम तो मढ़ती हो
पुरुषों के शिर सारा दोष,
पर मुझको तो ललनाओं के
ऊपर भी आता है रोष।

स्पष्ट बात कहती हूँ मन की
चाहे ठीक न होवे वह,
भला बुद्धि कितनी मेरी जो
केवल सत्य सकूँ मैं कह।

बात बड़ी विचित्र है, जो हैं
कोटि-कोटि ललना परतन्त्र,
माना मैंने पुरुषों ने ही
रहने दिया उन्हें न स्वतन्त्र।

पर क्यों वे बल से विहीन थीं,
क्यों थीं वे मति-बल से हीन,
भला किया स्वीकार उन्होंने
इस प्रकार क्यों बनना दीन ?

क्यों आईं पुरुषों के फन्दे—
में रह कर भोली-भाली,
सहती रहीं किसलिए उनकी
क्रूर नीतियाँ वे काली ?

तुम कहती हो यदि उनको
रण करने की शिक्षा मिलती,
उनका गुरु गौरव लख-लख कर
जग की मनःकली खिलती।

मैं कहती हूँ, क्यों न कर सकीं
वे निज-रण-शिक्षा-सुप्रबन्ध,
पहले ही से पुरुषों का क्यों
ग्रहण किया था आश्रय अन्ध ?

क्यों न उन्होंने पहले से की
निज-स्वतन्त्रता को रक्षा,
क्यों बन सकीं स्वीय पालन-
पोषण में वे न स्वयं दक्षा ?

कुछ तो अशक्तता थी उनमें,
जिससे वे ऐसी हैं आज,
पुरुष हुए परतन्त्र न क्यों,
क्यों करते हैं वे उन पर राज ?

उस अशक्तता को न हटाना,
और दीन होकर रोना,
स्वयं धैर्य अपना खोना है,
है सुसमय जग का खोना।

यदि बराबरी की शर्तों पर
पहले ही से वे अड़तीं,
तो बेड़ियाँ दासता की ये
उनके पद में क्यों पड़तीं ?

जो समानता अपने से नर
नहीं मानते थे उनकी,
जो वे अपने सम ही सत्ता
नहीं जानते थे उनकी,

तो छेड़ा क्यों नहीं प्रबल बन
कर अबलाओं ने संग्राम,
कुछ करना न स्वयं यह तो, है
कहना विधि हैं नर हैं वाम।

बहिन सुनाती हूँ फिर तुमको
कुछ अपना आगे का हाल,
सुन करके उस खल की बातें
मैं तो हुई परम विकराल।

चले गए वे दुष्ट, आ रहा
था भीतर की ओर फ़क़ीर,
दौड़े मेरे दृग कमरे में
(जिनका सूख गया था नीर।)

दिखी एक छुरिका मुझको, थी
पास पलँग के पड़ी हुई,
तीव्र वेग से उसे उठाया,
पुनः द्वार पर खड़ी हुई।

लगी सोचने कब आवे वह
पास और लूँ कब बदला,
हुई भयङ्कर मैं उस क्षण में
मानो मेरा तन बदला।

जब वह एक हाथ की दूरी
पर था, मैं झपटी उस पर,
स्वीय सफलता की उमङ्ग में
वह तो था उस समय निडर।

छुरी घुसी उसकी छाती में,
चीख़ मार वह गिरा तुरन्त,
बोल सका कुछ नहीं, हुआ
उसके पापी जीवन का अन्त।

दिल की आग उर्फ़ दिल-जले की आह

["पागल"]

छठा खण्ड

२

मैं सरोज के ससुराल वालों में किसी को जानता न था, और न उन लोगों में से कोई मुझी को पहचानता था, क्योंकि जब उसकी शादी हुई थी तब मुझे अपनी बीमारी के कारण पहाड़ों पर चला जाना पड़ा था। उसके बाद जब कभी वह काशी आई तो मेरे हृदय की जलन उसके साथ के आए हुए उसके ससुराली आदमियों से दूर ही रखती थी। ऐसे समय मैं सरोज के दर्शनों के लिए उसके पास जाता भी था तो सदैव उन लोगों की दृष्टि बचा कर, ताकि मेरा वहाँ आना-जाना उनकी निगाहों में न खटके और इस तरह मेरे कारण सरोज पर कहीं आँच न आ जाए। क्योंकि संसार की दृष्टि में तो मैं अब चोर ही था। अस्तु, इस बात से मैं निश्चिन्त था कि उसकी ससुराल में मैं पहचाना नहीं जा सकता। मगर इसी के साथ ज्यों-ज्यों मैं उसके निकट पहुँचता जाता था, त्यों-त्यों यह शङ्का मेरे दिल में उत्पन्न होने लगी कि मेरी पहुँच सरोज तक किस तरह होगी। रवाना होते समय इस बात पर मैंने कुछ भी विचार नहीं किया, बल्कि अपने न पहचाने जाने के ख़्याल ने तो उस वक़्त मुझे चलने के लिए और भी जल्दी तैयार कर दिया था। क्योंकि जहाँ कोई जानने वाला न हो वहाँ जाने में हिचकिचाहट कैसी? मगर जब मैं रेल से उतरा तो मुझे अपनी भूल मालूम हुई और जाना कि वहाँ कोई मुझे पहचानने वाला न होने के कारण मेरी मुसीबत हलकी नहीं, बल्कि और बढ़ गई। क्योंकि अब समझ में आने लगा कि बेसहारे के मैं किस तरह सरोज के द्वार पर जाने का साहस करूँगा। कैसे उसे मेरे आगमन की सूचना मिलेगी। यही सब सोचता हुआ मैं रात भर मुसाफ़िरख़ाने में पड़ा रहा। क्योंकि मेरी गाड़ी वहाँ रात को पहुँची थी।

सबकी जानकारी में मेरा सरोज से मिलना किसी तरह से उचित नहीं जान पड़ा और दूसरों की निगाह बचा कर उससे मिलने का उद्योग करना असम्भव ही नहीं, वरन् और भी हानिकारक प्रतीत हुआ। क्योंकि यह उसका मैका न था और न मैं उसके यहाँ आने-जाने वाला कोई व्यक्ति। यहाँ हर प्रकार से मेरे द्वारा उसकी भलाई के बदले बुराई ही हो जाने की सम्भावना दिखाई पड़ी। और यहाँ तक आकर अब बिना उसका दर्शन किए लौट जाना भी आह! मेरे लिए कैसे सम्भव हो सकता था? दर्शन न सही, फिर भी उसके नगर में रहने का सुख, उसके समीप में होने का आनन्द मैं किस तरह त्याग सकता था? मेरे लिए इन्द्रासन था तो वहीं, जहाँ उसका निवास था। स्वर्ग था तो वहीं, जहाँ वह रहती थी। ऐसी जगह भीख माँग कर बसर करना भी मेरे लिए अहोभाग्य था। अन्यत्र मर-मर कर जीने के बदले यहीं मर-मिट जाना परम सुख था। मेरे जीवन की तो सदा से कामना यही थी कि किसी भी रूप में मैं उसके निकट रहने पाता। जिस स्थान को वह अपने सौन्दर्य की प्रभा से दिव्यमय बनाती थी, उसी जगह रह कर उसके प्रकाश से अपने जीवन की अँधियाली दूर करता। अगर अब तक ऐसा नहीं कर सका तो केवल उसी की भलाई के ख़्याल से। क्योंकि यह अन्यायी संसार मेरा प्रेम सहन नहीं कर सकता था। इसका पता पाते ही मेरे साथ सरोज को भी पीस डालता, इसी ख़्याल से यहाँ पहुँच कर अब लौटने का विचार उत्पन्न हुआ, क्योंकि मुझ पर जो कुछ भी बीते तो बीते, परन्तु उस पर मेरे कारण कुछ भी आँच न आए। यही धारणा मुझे बराबर रहती थी और यही इस समय भी बलवती होकर मुझे चुपके से लौट चलने के लिए सलाह देने लगी। मगर हाय! दिल वहाँ छोड़ कर

शरीर को वहाँ से कैसे हटाता ? लौटने के लिए पाँवों में शक्ति और हृदय में बल कहाँ से लाता ? उस पर उसके सन्ताप का ख़्याल ! अजब असमञ्जस में पड़ गया।

सुबह को पता लगाने पर जाना कि मैं ग़लत स्टेशन पर उतरा। क्योंकि यहाँ से वह स्थान, जहाँ वह रहती थी, अभी बीस मील और आगे था और वहाँ पर भी रेल का एक छोटा सा स्टेशन है। परन्तु काशी में सरोज की ससुराल इसी बड़े स्टेशन के पास बताया जाता था और उस छोटे स्टेशन का नाम कभी लिया नहीं गया,

डॉक्टर सप्रू—(प्रधान मन्त्री से) यह भारत-रूपी बालक आपकी सेवा में ले आया हूँ, "डायर्की" के स्तन का दूध इसे नहीं पचेगा, कम से कम इसे दूध पीने के लिए "फ़ेडरल" का चम्मच ही दे दीजिए ?

इसीसे टिकट लेने में भूल हुई। मेरे कपड़े पहिले ही बदलने क़ाबिल हो चुके थे और इस सफ़र में और भी मैले-कुचैले हो गए थे। दूसरे कपड़े मेरे पास थे भी नहीं। इसकी फ़िक्र करना बहुत ज़रूरी था। इसलिए इस बड़ी जगह पर उतर पड़ना कुछ अनुचित नहीं हुआ। यहाँ बाज़ार में सिले-सिलाए कपड़े मिल जाने की सम्भावना थी। अस्तु, मुँह-हाथ धोकर बाज़ार जाने के इरादे में था कि इतने में मुसाफ़िरख़ाने में एक नाई दिखाई पड़ा। वह मेरी हजामत बढ़ी देख कर मुझे मूँड़ने के लिए सर हो गया। यह भी एक आवश्यकीय कार्य था, इसलिए हजामत बनवाने बैठ गया। मगर जब पैसे देने लगा तो मेरे होश उड़ गए। देखा कि जेब में पर्स ही नहीं है। मुझे पैसे देने में असमर्थ पाकर नाई बुरी तरह पेश आया और अपनी बोली में, जिसको मैं कुछ-कुछ समझ लेता था, गालियाँ देकर मेरे लम्बे बालों पर ताने कसने लगा। जहाँ तक समझ सका, उसके कहने का आशय यह था कि "टका तो पास नहीं और हजामत बनवाने का बड़ा शौक़ ? ऐसे उचक्के मैंने बहुत देखे हैं। साले पैसा दो, नहीं तो यह लम्बी-लम्बी ज़ुल्फ़ें जो रखाए हो, बिना उल्टे उस्तरे से मूँड़े न छोड़ेंगे। हाँ, सारी शौक़ीनी भुला ही देंगे।"

मेरे सर के बाल लम्बे ज़रूर थे। कुछ शौक़ीनी के कारण नहीं, बल्कि लापरवाही के कारण। क्योंकि जो मनुष्य जिस पेशे का होता है, उसकी सूरत-शक्ल और धजा भी वैसी ही हो जाती है। मैं स्वयं पहिले चक्कर में रहा करता था कि कवि और चित्रकार लोग अक्सर अपने बाल लम्बे क्यों रखते हैं, क्या इन लोगों का कोई पृथक फ़ैशन है। मगर जब अपने सर बीती तब जाना कि यह लोग अपनी कल्पना के संसार में सदा विचरते रहते हैं, इसलिए अपनी धुन के आगे इन्हें दीन-दुनिया की कुछ भी फ़िक्र नहीं होती और तब लापरवाही धीरे-धीरे इनकी ऐसी सूरत बना देती है। मगर आज वही लापरवाही अफ़सोस ! उल्टे फ़ैशन के रूप में देखी गई और शौक़ीन बनने का मुझे ताना सुनना पड़ा। परदेश में अपनी कुल पूँजी लुट जाने से मैं योंही मरा हुआ था, उस पर नाई की गालियाँ और तानों से मैं और पानी-पानी हो गया। उससे बोल नहीं सकता था। उसका मैं अपराधी था, इसलिए मेरा सारा क्रोध अपने ही बालों पर झुक पड़ा, और उन्हें मुँड़वा देने के लिए मैंने अपना सर झुका दिया।

नाई भी अपनी बात का ऐसा ज़िद्दी निकला कि वह सचमुच मेरा सर मूँड़ने लगा। खोपड़ी सफ़ाचट कर देने के बाद अपनी बोली में बोला—"अब भी बचा पैसा देते हो कि मूँछें भी साफ़ करके तुम्हारी हुलिया ही बिगाड़ दूँ।" मुझे अपनी हजामत बनवाने के पुरस्कार में विवश होकर अपनी मूँछें भी देनी पड़ीं। फिर भी वह सन्तुष्ट न हुआ, तब अन्त में झल्ला कर मैंने अपना कोट उसे दे दिया। हाय रे! पराधीनता की विवशता!

पास में पैसा नहीं। बदन पर केवल एक धोती और एक कुरता। न आगे बढ़ने न पीछे लौटने और न कहीं रहने ही योग्य रह गया। क्योंकि बेपैसे के मैं क्या खाकर रहता? बड़ी मुसीबत में जान पड़ गई। कुछ समझ में नहीं आता था, क्या करूँ। सर घूमने लगा। आँखों के सामने अँधेरा छा गया। ईश्वर न करे, परदेश में किसी की ऐसी दशा हो। मैं अपनी चिन्ताओं में इतना डूबा हुआ था कि मेरे पीछे आती हुई एक मोटर का 'हार्न' तक मुझे सुनाई नहीं पड़ा। एकाएक पीछे से किसी ने बड़े ज़ोरों से मुझे डपट कर उधर ही की बोली में पूछा—क्यों बे, बहिरा है क्या?

मुड़ कर देखा। पूछने वाला एक मोटर हाँकने वाला था और मेरी एड़ी के पास उसकी मोटर खड़ी हुई थी। मैंने कुछ जवाब नहीं दिया। जल्दी से रास्ते पर से हट गया। उसने गालियाँ देकर कहा—"साले बोलता क्यों नहीं, तेरे मुँह में ज़बान नहीं है?" इसका मैं क्या जवाब देता? बस चुपचाप बग़लें झाँकने लगा। मगर शोफ़र के इस प्रश्न पर मोटर के भीतर बैठे हुए एक महाशय चौंक पड़े। मोटर फिर रवाना होने लगी थी कि उन्होंने उसे रुकवा कर उससे कहा—"देखो-देखो, यह कहीं गूँगा भी तो नहीं है?" उनकी इस उत्सुकता पर मुझे कुछ अचरज हुआ। इसलिए उस समय जितने भी प्रश्न मुझसे किए गए उनको बस मैं मूर्तिवत् सुनता गया। जवाब किसी का भी नहीं दिया, इससे उस मोटर वाले व्यक्ति को विश्वास हो गया कि मैं अवश्य ही गूँगा और बहिरा दोनों हूँ और उनके मुख पर प्रसन्नता की भी झलक दिखाई पड़ी। इसके बाद उन्होंने शोफ़र को हुक्म दिया "कि इसे ले चलो। सीधे तौर से न चले तो ज़बर्दस्ती ले चलो। मैं इसे नौकर रक्खूँगा। गूँगे बड़े अच्छे नौकर होते हैं। यह लोग ज़बान लड़ाना नहीं जानते।"

शोफ़र उतर कर मेरे पास आया और मुझे हाथ पकड़ कर मोटर की तरफ़ ले चला। तब मैं भी चुपके से उसके साथ हो लिया। मगर मेरी समझ में कुछ न आया कि मेरे साथ यह कार्रवाई क्यों की जा रही है।

(क्रमशः)

फिर भी उनकी बड़ी ज़रूरत थी

[नाख़ुदाए सुख़न हज़रत "नूह" नारवी]

इस जगह भी निशान उनका था,
दिल हमारा मकान उनका था!
प्यारी-प्यारी ज़बान उनकी थी,
साफ़-सुथरा बयान उनका था!
थे वह पीराना साल कहने को,
दिल मगर नौजवान उनका था!

दोनों आलम से था निराला रङ्ग,
तीसरा एक जहान उनका था!
उनको एक-एक से मुहब्बत थी,
उनकी एक-एक को मुरौवत थी!
सारे आलम में, सारी दुनिया में,
उनका शोहरा था, उनकी शोहरत थी!

रह चुके ख़ल्क़ में वह मुद्दत तक,
फिर भी उनकी बड़ी ज़रूरत थी!

कविवर "बिस्मिल" इलाहाबादी

(संक्षिप्त परिचय)

[श्री० जी० पी० श्रीवास्तव, बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

"बिस्मिल" में सआदत भी है मुहब्बत भी है,
"बिस्मिल" में नजाबत भी है शराफ़त भी है।
अय 'नूह' वह लिखते हैं बहुत ख़ूब अशआर,
सब कुछ है जहाँ हुस्ने-तबीयत भी है॥"

—'नूह' नारवी

यों तो मैं बहुत दिनों से कविवर "बिस्मिल" की कविताओं का आनन्द पत्रों में लिया करता था। मगर पारसाल जब वह गोंडे के 'मशायरे' (कवि-सम्मेलन) में आए और मशायरे में उनकी 'हस्ती की रुबाई' के दो-चार पद उन्हीं के मुँह से सुने, तो मैं बस मन्त्र-मुग्ध-सा होकर रह गया। आपके कलाम में जो जौहर है, वह गुणग्राहकों से छिपा नहीं है, मगर आपके पढ़ने के ढङ्ग में जो जादू है वह सुनने वालों का हृदय ही जान सकता है। लखनऊ ऐसी जगह जो सच पूछिए तो शायरों की कान कही जा सकती है, वहाँ भी दो-चार मशायरों में मुझे एक से एक उच्च कवियों की कविताएँ सुनने का सौभाग्य प्राप्त हो चुका था, मगर जो प्रभाव 'बिस्मिल' की जादू बयानी में मैंने पाया, वह कहीं भी नहीं नसीब हुआ था। लाख कोई दिल को क़ाबू में करके बैठे, अभी-अभी कोई कितनी ही प्रभावपूर्ण कविता सुन चुका हो और समझता हो कि उसके हृदय पर किसी के पदों का अब कुछ भी असर नहीं पड़ सकता और इसके अलावा गले में चादर डाले और मत्थे में तिलक लगाए तुर्की टोपियों के बीच में आकर "बिस्मिल" को घुटना टेक कर बैठते हुए देख कर उसे पहले यह भ्रम भी हो कि इतने बड़े-बड़े मौलानाओं के आगे उर्दू शायरी में इस दुबले-पतले हिन्दू युवक का क्या ख़ाक रङ्ग जम सकता है, बल्कि इसका ज़बान खोलना ही दूभर हो जाएगा। ऐसी कठिन घड़ी में "बिस्मिल" के मुँह से निकला हुआ पहिला ही मिसरा कानों में पड़ते ही जादू के मन्त्र की तरह अपना काम कर दिखाता है। पलक मारते ही एक अजीब समाँ बदल जाता है, जिसमें सुनने वालों के हृदय बस दङ्ग होकर रह जाते हैं, फिर तो अचरज के एक क्षणिक सन्नाटे के बाद सारा मशायरा मस्ती से बेक़ाबू होकर वाह! वाह! की उच्च ध्वनि के साथ नाच उठता है। आपके पढ़ने का ढङ्ग ही कुछ ऐसा प्रभावपूर्ण है कि सादे से सादे पद में भी एक जान फूँक देते हैं, तब उन पदों की शक्ति का कहना ही क्या है, जिनमें स्वयं काव्य-कला का आत्मबल होता है। कविता कला का चमत्कार इस समय आपके प्रत्येक शब्द से उत्पन्न होकर सुनने वालों के सामने मानो सजीव मूर्ति धारण कर लेता है और तब विरोधी हृदय से भी अपना आदर कराए बिना नहीं छोड़ता।

बिस्मिल का पूरा नाम श्रीमान सुखदेवप्रसाद सिनहा है। उपनाम "बिस्मिल" इलाहाबादी है। आप मौज़ा भवानीपुर, ज़िला रायबरेली के रहने वाले मुन्शी विशेश्वरदयाल साहब कायस्थ श्रीवास्तव के सुपुत्र हैं। मगर अब बहुत काल से इलाहाबाद में बस गए हैं। आपका जन्म सन् १८९९ ईस्वी में यहीं हुआ है। और आपको शिक्षा भी मकतब में पढ़ने के बाद वहीं के कायस्थ पाठशाला और "मॉडर्न" हाई स्कूल में मिली है। लड़कपन ही से आपकी अनोखी रुचि कविता के लिए देख कर आपके चचा स्वर्गवासी श्री० अनन्तलाल साहब वकील ने २९ दिसम्बर सन् १९१८ को विख्यात कवि 'दाग़' के स्थानासन नाख़ुदाए सख़ुन हज़रत 'नूह' नारवी की शागिर्दी करने को भेजा। फिर तो जिस प्रकार सूर्य के किरणों के पड़ते ही आईना चमक उठता है, वैसे ही अपने गुरु के पुण्य प्रताप से आपकी शायरी भी चमक उठी। कविता के लिए अपनी ईश्वर-प्रदत्त शक्ति और स्वाभाविक रुचि और गुणों के बल पर आप अपने गुरु के ऐसे कृपापात्र हुए कि वह आपको अपने साथ मेरठ, मैनपुरी, लखनऊ, कानपुर, पटना, गया, आरा आदि के मशायरे में ले गए। और आपने हर

जगह अच्छी कीर्ति लाभ की। उसके बाद से तो आपने सभी जगह से निमन्त्रित होकर भारत भर में स्वयं ही अपने नाम की धूम मचा दी। इसी तरह आपका पार-साल गोंडे में भी आना हुआ और मुझे आपके मुँह से आपकी कविता सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

आप किस कोटि के कवि हैं यह आपके गुरु महोदय के सम्मान से, जिसे स्वयं उन्होंने अपने पद में दर्शाया है और जो इस लेख का शिरमौर है, जाना जा सकता है। आप भी उनकी सच्चे दिल से कैसी सेवा करते और उनके प्रति कैसी प्रगाढ़ भक्ति रखते हैं, वह इसीसे अनुमान कर लीजिए कि आप मशायरे में अपने गुरु महोदय की शान में बिना पहिले एक रुबाई पढ़े अपनी ग़ज़ल नहीं पढ़ते। ऐसे अवसरों के लिए आप यह रुबाई भी इतनी शक्तिपूर्ण कहते हैं, जो मशायरा में धूम मचा कर आपकी योग्यता की धाक उसी क्षण जमा देती है और ऐसी कि श्रोतागण आपके आगामी पद सुनने के लिए उत्सुकता से व्यग्र होकर छटपटाने लगते हैं। इसका प्रभाव कैसा पड़ता होगा, इसके निम्न-लिखित कुछ नमूने देख कर आप स्वयं अनुभव कर सकते हैं :—

मैं यह नहीं कहता किसी क़ाबिल हूँ मैं।
दावा है ग़लत रौनक़े-महफ़िल हूँ मैं।
इतना है मगर हाँ असरे हज़रते 'नूह',
बिस्मिल करूँ औरों को वह 'बिस्मिल' हूँ मैं॥

× × ×

महफ़िल में नहीं रङ्ग जमाने से ग़रज़,
अन्दाज़ तबीयत के जताने से ग़रज़।
हाँ यह है कि हूँ 'नूह' का ख़ादिम 'बिस्मिल',
बस है मुझे तूफ़ान उठाने से ग़रज़॥

× × ×

दबता नहीं हर वक़्त उभरता हूँ मैं,
फ़ख़्र अपने ख़यालात पे करता हूँ मैं।
'बिस्मिल' है मेरे हाथ में अब दामने 'नूह'
तूफ़ाने-सख़ुन से कहीं डरता हूँ मैं?

वाह! वाह! देखिए कहने वाले की भूमिका में जब यह शान टपकती है तो उसके कलाम की आनबान का कहना ही क्या है? साहित्यिक महारथियों में चाहे वे कवि हों या लेखक, उनकी कला की निपुणता उनमें आत्म-सम्मान का भाव पैदा कर ही देती है। यह दोष नहीं, बल्कि उनकी कला का उफान है, जो उन्हें आगे बढ़ने के लिए उत्साहित करता है, और उनके विचारों में दृढ़ता और लेखनी में शक्ति प्रदान करता है। जिस सिपाही को अपनी शक्ति पर भरोसा और अपनी वीरता पर गर्व न होगा, वह भला किस कलेजे से युद्ध के मैदान में पैर रखने का साहस करेगा? शेर ही अपने बल की मस्ती में गरज उठता है, मरी हुई बिल्ली नहीं। 'बिस्मिल' के कलाम में भी यह आत्म-गौरव कभी-कभी छलक उठता है और बड़ी योग्यता और काव्य-कला निपुणता के साथ तभी यह शोभा भी देता है। इसकी बहार ज़रा निम्न-लिखित पदों में देखिए :—

हमारा सिलसिला है
ख़ानदाने 'दाग़' से 'बिस्मिल'।
जिसे हो सीखनी वह
सीख ले उर्दू ज़बाँ हमसे।

× × ×

जहाँ जाते हो अय 'बिस्मिल'
जमा देते हो रङ्ग अपना।
तुम्हारा नाम रहता है,
ज़बाने-अहले-महफ़िल पर॥

× × ×

वह यह कहते हैं असर—
क्या था निगाहे-शौक़ में।
आज बिस्मिल हो गए
'बिस्मिल' तुम्हें हम देख कर॥

× × ×

हमारी ख़ाक उड़ कर
आस्माँ से बात करती है।
सबब यह है रहे हैं हम
ज़मीं पर आस्माँ होकर॥

× × ×

लोग कहते हैं कि वह
क़ातिल बड़ा बेदर्द है।
उसको भी बिस्मिल न मैं
कर दूँ तो फिर 'बिस्मिल' नहीं॥

आपकी काव्य-कला पर कैसी धाक है और आपके हृदय में कविता के लिए उत्साह-धारा किस प्रबल वेग से बहती है, यह उपरोक्त पदों से दिखलाने के बाद अब आपकी कुछ कविताओं का रसास्वादन कराने के लिए मुनासिब यह होगा कि मैं पहिले इस कला के मर्म पर अपनी समझ के अनुसार कुछ प्रकाश डाल लूँ। यद्यपि न तो मैं कवि हूँ और न कविता करने का दम ही रखता हूँ, फिर भी पकवान के स्वाद का आनन्द उसके बनाने वालों से खाने वाले अच्छा बता सकते हैं। इसी तरह मैं स्वयं कवि न होकर भी इस विषय पर अपना क्षुद्र मत संक्षेप में प्रकट करने का साहस करूँ, तो अनुचित न होगा। इसके लिए छन्द-विधान-विधि, नायिका-भेद, उपमालङ्कार, भाव आदि की व्याख्याओं तथा अन्य देशी-विदेशी काव्य-मर्मज्ञों की आलोचनाओं से इस जगह काम लेने की आवश्यकता नहीं है और न इस छोटे से लेख में अवकाश ही है। मेरा उद्देश्य तो बस इतना है कि जिस दृष्टि से मैं 'बिस्मिल' की शायरी को निरखता हूँ, उसी दृष्टि से हमारे पाठक भी उसकी शोभा देख कर उसकी बहार लूटें। अस्तु, कविता क्या है, मेरी समझ में तो कोई भी बात केवल छन्द के रूप में कह देने से वह कविता नहीं कहला सकती। जिस तरह मुर्दा मनुष्य का ढाँचा धारण किए रहने पर भी, किसी तरह मनुष्य नहीं कहा जा सकता। उसे इस उपाधि का अधिकारी होने के लिए उसमें प्राण का होना आवश्यक है, उसी तरह छन्दों में जब तक प्राण न हो यानी जिसमें दिल को खींचने, दिमाग़ को चकित करने या तबीयत को फड़का देने की शक्ति न हो, तब तक वह कविता नहीं, कोरी तुकबन्दी है। यह सजीवता कभी विचारों की विलक्षणता, कभी भाषा के लालित्य और कभी कहने के ढङ्ग से उत्पन्न होती है। विचार अपने चमत्कार, प्रकृति की छटा, तत्व की गहराई, असलियत की तह, मानव प्रकृति की वास्तविकता, भावों का थाह, हृदय-तरङ्ग की विलक्षणता और कल्पना की सूक्ष्मता में दिखलाते हैं और इन्हीं बातों की जीती-जागती, सच्ची और हृदय-ग्राही तस्वीर खींच देने का नाम कविता है। भाषा भी अपना सौन्दर्य जभी दिखलाती है, जब आशय को अपनी शक्ति तथा अवस्थानुकूल उपयुक्त शब्द मिलते हैं। कवि का यह
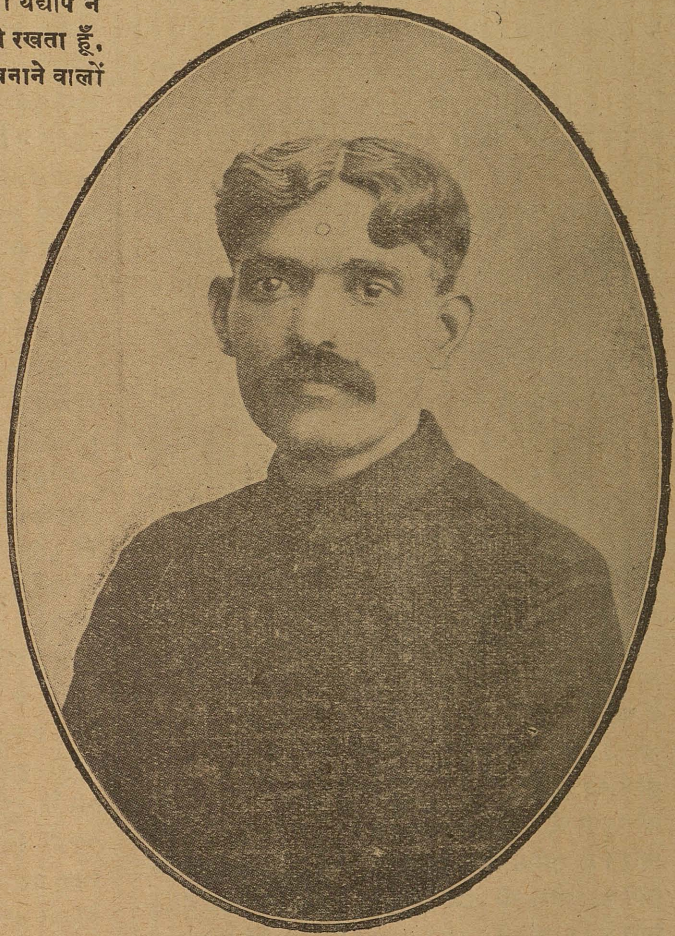
मुन्शी सुखदेवप्रसाद जी सिन्हा "बिस्मिल" इलाहाबादी

काम नहीं है कि वह बस छन्द-रचना के नियमों को ही देखे और जिस स्थान पर जो शब्द बैठता हुआ जान पड़े उसी को ठूँस दे, बल्कि प्रत्येक शब्द का चुनाव उनके प्रभाव को उनके स्थान पर तौल-तौल कर करे, ताकि विचारों के प्रवाह को भाषा उसी वेग से निबाह

सके। साथ ही उन्हें कहने का ढङ्ग भी ऐसा होना चाहिए कि कहीं पर वाक्य अस्वाभाविक प्रतीत होकर हृदय-तरङ्गों की तड़प में बाधा न डालने पाए। खेद है कि हमारी हिन्दी की अधिकांश कविताओं में शब्दों के चुनावों और कहने के ढङ्ग पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया जाता। इसीलिए हमारी आधुनिक हिन्दी कविता, पक्षपातवश हम चाहे उसे कितनी ही उत्तम कहें, परन्तु इस रोग से बिना मुक्त हुए, कभी अपना सर उठा नहीं सकती। प्रदर्शन-कला वह पारस है, जो सादे से सादे विचार को भी सोना बना देती है। इसका रहस्य 'बिस्मिल' के एक शेर में देखिए। ख़्याल निहायत ही मामूली है, यानी एक बीमार रात भर तड़पता रहा और सुबह को मर गया। इस विचार में कोई भी अनोखापन नहीं है, मगर शब्दों के चुनाव और कहने के ढङ्ग ने बस कमाल कर दिया है। देखिए:—

रात भर तो हिचकियाँ
लेता रहा बीमार ग़म,
सुबह होनी थी कि यक
करवट बदल कर रह गया!

विचार मामूली, प्रत्येक शब्द मामूली, फिर क्या बात है कि यह शेर हमारे हृदय पर इतना प्रभाव डाल रहा है? इसका रहस्य बस शब्दों के चुनाव और उनके प्रदर्शन के ढङ्ग में है। पहिली लाइन में "तो" और दूसरी में "रह गया" अपनी जगहों पर जो काम कर रहे हैं वह उनके स्थान पर भाषा का सारा भण्डार भी नहीं कर सकता। यही शब्दों के चुनाव की ख़ूबी है। इन्हीं दो शब्द के बल पर यहाँ बीमार की सारी रात तड़पने की व्यथा और सुबह होते ही दम तोड़ने का सजीव चित्र आँखों के सामने खिंच जाता है। यह छटा दर्शाने में दो सफ़े का ब्योरा भी कम है, फिर भी कवि की यह मौलिकता है कि इसकी झलक अपनी दो लाइनों में पूरे तौर से दिखला दी। उदाहरणार्थ अगर हम "रह गया" के स्थान पर "मर गया" करके इस शेर को पढ़ें तो छन्द के बैठने में कोई हानि नहीं होती और आशय का मतलब भी किसी तरह निकल ही जाता है। क्योंकि इस जगह "रह गया" के मतलब मर जाने के ही हैं, मगर इससे दम तोड़ते वक्त की यन्त्रणा और बेबसी का चित्र नहीं खिंचता और इस तरह शेर की सारी जान निकल कर वह अपने उच्च स्थान से नीचे गिर पड़ता है। इसलिए प्रदर्शन-कला बहुत बड़ी चीज़ है। इसका महत्व अगर हम विचारों के महत्व से भी अधिक कहें तो अनुचित नहीं। क्योंकि यही कवि, लेखक और वक्ता की मुख्य कला है। यही कवि को कवि और लेखक को लेखक बनाती है। यही भद्दी से भद्दी और पुरानी से पुरानी बात को सुन्दर और नवीन करके चकित करती है। यही सहस्र शब्दों की बात को दो शब्दों में और दो शब्दों की बात को सहस्र शब्दों में रोचकता से दिखला कर जनता का हृदय मोह लेती है। इसके बिना कवियों और लेखकों का वही हाल होता है, जो पेंच न जानने वाले पहलवान का अखाड़े में होता है। अस्तु—

लेख बहुत लम्बा हो जाने के भय से इस विषय को यहीं समाप्त कर—और इस जगह इतना इशारा हमारे ज्ञानी पाठकों के लिए काफ़ी भी है—अब मैं 'बिस्मिल' की शायरी के कुछ नमूने सेवा में भेंट करता हूँ। इसके लिए सबसे पहिले आपकी "हस्ती की रुबाई" के दो-चार पदों का रसास्वादन कराता हूँ, जिसने पहले-पहल मेरे हृदय को आपकी ओर इतने अटल रूप से आकर्षित किया था कि वही आकर्षण उसी वेग से अब तक बना हुआ है। बेशक यह रुबाई इतनी लाजवाब हुई है कि इसने 'बिस्मिल' के नाम को सदा के लिए अमर बना दिया है। आपने यह रुबाई लिख कर कविता-सागर में सच पूछिए तो एक नई धारा बहा दी है। 'हस्ती' यानी 'अस्तित्व' क्या चीज़ है, दुनिया इस पर अपने को कैसी भूली हुई है, लोग अपने 'हम-हमी' के नशे में कैसे चूर हैं। लेकिन इसकी असलियत क्या है, उसकी पोल आपने किस उत्तमता से खोली है और साथ ही उसके तत्व पर कैसी मर्मभेदी दार्शनिक दृष्टि डाली है कि उसकी छटा बस निरखते ही बनती है, बताने से नहीं। देखिए:—

एक एक से कहती है ज़बाने-हस्ती।
बेकार हैं सब नामो निशाने-हस्ती॥
सौदा न हो सौदा न करो अय 'बिस्मिल'।
बढ़ जायगी इक रोज़ दुकाने-हस्ती॥

× × ×

जाता है बहुत जल्द शबाबे-हस्ती।
मौत आकर उलटती है नक़ाबे-हस्ती।
मयख़ानये दुनिया में सँभल अय 'बिस्मिल'
बदमस्त न हो पी के शराबे-हस्ती॥

× × ×

करता हूँ बयाँ सुनिए बयाने-हस्ती।
कुछ भी नहीं, कुछ भी नहीं शाने-हस्ती।
इस साँस की बुनियाद ही क्या है अय 'बिस्मिल'
कन्धे पे हवा के है मकाने-हस्ती॥

× × ×

रखे हुए हैं सर पे जो ताजे-हस्ती।
देना पड़ेगा उनको ख़िराजे-हस्ती।
वे अपने को मिट्टी में मिलाए 'बिस्मिल'
मुमकिन नहीं मिल जाए मिज़ाजे-हस्ती॥

इस तरह की 'हस्ती' पर सौ रुबाइयाँ लिखने का आपने सङ्कल्प किया है—और सभी एक से एक बढ़ कर। परमात्मा आपका उद्योग सफल करे।

ईश्वर की सत्ता की अनुपम झलक आपने किस उत्तमता से दिखलाई है, उसकी छटा निम्न पदों में निरखिए।

मुद्दत से सुनते आते हैं,
वह ख़ानए दिल में रहते हैं।
आ जायँ नज़र तो हम जान,
कहने के लिए सब कहते हैं॥
नज़रों की नज़र आते जो नहीं,
तो हम यही दिल से कहते हैं।
इस पर्दे में भी कुछ पर्दा है,
वह पर्दे में क्यों रहते हैं॥

× × ×

इस सोच में हैं इस चक्कर में,
इस फ़िक्र में दुनिया वाले।
वह आलम कैसा आलम है,
जिस आलम में वह रहते हैं।

× × ×

छुपने को छुपें सौ परदों में,
इस छुपने से क्या होता है।
वह ढूँढ निकालेंगे उनको,
जो खोज में उनके रहते हैं॥

और ढूँढ़ने को ढूँढ़ा भी ख़ूब है। ज़रा निम्न पदों में देखिए तो :—

जो बेरुख़ी थी यही रुख़ योंही छुपाना था।
मेरे ख़्याल में भी आपको न आना था॥

महाकवि दाग़ के जानशीन और कविवर 'बिस्मिल' के उस्ताद—
नाख़ुदाय-सख़ुन हज़रत "नूह" नारवी

इसी सबब से वह पर्दे में छुप के बैठे हैं,
कि पर्दे-पर्दे में कुछ उनको रङ्ग लाना था॥
मिले हैं इसलिए आपस में ख़ाक के ज़र्रे।
नया-नया उन्हें हर रोज़ रूप लाना था॥
निहाँ है ख़ाक के ज़र्रों में जलवए-कुदरत।
बशर बना कर उसे अपने को दिखाना था॥

अब जीवन-रहस्य की वास्तविकता का कुछ हाल सुनिए :—

इतना भी न साक़ी होश रहा
पीकर हमें, क्या मैख़ाना था।
गर्दिश में हमारी क़िस्मत थी
चक्कर में तेरा पैमाना था॥
महरूम था सोज़े-उल्फ़त से
जल जाने से बेगाना था।
फ़ानूस के अन्दर शम्ऋ रही
बाहर-बाहर परवाना था॥
माना कि है रोशन बज़्मे-जहाँ
अय शम्ऋ तेरी दिलसोज़ी से।
क्यों हाथ में हर परवाने के
जल मरने का परवाना था॥
वह शम्ऋ न थी वह बज़्म न थी
वह सुबह को अहले-बज़्म न थे।
बस याद दिलाने की ख़ातिर
अस्वारे परे परवाना था॥

× × ×

आईना भी था कोई क्या ज़िन्दगी का आईना।
देखने पर मौत की सूरत नज़र आई मुझे॥

× × ×

जीने वाला यह समझता नहीं सौदाई है।
ज़िन्दगी मौत को भी साथ लगा लाई है॥

× × ×

ज़िन्दगी पाकर हुआ सारा ज़माना बेख़बर,
मौत भी आएगी, इक दिन इसका किसको होश था॥

उपमाओं का सहारा विचार-प्रदर्शन की सुगमता के लिए लिया जाता है। मगर तारीफ़ है आपकी योग्यता की कि आप उनसे उल्टी बात साबित कर देते हैं, जो आसान कौन कहे, सौ मुश्किलों में मुश्किल है। चिराग़ न बे जलाए जल सकता है और न बन्द घर में या हवा के झोंकों में जलता रह सकता है। मगर आपकी सूझ देखिए कि ऐसी प्रतिकूल परिस्थितियों में भी चिराग़ जला कर दिखला दिया—

ख़ानये दिल में दाग़ जलता है।
बन्द घर में चराग़ जलता है॥
आह से दिल का दाग़ जलता है।
यह हवा में चराग़ जलता है॥
ख़ुद बख़ुद दिल का दाग़ जलता है।
बे जलाए चराग़ जलता है।
दिल में है याद रूए जानाँ की।
आईने में चराग़ जलता है॥

अब उपमा का पैंतरा बदल कर विचार के अनुकूल होना भी इसी ग़ज़ल में देखिए—

बेकसी है ग़ज़ब की मदफ़न पर।
झिलमिला कर चराग़ जलता है॥

दृश्य-छटा-वर्णन में भी आप कमाल दिखाते हैं। इसकी बहार इस 'जमना के मसदस' के एक बन्द में देख लीजिए—

मिट गया लुत्फ़ तेरा छिन गया गहना तेरा।
जब कन्हइया नहीं बेलुत्फ़ है रहना तेरा॥
ग़म उठाना सितम ओ जौर को सहना तेरा।
पानी हो हो के शबो रोज़ यह बहना तेरा॥
आतिशे-हिज्र कुछ इस दर्जा लगी है तन में।
दिल न मथुरा में बहलता है न वृन्दाबन में॥

आपकी सम्पूर्ण कविताओं का रसास्वादन कराना तो इस लेख में असम्भव है। इसलिए कुछ फुटकर पद आपके कलाम से पाठकों के मनोविनोदार्थ उद्धृत किए जाते हैं—

तेरी नज़रों में नहीं सय्याद क़द्रे-आशियाँ,
कर सके हैं जम्अ यह
तिनके बड़ी मुशकिल से हम।

× × ×

अहदे तिफ़ली से अहदे पीरी तक।
एक दुनिया दिखा गईं आँखें॥
मर गया, मर मिटा दिले मुज़्तर।
आँखों आँखों में खा गईं आँखें॥

× × ×

यह कहके हुआ शम्मअ् पे क़ुर्बान पतिङ्गा।
लौ तेरी लगी थी तेरी उलफ़त में जला मैं॥

× × ×

फूट कर पाँव के छाले मेरे लाए यह रङ्ग।
बाग़ तो बाग़ है सहरा में बहार आई है॥

× × ×

दुनिया कहाँ से चल के कहाँ तक पहुँच गई।
और अपना है यह हाल जहाँ थे वहीं रहे॥
मालूम रहे तुमको यह अय हज़रते ज़ाहिद।
मन्दिर में नहीं वह तो हरम में भी नहीं है॥

× × ×

कौन होता है दिल अफ़सुर्दा का पुर्साने हाल।
फूल की ख़ुशबू भी चल देती है मुरझाने के बाद॥

× × ×

सुनिए सुनिए आतिशे ग़म से हुए हम जल के ख़ाक।
कहिए कहिए अब कलेजा आपका ठण्ढा हुआ॥

× × ×

हर घड़ी यादे बुताँ रहती है दिल में 'बिस्मिल'
कोई आसाँ नहीं हिन्दू का मुसलमाँ होना॥

× × ×

मतलब है इबादत से मुझको
मतलब है परिस्तिश से मुझको।
जिस दर पे झुकाया सर मैंने,
काबा था वही बुतख़ाना था॥

आपने व्यङ्ग कविता करने में भी अच्छी सफलता पाई है। आधुनिक स्थिति, सामाजिक तथा राजनैतिक मसलों पर आप ऐसी ग़ज़ब की चुटकी लेते हैं कि आपकी कविताएँ व्यङ्ग के कवि-सम्राट हज़रत 'अकबर' की कविताओं से अकसर किसी बात में कम नहीं होतीं। स्थानाभाव के कारण इसका एक ही दो नमूना दिखला सकता हूँ :—

कुत्ते लड़ाए जायँगे बोटी के वास्ते।
अख़बार अब निकलते हैं रोटी के वास्ते॥
आपस में नोक-झोंक है मज़हब के नाम पर।
दाढ़ी के वास्ते कहीं चोटी के वास्ते॥
धोती को छोड़ कर बढ़े पतलून की तरफ़।
तरसेंगे कुछ दिनों में लँगोटी के वास्ते॥

× × ×

शायरी क्या करें हम अय 'बिस्मिल'।
दिल तो है घर में पेट दफ़्तर में॥

आपकी विचारों की सफ़ाई और बयान की सादगी ने हिन्दी का कैसा उपकार किया है, वह आप ही के निम्न पद से स्पष्ट हो जाता है :—

सहल लिख-लिख कर यह
क्या अच्छा तमाशा कर दिया।
हज़रते 'बिस्मिल' ने तो
'उर्दू' को 'भाषा' कर दिया॥

सौभाग्य की बात है कि आपके कलाम की दो जिल्दें* हिन्दी में भी छप गई हैं। और वह दिन हिन्दी के लिए अब दूर नहीं है, जब हमारी हिन्दी अपना विस्तार बढ़ा कर आपके साहित्य को अपनी ही सम्पत्ति पूर्ण रूप से समझने की सुबुद्धि प्राप्त कर लेगी। बस थोड़ी सी सङ्कुचित-हृदय औंधी खोपड़ियों के राह पर आने की कसर है। अन्त में मैं अपनी शुभ कामनाओं को आपके गुरु महोदय ही के निम्न-लिखित शब्दों में अङ्कित करके इस लेख को समाप्त करता हूँ।

मैं दाद सख़ुन सब से सिवा देता हूँ,
इनाम ज़माने में जुदा देता हूँ।
अल्लाह करे ख़ुश रहें आबाद रहें,
अय 'नूह' यह 'बिस्मिल' को दुआ देता हूँ॥

* 'जज़बाते-बिस्मिल' हिन्दी प्रेस, कटरा, इलाहाबाद से मिल सकती है।

शोकोद्गार

[श्री० चन्द्रनाथ जी मालवीय "वारीश"]

काल ! काल ! रे क्रूर काल ! रे नीच नारकी काल !
क्या करने को तू आया था, बन कर भीषण व्याल ?
हुआ न था सचमुच सूर्योदय, था वह प्रातःकाल,
हाय ! छीन ले गया किधर तू मोती-सा मणिमाल ??
वृद्धावस्था में भारत-माता के एक सहारे !
कहाँ गए ! तुम छोड़ हमें हा ! मोतीलाल हमारे !!
रोते हैं क्यों मान्य मालवी, गाँधी हुए अधीर !
सपरिवार हा ! धीर खो चुके धीर जवाहर वीर !
सब नेतागण के नयनों से निकल रहा है नीर !
फूट-फूट कर भारत माँ है रही हृदय को चीर !!
विह्वल बेसुध हाय ! हो गए भारतवासी सारे !
कहाँ गए ! हा ! कहाँ गए ? प्यारे नयनों के तारे !!
हाय ! अचानक लगा दिया है किसने भीषण आग !
नाच रहा है आज आँख में किस त्यागी का त्याग ?
फूटा कैसे हाय ! अभागे भारत-भू का भाग।
उठ जा सोते हुए सिंह ! हा ! जाग ! जाग ! फिर जाग !!
जननी के उद्धार हेतु जिसने जीवन था धारा।
कहाँ गया ! हा ! कहाँ गया ? वह नेता पूज्य हमारा ??
देख न सकता था जी कर वह और अधिक अपमान !
देश-हेतु मर मिट जाने को जिसने जाना मान।
तन-मन-धन-जन जिसने सब कुछ, दिया देश को दान !
जीवन व्यर्थ जान, कर डाला जीवन का बलिदान !
भारत को स्वतन्त्र करने की जिसने ज्योति जगाई।
कौन छीन ले गया उसे रे काल दुष्ट दुखदाई ??
कहाँ गए ? कमला के प्रिय-पति के भी हे प्रिय प्राण !
विजयलक्ष्मि के जनक ! कहाँ हो ? जवाहिरों की खान !
मोतीलाल रत्न भारत के हाय ! सुनोगे क्या न ?
चले गए ? तुम चले गए ! कर भारत को वीरान !!
ढह जाएगी स्वयम् शीघ्र यह सत्ता ही सरकारी !
लौट पड़ो ? हाँ ! लौट पड़ो न ? स्वराज्य-भवन अधिकारी।
हे मणिमाल देश के, हे माता के उन्नत भाल !
निधना-दीना-हीना की गुदड़ी के मोती-लाल !
काल-तुल्य स्वयमेव शत्रुओं को थे तुम सब काल !
तब फिर तुमको कैसे कवलित कर सकता था काल !!
लड़े ! लड़े ! हा ! लड़े ! अन्त तक उसे जीत कर हारे !!
पदक-प्राप्ति के हेतु हाय ! क्या तुम हो स्वर्ग सिधारे !

अन्धकारमय दुर्गम पथ के हे अन्धी के दीप !
जगमग सजग जवाहिर से हे नर-रत्नों के सीप !
लोकमान्य ! गोखले ! लाजपत ! किसके हाय ! समीप ?
कहाँ गए ? हा ! कहाँ गए ? तुम मोतीलाल महीप ??
हाय ! तुम्हारे ही बल पर गाँधी ने हिम्मत बाँधी !
कैसी चुप्पी साधी तुमने, देख अचानक आँधी !!
दीन देश के देव ! अरे ! ओ ! विकट साहसी शूर !
ओजमयी-वाणी में थी वह शक्ति भरी भरपूर !
सिंहनाद से कर देते थे अस्मिद चकनाचूर !
कहाँ गए ? हा ! कहाँ गए ? हा ! हमसे कितनी दूर !!
जाग्रत-भारत हो स्वतन्त्र तब सारी जगती जाने !
मर कर जीते रहते हैं आज़ादी के दीवाने !!
रोते ही रोते कितनी सदियाँ हैं हुईं व्यतीत !
फल फलने ही वाला था मनचीता, आशातीत !
जब सुख से गाने वाले थे हम गौरव के गीत !
क्रूर-काल ने छेड़ा कैसा प्रलयङ्कर सङ्गीत !!
भाग्य बराबर भाग्यहीन इस हीन-हिन्द का फूटा !
रोते ही रोते रहते, रोने का तार न टूटा !!
तीस कोटि का कुलिश-कलेजा टूक-टूक है टूक !
भारतवासी मन्त्र-मुग्ध से हाय ! हुए हैं मूक !
हाय ! हाय ! यह हाय ! हृदय में आग रही है फूक !
भूल नहीं सकते हम तेरे आह ! ख़ून के थूक !!!
अरे काल ! याचना अगर हमसे पहले कर लेते !
कटा-कटा अपने-अपने सिर तीस कोटि धर देते !!
स्वतन्त्रता के सच्चे सैनिक ! हे स्वदेश सरदार !
हे भारत के रत्न ! देश-नौका के खेवनहार !
कहाँ गए ! तुम इसे छोड़ कर, यह तो है मँझधार !
कर देते इस पार इसे, या कर देते उस पार !!
रत्नाकर में रह न गया है मूल्यवान अब मोती !
भारत-माँ के मुकुट ! कि जिससे समता तेरी होती !
भूल गए ? हा ! करुण-कथाएँ, मान भूल औ चूक !
भूल गए ? हम जान-जान कर उनका बुरा सलूक !
भूल गए ? कितनी घटनाएँ बन कर बिलकुल मूक !
भूल गए ? कितने बच्चों की कोयल की सी कूक !!
आज अचानक आग हृदय में फूक रही है फूक !
भूल नहीं सकते ! लाठी के दाग़ ! ख़ून के थूक !!!

बहिन जी, तुम वेश्या क्यों हो गई हो ?

[श्री० श्रीनाथसिंह]

एक दिन हमारी मित्र-मण्डली में, जिसमें मेरे जैसे तुच्छ लेखक से लेकर (नाम नहीं बताऊँगा) नेता और एम० एल० ए० तक मौजूद थे, वेश्या-वृत्ति के सम्बन्ध में गहरी बहस हो गई। वेश्या-वृत्ति के किसी ने कुछ कारण बताए, किसी ने कुछ। किसी ने इस पेशे को समाज के लिए बुरा कहा, किसी ने अच्छा ; पर सन्तोष किसी को नहीं हुआ। अन्त में लोगों की यह राय ठहरी कि चल कर वेश्याओं से ही इस सम्बन्ध में कुछ क्यों न पूछा जाय ? परन्तु बहुतों ने यह कहा कि इस प्रकार दिन-दहाड़े हम लोगों का वेश्याओं की गली में जाना उचित न होगा। मालूम नहीं, कौन क्या कहे। इधर कुछ लोग बहुत ही उतावले हो रहे थे, इसलिए सर्व-सम्मति से इस सम्बन्ध में जाँच करने के लिए एक कमीशन बनाया गया, जिसमें मेरे जैसे वे सब सज्जन शामिल थे, जिनके सम्बन्ध में बहुतों की यह धारणा थी कि इनका समाज में न कोई स्थान है, न मान।

२

हम लोग उसी समय वेश्याओं की गली में पहुँचे। अमीर, ग़रीब, .ख़ूबसूरत, बदसूरत, .ख़ुशदिल, मनहूस, सब प्रकार की वेश्याओं से मिले और एक लम्बी रिपोर्ट तैयार की। वह रिपोर्ट यहाँ देना हमारा उद्देश्य नहीं है। यहाँ अपनी मित्र-मण्डली के सब मित्रों के अनुरोध से मैं सिर्फ़ एक ऐसी कथा सुना देना चाहता हूँ जिसका हम सब पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा था।

हम लोग वेश्याओं की गली में प्रत्येक वेश्या से, जो सामने पड़ जाती थी, सिर्फ़ एक सवाल पूछते चले जाते थे—'बहिन जी, तुम वेश्या क्यों हो गई हो ?' इस प्रश्न पर कोई वेश्या नाक-भौं चढ़ा लेती थी, कोई सिर नीचा कर लेती थी ; कोई उदास हो जाती थी, कोई हँस देती थी और कोई मुस्करा कर कहती थी—"भाई जी, आपके विनोद के लिए और अपने पेट के लिए।" इस वाक्य में जो 'विनोद' शब्द आया है उसे मैंने अपनी तरफ़ से जोड़ा है। इसके स्थान पर यदि मैं वही शब्द दे देता जो हमारे कान में पड़ा था तो इस कहानी को शायद बहुत से पाठक पसन्द न करते, और मैं नहीं चाहता कि मेरी कहानी सिर्फ़ एक शब्द के कारण नापसन्द की जाय।

एक वेश्या अपने तिमञ्ज़िले की खिड़की से हम लोगों का गली में इस प्रकार फिरने और सब प्रकार की वेश्याओं से बातें करने का दृश्य देख रही थी, शायद कुछ-कुछ समझ रही थी। उसने ऊपर से ही आवाज़ लगाई—"बग़ल के रास्ते से ऊपर चले आइए, मैं आप लोगों की बहुत सी बातों का उत्तर दूँगी।" हम लोग हिचकिचाए। वह हँसने लगी। बोली—"इस सीढ़ी पर पहले-पहल क़दम रखने वाले शुरू में ऐसे ही नख़रे करते हैं, परन्तु आप लोगों का उद्देश्य अच्छा—शायद पवित्र भी जान पड़ता है, इससे घबड़ाने की कोई बात नहीं।" हम लोग ऊपर चढ़ते चले गए। उस मकान में कुल १८ वेश्याएँ थीं। सबों ने मिल कर उस मकान को किराए पर ले रक्खा था। सब एक उम्र की थीं। हम लोग दिन में निकले थे, इसलिए उनको उनके वास्तविक स्वरूप में देख सकते थे। कोई नहा रही थी, कोई बर्तन साफ़ करने में लगी थी। कोई पढ़ रही थी, कोई अपने फटे कपड़े सी रही थी। उनका यह गृहस्थी-सम्बन्धी जीवन क़रीब-क़रीब वैसा ही था जैसा हमारे घरों में हमारी माँ-बहिनों का होता है। पर इन बातों को बताना यहाँ हमारा उद्देश्य नहीं है।

हम लोग जैसे ही मकान में घुसे वैसे ही एक ने कहा—"ओह ! बहुत से बकरे चले आ रहे हैं, जान पड़ता है आज अच्छी छनेगी।" दूसरी ने कहा—"यह शिकार राधा ने मारा होगा। चुड़ैल चौबीसों घण्टे ताक में बैठी रहती है।"

इसी प्रकार की और भी बहुत सी बातें हम लोगों ने सुनीं, पर उन पर हममें से किसी ने ध्यान नहीं दिया। पर इतना सबों ने जान लिया कि जिस वेश्या ने हमें बुलाया है उसका नाम राधा है और सम्भव है कि वह बड़ी मक्कार भी हो।

राधा का कमरा मामूली था। दीवालें मैली थीं। छत और कोनों में मकड़ियों ने जाला तान रक्खा था। परन्तु फ़र्श साफ़ था। सारे कमरे में एक टाट बिछा था, उसके ऊपर से सफ़ेद चद्दर थी। जिस खिड़की से उसने
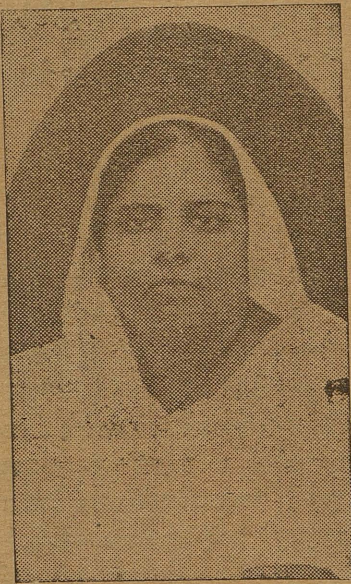
श्रीमती कुसुम बेन

आप भड़ोच के देश-सेविका संघ की प्रधान हैं, जो हाल ही में गिरफ़्तार कर ली गई हैं।

नीचे गली में आवाज़ दी थी उसीके पास फ़र्श पर एक मोटा गद्दा बिछा था। गद्दे के ऊपर तकिया रक्खा था। तकिया ऊँचा था। इसी तकिए पर बैठ कर राधा गली की ओर देख सकती थी और अब भी वह उसी पर बैठी थी।

कमरे में पहुँचने पर हम लोग उसके गद्दे और तकिए से दूर फ़र्श पर बैठ गए। उसने मुस्करा कर वहीं अपने तकिए पर से बैठे-बैठे पूछा—कहिए, आप लोग क्या जानना चाहते हैं?

हम सबों के मुँह से अकस्मात वही प्रश्न निकल पड़ा—"बहिन जी, तुम वेश्या क्यों हो गई हो?"

राधा खिलखिला कर हँस पड़ी और बोली—आप लोग आर्यसमाजी हैं?

"नहीं?"

"सेवा-समिति वाले हैं?"

"नहीं।"

"कॉङ्ग्रेसी भाई हैं?"

"नहीं।"

"वेश्याओं का उद्धार करने के लिए इस शहर में जो सभा खुली है, उसके सदस्य हैं?"

"नहीं।"

राधा और ज़ोर से हँसने लगी—तब इस गली में आने का आप लोगों का कोई ख़ास मतलब नहीं हो सकता।

"बिल्कुल नहीं, योंही दिल में एक सवाल पैदा हो गया, उसी को हल करने के उद्देश्य से यहाँ तक चले आए।"

"अच्छी बात है। हाँ, आपने क्या पूछा था?"

"तुम वेश्या क्यों हो गई हो?"

"इस प्रश्न का उत्तर तो आप लोगों को नीचे गली में ही मिल गया था—पेट के लिए। मैंने समझा था आप लोग कुछ और पूछना चाहते हैं। तब जाइए, यहाँ तक आने के लिए धन्यवाद!"

राधा फिर गली की ओर देखने लगी।

मैंने कहा—राधा, तुम्हारा यह उत्तर काफ़ी नहीं है? क्या तुम्हें यह पेशा पसन्द है?

"हाँ।"

"दुनिया में तुम्हें सब से अधिक यही पेशा पसन्द आया?"

मैंने देखा, राधा कुछ चौंक सी पड़ी। उसका चेहरा तमतमा उठा। अपने तकिए से उछल कर वह मेरे पास आ बैठी और घूर-घूर कर मेरे चेहरे को देखने लगी। मैंने कहा—बुरा मान गई हो क्या राधा?

"नहीं, देख रही हूँ कि तुम्हारे कन्धों के ऊपर कुछ अक़्ल भी है या केवल खोपड़ी ही खोपड़ी।"

मैं कुछ डर सा गया।

राधा ने कहना शुरू किया—स्त्रियों के लिए इस देश

में दो ही पेशे हैं—विवाह और वेश्या-वृत्ति ; और दोनों में बहुत कुछ समानता है।

मेरे एक दोस्त ने कहा—क्या ? दोनों में समानता है ?

दूसरे दोस्त ने कहा—विवाह पेशा नहीं है, राधा ! वह पवित्र बन्धन है।

राधा ने कुछ उत्तेजना के साथ मेरे पहले दोस्त से कहा—हाँ, दोनों में बहुत कुछ समानता है। जैसे विवाहिता स्त्री, वैसे वेश्या।

फिर वह मेरे दूसरे दोस्त की ओर मुँह करके बोली—जी नहीं, विवाह पेशा है पेशा ! वेश्या-वृत्ति से भी घृणित पेशा।

इसी समय मेरे तीसरे दोस्त भड़क उठे। वे बोले—ख़बरदार राधा ! जो ऐसा बात कही ? विवाहिता स्त्री की और वेश्या की कोई तुलना नहीं हो सकती। एक स्वर्ग है, दूसरी नरक।

"परन्तु स्वर्ग की परवाह कोई नहीं करता—नरक में सब दौड़े आते हैं ?"

मेरे मित्र ने उत्तेजित होकर कहा—वे मूर्ख हैं, नीच हैं, बेईमान हैं।

राधा बोली—बेशक हैं, परन्तु मैं तो विवाह को वेश्या-वृत्ति सी ही एक वस्तु समझूँगी।

मेरे मित्र ने और भी उत्तेजित होकर कहा—राधा ! बस, अब ऐसी बात कभी मत कहना ख़बरदार !

राधा भी उत्तेजित हो उठी—कहूँगी, कैसे नहीं ? कहूँगी, डङ्के की चोट पर कहूँगी। कोई क्या कर लेगा। सत्य को छिपाया नहीं जा सकता।

मेरे मित्र आपे से बाहर हो गए—क्या बकती है, रधिया ! चुप !!

"तुम चुप ! मैं डङ्के की चोट पर कहूँगी कि विवाह पेशा है। और कोई भी स्त्री, जो ब्याह करती है, वह वेश्या है ! शुरू में मैं वेश्या नहीं बनना चाहती थी—यानी विवाह नहीं करना चाहती थी। क्योंकि मैंने विवाहिता स्त्री की ग़ुलामी देखी थी। वह मुझे पसन्द नहीं थी। मैंने पहले नौकरी की तलाश की, पर नौकरी नहीं मिली। मेरे बाप नहीं थे। केवल माँ थी और माँ की मृत्यु के बाद मैं स्वाधीन हो गई। मैं आर्य-समाजों में गई, विधवा-आश्रमों में गई। सर्वत्र मैंने प्रार्थनापूर्वक कहा—'मुझे अपने आश्रम में भर्ती कर लीजिए। कुछ काम सिखाइए, ताकि मेरा निर्वाह हो।' परन्तु सब जगह लोगों ने मुझसे कहा—'बहिन जी, तुम ब्याह कर लो, ख़ूबसूरत चेहरा है, नई उम्र है। पवित्रता के साथ जीवन व्यतीत न कर सकोगी।' मैं कुछ चाहती थी, लोग मुझे उपाय बताते कुछ थे। अन्त में जब मेरा ख़र्च घटने लगा और मैंने देखा कि बिना विवाह किए काम न चलेगा (क्योंकि विधवा-आश्रमों में या अनाथालयों में युवती स्त्रियों को केवल इसीलिए रक्खा जाता है कि निकट-भविष्य में ब्याह के

ट्रावणकोर की महारानी सेतू पार्वती
आप स्त्री-कॉन्फ्रेन्स के मद्रास में होने वाले अधिवेशन की सभानेत्री चुनी गई थीं। कहा जाता है, महिला-कॉन्फ्रेन्स का यह अधिवेशन बहुत सफल रहा।

द्वारा उन्हें एक बन्द घर में फेंक दिया जाय। मैंने देखा है कि जो स्त्री विवाह करने पर तैयार नहीं होती वह ऐसे आश्रमों से निकाल दी जाती है।) तब मैंने सोचा कि जब वेश्या ही बनना है तब अच्छी तरह से क्यों न बनूँ ! बस उसी निश्चय के अनुसार मैं भटकती-भटकती यहाँ तक पहुँच गई। अब मैं मज़े में हूँ, लाख दर्जे मज़े में।"

इस पर मेरे मित्रों ने कुछ और कहा, राधा ने कुछ और। बहस में इतनी अधिक गर्मी आई कि जान पड़ता

था मार-पीट हो जाएगी और राधा ने यहाँ तक कह डाला कि तुम सब वेश्याओं के लड़के हो।

यह बात किसी को सह्य नहीं थी। मेरे सब मित्र तेज़ आँच पर चढ़े दूध की तरह उबल रहे थे। मुझे बड़ी हँसी आई। मैंने कहा—राधा, मेरी मित्र-मण्डली में किसी दिन तुम्हारा लेक्चर होता तो बड़ा मज़ा आता?

किन्तु इस पर किसी ने कुछ ध्यान नहीं दिया। उस घर में जो सत्रह वेश्याएँ और थीं वे झगड़ा बढ़ता देख

पत्र-सम्पादक—हाय मेरे मौला! क्या लिखूँ, क्या न लिखूँ?

आजकल बदला हुआ मज़मून है!
नुवते-नुवते के लिए क़ानून है!

कर उस कमरे में आ गईं और बोलीं—आप लोग अब कृपा करके जाइए। राधा इसी तरह सब से लड़ा करती है। इसके कहने से कोई विवाहिता स्त्री बुरी नहीं हो सकती और हमें तो संसार बुरा कहता है। हम बेशक बुरी हैं। कहीं मुँह दिखाने लायक़ नहीं हैं। आप लोग जायँ।

हम सब लोग नीचे चले आए। इसीमें अब कल्याण था। जब हम लोग वहाँ से निकल रहे थे, तब राधा अपनी सहेलियों से कह रही थी—बहुत नहीं, सिर्फ़ इतना मान सकती हूँ कि विवाहिता स्त्री परिमित वेश्या है और हम अपरिमित!

* * *

पाठक! कहानी समाप्त हो गई। परन्तु यदि यह कोई बड़ा उपन्यास होता और इसका लेखक यानी मैं, कोई महात्मा होता तो इसकी भूमिका में मेरा निम्न-लिखित पैराग्राफ़ आपको अवश्य पढ़ने को मिलता :—

हर एक को अपनी जीविका के लिए अलग मेहनत करनी चाहिए—पुरुष को भी और स्त्री को भी। यदि यह बात हो जाय तो किसी स्त्री को अपनी इच्छाओं की, पति की इच्छा के सामने बलि करने की ज़रूरत न पड़े। क्योंकि स्वतन्त्र-जीवी न होने के कारण ही अधिकांश स्त्रियों को वैवाहिक दासता स्वीकार करनी पड़ती है। जैसे मर्द बड़े होकर नौकरी या तिजारत करते हैं वैसे ही स्त्रियाँ बड़ी होकर ब्याह करती हैं। दोनों का उद्देश्य उदर-पालन है। विवाह करते समय माँ-बाप भी यही देखते हैं कि जिसके साथ लड़की का ब्याह हो रहा है, वह उसे खिला-पिला सकेगा या नहीं, गहने-कपड़े दे सकेगा या नहीं। इस कसौटी पर विवाहिता स्त्रियों को कसा जाय तो वे 'परिमित वेश्या' के दायरे के अन्दर अवश्य आ गिरेंगी। परन्तु यदि स्त्री अपनी जीविका कमाने की योग्यता रखती हो या उसका पिता उसे इतना धन दे दे कि वह मृत्यु तक निर्वाह कर सके और उसके लिए वर खोजने में यह बात न देखी जाय कि पति उसके पालन-पोषण का भी भार लेगा, तो उसका विवाह पेशा नहीं कहला सकता और न उसे राधा अपमानित ही कर सकती है। स्त्रीत्व का समुचित विकास होने के लिए यह आवश्यक है कि स्त्रियाँ आर्थिक पराधीनता से मुक्त हों।

यौवन का छल

उपवन की शोभा बन कर आई हो अवनीतल में।
मन मेरा भर लोगी, अपना घड़ा डुबा कर जल में॥
क्या पानी भरने पाओगी, यौवन के इस छल में?
जल ही भर लेगा इस छवि को, अपने वक्षस्थल में!!

—कुमार

स्वर्गीय मौलाना मोहम्मदअली

(संक्षिप्त परिचय)

"मैं यहाँ जातीय चुनाव का फ़ैसला करने नहीं आया और न मुसलमानों की माँगों का समर्थन करने ही आया हूँ। मैं तो यहाँ भारत के लिए स्वतन्त्रता लेने आया हूँ, जिससे भारत के मुसलमान भी स्वतन्त्र हो सकेंगे। यदि हमारी यह माँग पूरी न हुई, तो मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मुसलमान बिना किसी हिचकिचाहट के भारत के वर्तमान सत्याग्रह आन्दोलन में भाग ले लेंगे।"

—मोहम्मदअली

लाना मोहम्मदअली के नाम से आज प्रत्येक भारतवासी परिचित है। सन् १९२१ के असहयोग आन्दोलन में भाग लेकर वे भारत के इतिहास में अमर हो गए हैं। उन दिनों आपका नाम प्रत्येक भारतवासी के मुख पर रहता था। आपके जीवन के महत्वपूर्ण कार्यों से प्रत्येक भारतवासी परिचित है। पाठकों के मनोरञ्जनार्थ यहाँ उनका संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

मौलाना मोहम्मदअली के पितामह श्रीयुत अली-बख़्श ख़ाँ धनी व्यक्ति थे। वे रामपूर स्टेट के एक उच्च पदाधिकारी थे। रामपूर के नवाब यूसुफ़अली ख़ाँ आपका बहुत सम्मान करते थे। सन् १८५७ के बलवे में आपने ब्रिटिश सरकार को बहुत सहायता दी थी। इस राजभक्ति के उपहार में उन्हें मुरादाबाद ज़िले में एक बहुत बड़ी जागीर दी गई थी। मौलाना मोहम्मदअली के पिता श्री० अब्दुलअली ख़ाँ भी रामपूर स्टेट में एक ऊँचे पदाधिकारी थे। तरुणावस्था में ही इनकी हैज़े से मृत्यु हो गई। उनकी मृत्यु के समय मौलाना शौकतअली केवल २ वर्ष के थे और मौलाना मोहम्मदअली बहुत छोटे थे। पिता की मृत्यु के उपरान्त इन दोनों बच्चों का भार इनकी सुयोग्य माता बी-अम्मा ने लिया। मौलाना मोहम्मद-अली का जन्म सन् १८७८ में हुआ था। आपने २० वर्ष की अवस्था में बी० ए० की परीक्षा पास की। इसके बाद वे इण्डियन सिविल सर्विस की परीक्षा देने के लिए विलायत गए और वहाँ ऑक्सफ़र्ड के लिङ्कन कॉलेज में चार वर्ष तक शिक्षा प्राप्त की। कई कारणों से आप सिविल सर्विस की परीक्षा में सफल न हो सके। और वे नौकरशाही की मशीन के पुर्ज़े बनने से बच गए।

विलायत से लौटने के बाद आप रामपूर स्टेट के शिक्षा अधिकारी बनाए गए। यहाँ से सन् १९०८ में आप बड़ोदा राज्य में एक बड़े पद पर नियुक्त किए गए। बड़ोदा में आपने बड़ी तत्परता से कार्य किया और प्रजा की दशा सुधारने का सतत प्रयत्न किया। परन्तु इससे आपको सन्तोष नहीं हुआ। मौलाना आरम्भ से ही बड़े साहसी और उत्साही मनुष्य थे। आरम्भ से ही उन्हें धार्मिक शिक्षा दी गई थी। वे इस्लाम के कट्टर अनुयायी थे। इससे वे अपनी जाति तथा धर्म की सेवा करने को लालायित हो रहे थे। अपनी जाति तथा धर्म के वे केवल भारत मात्र के मुसलमानों का नहीं, वरन इस्लाम के संसार भर के अनुयायियों का पुनरुत्थान तथा सङ्गठन करना चाहते थे। यह कार्य बड़ोदा स्टेट की नौकरी करते हुए नहीं हो सकता था, इसलिए छः साल की नौकरी के बाद, दो वर्ष की छुट्टी लेकर आपने अपने सम्पादकत्व में कलकत्ते से "कॉमरेड" नामक साप्ताहिक समाचार-पत्र प्रकाशित करना प्रारम्भ कर दिया। आपने और कई प्रसिद्ध समाचार-पत्रों में लेखादि भेजना शुरू किया। इन लेखों में आपने अपनी अपूर्व प्रतिभा का परिचय दिया। आपके लेख विद्वत्ता तथा हास्य-रस से परिपूर्ण रहते थे। थोड़े ही दिनों में आपकी गिनती उच्च कोटि के लेखकों में होने लगी। अपनी इस सफलता

से प्रोत्साहित होकर आपने शेष जीवन में यही कार्य करना निश्चय किया और अपनी नौकरी से इस्तीफ़ा दे दिया। आपको जावरा स्टेट की दीवानी भी दी गई, पर आपने इसे भी स्वीकार न किया। "कॉमरेड" कलकत्ते से शुरू हुआ था, पर जब भारत की राजधानी कलकत्ते से दिल्ली को हटाई गई, तब "कॉमरेड" का दफ़्तर भी सन् १९१८ में कलकत्ते से दिल्ली को हटा दिया गया। इस साप्ताहिक पत्र को प्रकाशित करने में मौलाना ने अपनी असाधारण मानसिक शक्ति का परिचय दिया और थोड़े ही दिनों में यह पत्र बहुत लोकप्रिय हो गया। इस पत्र को निकालने का मुख्योद्देश्य अपनी जाति की सेवा तथा भारत की भिन्न-भिन्न जातियों में प्रेम-भाव उत्पन्न करना था। वे अपने पत्र द्वारा सदैव हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रचार करने का प्रयत्न करते थे। १४ जनवरी, १९११ के "कॉमरेड" में उन्होंने जो अपने पहले लेख में लिखा था, कि "यह हमारा दृढ़ विश्वास है कि यदि भारत की हिन्दू या मुस्लिम जाति बिना एक-दूसरे की भलाई का ख़्याल किए और बिना एक-दूसरे की सहायता लिए सफलता प्राप्त करने का प्रयत्न करेंगी, तो यह निश्चय है कि उनका यह प्रयत्न सर्वथा असफल होगा।" आपने लिखा था "भारत की समस्याएँ बहुत विकट हैं। परन्तु जब यूरोप में इतनी राष्ट्रीय स्पर्द्धा, इतने युद्ध तथा कलह होते हुए भी वहाँ के राजनीतिज्ञ उस दिन की आशा कर रहे हैं, जब सारा यूरोप एक होकर रह सकेगा, तब क्या हम इतनी भी आशा नहीं कर सकते कि भारत-निवासी एक होकर एक बलिष्ठ राष्ट्रीय शासन-विधान की नींव स्थापित करें।" इन शब्दों से मौलाना का देश-प्रेम तथा हिन्दू-मुस्लिम समस्या को हल करने की चिन्ता साफ़-साफ़ ज़ाहिर होती है।

पर "कॉमरेड" की स्थापना करके उनकी तबियत न भरी। वे यह पूर्णतया समझते थे कि राष्ट्रीय तथा जातीय उत्थान के लिए देश की सारी जनता को जगाने की आवश्यकता है। अङ्गरेज़ी समाचार-पत्र तो केवल अङ्गरेज़ी पढ़े-लिखे लोगों की सेवा कर सकता है। इस उद्देश्य से उन्होंने एक उर्दू पत्र "हमदर्द" की स्थापना की। यह बहुत ही लोक-प्रिय हो गया। और इसमें प्रकाशित विचार लोगों पर जादू का काम करने लगे। इससे यह सरकार द्वारा बन्द कर दिया गया।

इसके अतिरिक्त भी मौलाना मोहम्मदअली ने हर प्रकार से अपने धर्म की सेवा करने का प्रयत्न किया। सन् १९१३ में कानपुर की एक मसजिद का कुछ भाग सरकार द्वारा गिरवा दिया गया। यह भाग एक नई निकलने वाली सड़क के ऊपर पड़ता था। इसके विरोध में कानपुर तथा अन्य शहरों की मुस्लिम जनता ने सभाएँ कीं और आन्दोलन उठाया। मौलाना मोहम्मदअली ने अपने पत्र द्वारा इसका घोर विरोध किया। उस समय के लेफ़्टिनेण्ट गवर्नर सर जेम्स मेस्टन से प्रार्थना की
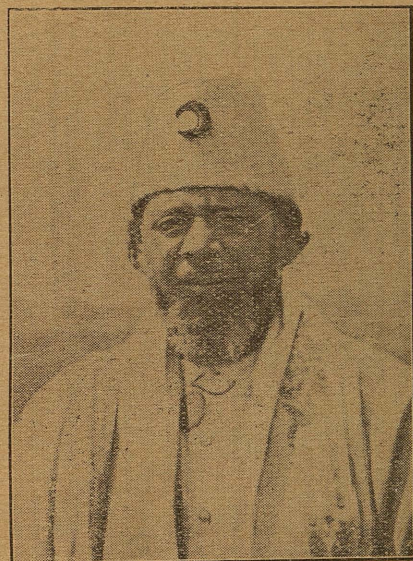
स्वर्गीय मौलाना मोहम्मदअली

गईं, पर उनकी ये प्रार्थनाएँ सफल न हुईं। अन्त में मौलाना मोहम्मदअली तथा सय्यद वज़ीर हसन ने विलायत जाने का निश्चय किया। वहाँ उन्होंने इस सम्बन्ध में सभाएँ कीं, व्याख्यान दिए तथा बड़े-बड़े पदाधिकारियों से भेंट की। इसका फल यह हुआ कि वाइसराय ने स्वयं कानपुर आकर मुसलमानों की माँगें पूरी कर दीं।

हम पहले कह चुके हैं, कि मुस्लिम धर्म की सेवा में वे केवल भारत के मुसलमानों का ही नहीं, वरन संसार के सब मुसलमानों को सङ्गठित करना चाहते थे। वे

अपने जीवन भर संसार के सब देशों में रहने वाले अपने सहधर्मियों की उन्नति की चेष्टा करते रहे। गत यूरोपीय महायुद्ध में जब टर्की ने मित्र-दल के विरुद्ध युद्ध छेड़ा, तब भारत में मुसलमान बहुत अशान्त हो उठे। इङ्गलैण्ड के सारे समाचार-पत्र टर्की की बुराइयों से भरे रहते थे। मौलाना मोहम्मद अली से यह न सहा गया। आपने इनके उत्तर में टर्की के अधिकारों तथा माँगों का समर्थन किया। इससे घबरा कर ब्रिटिश सरकार ने आपको जेल में बन्द कर दिया और "हमदर्द" तथा "कॉमरेड" की ज़मानतें ज़ब्त कर लीं। आप चार

श्रीमती पी० के० पङ्काजम

आप विज़गापाटम (मद्रास) की म्यूनिसिपुल कौन्सिलर हैं, जो हाल ही में शिक्षा-समिति की सदस्या नियुक्त हुई हैं।

साल तक बन्दी अवस्था में रहे। सन् १६१६ में सन्धि हो जाने पर आप रिहा कर दिए गए।

जेल से छूट कर आप सीधे अमृतसर पहुँचे, जहाँ कॉङ्ग्रेस का अधिवेशन हो रहा था। यहाँ पर सर माइकेल ओडायर को पञ्जाब से हटा देने के प्रस्ताव पर आपने बड़ा जोशीला भाषण दिया। सरकारी ज़ातियों के कारण तथा चार वर्ष तक बन्दी अवस्था में रहने के कारण, आपको बहुत आर्थिक हानि उठानी पड़ी। इसलिए जब आप जेल से छूटे तब हिन्दुस्तान के प्रमुख हिन्दुओं तथा मुसलमानों ने आपके लिए द्रव्य एकत्रित करने के उद्देश्य से एक कमिटी नियुक्त की। और उसके एकत्रित द्रव्य की थैली मौलाना मोहम्मदअली को दी गई। पर आपने इसे अपने ख़ानगी-ख़र्च में लाने से इन्कार कर दिया और उसे सामाजिक सेवा में ख़र्च किया।

युद्ध के बाद ब्रिटिश सरकार तथा उनके सहयोगियों ने मुस्लिम जगत की छीछालेदर करना आरम्भ कर दिया। टर्की को सार्वभौमत्व के पद से हटाने का प्रयत्न होने लगा। मौलाना मोहम्मदअली ने इसके विरुद्ध फिर कमर कसी। भारत में ख़िलाफ़त का आन्दोलन बड़े उत्साह के साथ उठाया गया, महात्मा गाँधी ने भी इसमें सहायता देने का वचन दिया। इसी सम्बन्ध में सन् १६२० की जनवरी में भारत के प्रमुख हिन्दू और मुस्लिम नेता वाइसराय से मिले और उनसे ख़िलाफ़त के प्रश्न पर बातचीत की। परन्तु इसका कुछ भी फल न निकला। इसी साल मार्च में मौलाना मोहम्मदअली के प्रतिनिधित्व में कुछ लोग इङ्गलैण्ड भेजे गए। इन्होंने ब्रिटिश जनता के सामने अपनी माँगें पेश कीं और उन्हें अपनी यात्रा का उद्देश्य सुनाया। इङ्गलैण्ड तथा फ्रान्स में समाचार-पत्रों की भी स्थापना की गई, परन्तु इनसे भी उन्हें कुछ सफलता प्राप्त न हुई। हताश होकर अक्टूबर में वे भारत लौट आए और बम्बई की विराट सभा में व्याख्यान देते हुए उन्होंने कहा कि "जब तक भारत स्वतन्त्र नहीं होता, तब तक हमारी माँगें पूरी नहीं हो सकतीं, इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि हिन्दू तथा मुसलमान एक होकर भारत को स्वतन्त्र करें। स्वतन्त्र भारत एशिया के मुस्लिम देशों को काफ़ी सहायता पहुँचा सकेगा।" इसीलिए आप भारत की स्वतन्त्रता के युद्ध में कूद पड़े। सन् १६२० की नागपुर की कॉङ्ग्रेस में महात्मा गाँधी का असहयोग का प्रस्ताव पास हुआ। इसमें मौलाना उनके दाहिने हाथ थे, उन्हीं के प्रयत्न से इस आन्दोलन में भारत के मुसलमान हिन्दुओं के कन्धे से कन्धा लगा कर लड़े। असहयोग आन्दोलन ने भारत की काया-पलट कर दी। चरख़े, झण्डे तथा राष्ट्रीय गानों से भारत का गगन-मण्डल गूँज उठा। भारत-सरकार ने घबरा कर नेताओं की धर-पकड़ प्रारम्भ कर दी। आप भी सितम्बर में विज़गापाटम में गिरफ़्तार

किए गए और कराची के प्रसिद्ध मुक़दमे में आपको दो वर्षों की कड़ी सज़ा दी गई।

उन दिनों सारा भारत अली भाइयों के गुण-गान से गूँज रहा था। वे राष्ट्रीय संग्राम के वीर तथा उत्साही नेता थे। हिन्दू-मुस्लिम एकता के समर्थक थे। फिर क्यों प्रिय न होते? इसलिए सन् १९२३ में, जब आप जेल से छूट कर आए तब भारत ने इन्हें अपने सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित किया। मोहम्मदअली कोकोनाडा में होने वाली काँङ्ग्रेस के सभापति चुने गए। इसी साल हिन्दू-मुस्लिम झगड़ों को रोकने के लिए दिल्ली में 'ऑल पार्टीज़' (All Parties) कॉन्फ्रेन्स हुई, जिसमें महात्मा गाँधी ने २१ दिन का व्रत किया। इसमें मौलाना ने हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए बहुत प्रयत्न किया और उसमें उन्हें आशातीत सफलता प्राप्त हुई।

बस इस घटना के बाद से आपके राष्ट्रीय जीवन का अन्त हुआ। धीरे-धीरे असहयोग आन्दोलन की प्रचण्ड ज्वाला धीमी हुई और राष्ट्रीय वातावरण में जातीयता की दुर्गन्धि फैलने लगी। भारत के कोने-कोने से हिन्दू-मुस्लिम दङ्गों के समाचार आने लगे। यहाँ मौलाना का भी ख़ून ठण्डा हो चला। एक अङ्गरेज़ विद्वान ने कहा है कि "वृद्धावस्था में मनुष्य को दो दुर्गुणों से बचना चाहिए—एक तो कञ्जूसी से और दूसरे धार्मिक द्वेष से।" मौलाना भी जातीयता के भँवर में जा फँसे। उनका पुराना जोश जाता रहा और पुरानी निष्पक्षता का अन्त हो गया। भारत की जनता ने भी धीरे-धीरे उन्हें अपनाना छोड़ दिया, परन्तु फिर भी मौलाना का देश-प्रेम इकदम ठण्डा नहीं हुआ था। यह मानना पड़ेगा कि उनके हृदय में देश-प्रेम तथा जातीयता की भावनाओं में परस्पर युद्ध हुआ करता था! दोनों उनके हृदय को अपनी-अपनी ओर खींचती थीं। पुराने जोश के ठण्डे हो जाने पर भी वे राष्ट्रीय संग्राम के वीर योद्धा बने रहे। जातीयता के घोर पङ्क में पड़ने पर भी कभी-कभी उनके हृदय में देशभक्ति की पुरानी उमङ्गें उमड़ पड़ती थीं और इसका पूर्ण परिचय उन्होंने अपने गोलमेज़ परिषद के भाषण में दिया था। उसमें उन्होंने कहा था कि "यदि स्वराज्य न मिला, तो यहीं अपने प्राण-त्याग कर दूँगा। मैं पराधीन भारत में वापस लौट कर न जाऊँगा।" फिर अपने साथियों को लक्ष्य करके उन्होंने कहा कि "यदि हमें औपनिवेशिक स्वराज्य न दिया गया, तो समझो कि भारत ब्रिटिश सरकार के हाथ से सदा के लिए निकल गया। तब तो यह निश्चित है कि ब्रिटिश साम्राज्य के बाहर एक नवीन संयुक्त राज्य का उदय होगा, जिसमें वहाँ के समस्त धर्मों के अनुयायी एक होकर रहेंगे। × × ×"

* * *

"ब्रिटिश सरकार का सब से बड़ा दोष यह है कि वह भारत के न्याययुक्त अधिकारों को दबाने का प्रयत्न

श्रीमती के० के० जानकी अम्मा

आप त्रिवेन्द्रम (मद्रास) के गर्ल्स हाई-स्कूल की प्रधान अध्यापिका थीं। आपने स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र में ४० वर्षों तक कार्य करके हाल ही में विश्राम लिया है।

कर रही है। क्या वह समझती है कि वह भारत के ३३ करोड़ निवासियों को, जो स्वतन्त्रता के लिए प्राण देने को तैयार हैं, किसी तरह भी अपने बन्धन में रख सकती है।" हिन्दू-मुस्लिम झगड़ों के विषय में उन्होंने कहा था कि "हमारे हिन्दू-मुस्लिम झगड़ों के लिए ब्रिटिश सरकार ज़िम्मेदार है। वह हम लोगों में भेद डाल कर हम पर शासन करना चाहती है। भारत के स्कूलों में जो

इतिहास की शिक्षा दी जाती है, वही हिन्दू और मुसलमानों में आपस में वैर-भाव उत्पन्न कर देती है।"

मौलाना मोहम्मदअली बहुत ही निर्भय तथा स्पष्ट वक्ता थे। इसी भाषण में उन्होंने लॉर्ड रीडिङ्ग पर जो फ़िक़रा कसा था, उसमें उनके इन गुणों का पता चलता है। उन्होंने कहा था कि "मैं पुराना असहयोगी हूँ। इस अपराध के लिए लॉर्ड रीडिङ्ग ने मुझे और मेरे भाई को जेल में बन्द किया था। मैं इसका बदला हरगिज़ नहीं चाहता, परन्तु मैं आज वह शक्ति चाहता हूँ, जिससे यदि लॉर्ड रीडिङ्ग कोई अन्याय करें, तो मैं उन्हें जेल में बन्द कर सकूँ।"

नदियाद के कुछ प्रसिद्ध राष्ट्रीय कार्यकर्ता, जो हाल ही में लाठियों की वर्षा के शिकार हुए थे।

विलायत जाने के पूर्व ही से आपका स्वास्थ्य ठीक न था। पर इस रुग्णावस्था में भी आपने गोलमेज़ परिषद् में जाना स्वीकार कर लिया। वहाँ जाकर आपका स्वास्थ्य और भी ख़राब हो गया; पर आप गोलमेज़ परिषद् में बराबर काम करते रहे। ३री जनवरी की रात को आपकी तबियत और भी ख़राब हो गई। आप समझ गए कि अब अन्तिम समय आ पहुँचा है। आपको यही अफ़सोस था, कि आप हिन्दू-मुस्लिम समस्या को हल न कर सके। रात को उन्होंने कई ब्रिटिश नेताओं तथा हिन्दू सदस्यों को पत्र लिखे, और अपनी जातीय माँगों को पत्र में परिवर्तन किया। प्रधान-मन्त्री मिस्टर मैकडॉनल्ड को भी उन्होंने एक पत्र लिखा था, उसमें उन्होंने अपना वक्तव्य स्पष्ट रूप से ज़ाहिर कर दिया था। उन्होंने लिखा था कि "मैं यहाँ जातीय चुनाव का फ़ैसला करने नहीं आया, और न मुसलमानों की माँगों का समर्थन करने ही आया हूँ। मैं तो यहाँ भारत के लिए स्वतन्त्रता लेने आया हूँ, जिससे भारत के मुसलमान भी स्वतन्त्र हो सकेंगे। यदि हमारी यह माँग पूरी न हुई, तो मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मुसलमान बिना किसी हिचकिचाहट के भारत के वर्तमान सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लेने लगेंगे।" इन शब्दों में आपने अपनी देशभक्ति का पूर्ण परिचय दिया था। अपने जीवन में अन्त काल तक मौलाना भारत की तथा अपने धर्म की सेवा में लगे रहे। ४थी जनवरी को सुबह ९॥ बजे मौलाना को कराल-काल ने इस नश्वर संसार से उठा लिया। परमात्मा आपकी आत्मा को अक्षय शान्ति और परिवार के प्रिय जनों को धैर्य प्रदान करें।
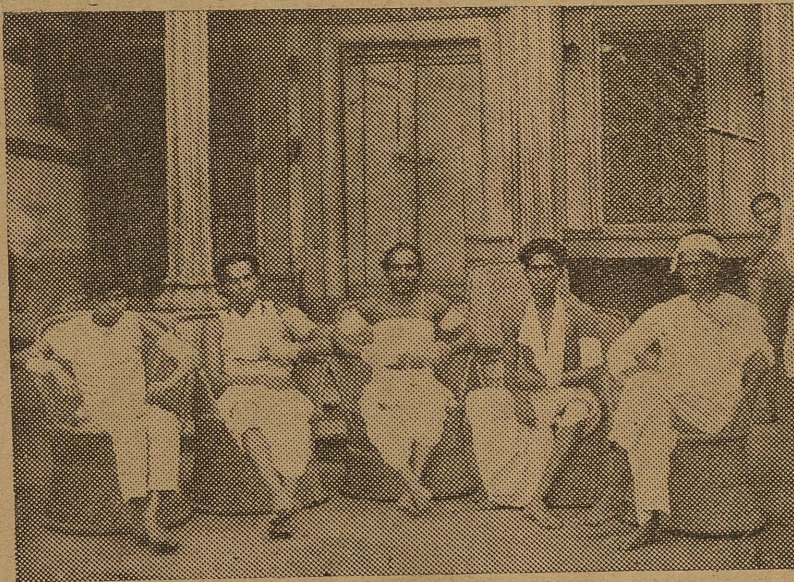
राष्ट्रीय महायज्ञ में महिलाओं का बलिदान

[श्री० देवकीनन्दन जी विभव, एम० ए०]

वर्तमान आन्दोलन की आधार-भूत शक्ति देश की महिलाओं की जाग्रति है। देश के बड़े-बड़े घरानों की महिलाएँ प्राचीन रूढ़ियों को तोड़ कर स्वराज्य-संग्राम में अपनी आहुति दे रही हैं। लाठियों के प्रहार और जेल की यन्त्रणाएँ भी उन्हें अपने आत्म-विश्वास से पीछे नहीं हटा सकी हैं। महिलाओं के योग ने सत्याग्रह-आन्दोलन में जीवन डाल दिया है। उनका आत्म-त्याग, सहनशक्ति, दृढ़ता भारतवर्ष के भावी इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखी जायँगी। वे जब अपने झण्डे की रक्षा के लिए हज़ारों के जन-समुदाय में सिंह की तरह घुस जाती हैं, तब मालूम होता है कि सामाजिक रूढ़ियों में कितना परिवर्तन हो गया है।

सहनशक्ति, बलिदान और त्याग महिलाओं के प्राकृतिक गुण हैं, वे कठिन से कठिन परिस्थिति का धैर्य के साथ मुक़ाबला कर सकती हैं और भीरु होने पर भी यदि एक बार एक बात से उनका भय निकल जाता है तो वे अत्यन्त अदम्य-साहस का कार्य भी कर सकती हैं। उनमें वे सभी गुण हैं, जो भारतवर्ष के वर्तमान आन्दोलन में उन्हें पुरुषों से अधिक उपयोगी साबित कर सकते हैं। उनमें वह व्यापारिक प्रवृत्ति नहीं है, जो एक पुरुष को बार-बार इस आन्दोलन से दूर खींच सकती है। उनमें वह उतावलापन भी नहीं है, जो शीघ्र ही सफलता न मिलने पर पुरुषों के जोश को ठण्डा कर देता है।

महिलाओं में एक पूर्ण सत्याग्रही बनने के सब गुण मौजूद थे, परन्तु फिर भी आज से आठ-नौ माह पहले किसको आशा थी कि महिलाएँ इस राष्ट्रीय महायज्ञ की आधार-भूत शक्ति ही बन जायँगी। जिस समय महात्मा गाँधी आश्रम से अपनी प्रसिद्ध रण-यात्रा के लिए चले थे और महिलाओं के कोमल हाथों ने उनका रण-गीत से आह्वान करके उनके भाल पर लाल टीका लगाया था, उस समय उन्होंने भी न सोचा होगा कि ये कोमल हाथ कुछ ही महीनों में इतने शक्तिशाली हो जायँगे कि उनमें राष्ट्रीय झण्डा भी अचल और सुरक्षित हो जायगा।

इन आठ-नौ महीनों में महिला-संसार में एक अद्भुत क्रान्ति हो गई है, ऐसी क्रान्ति जिसने शताब्दियों की रूढ़ियों और बन्धनों को जड़ से हिला दिया है। सन् १९२१ का असहयोग आन्दोलन प्रायः पुरुषों और नगरों का आन्दोलन था, अनेक पुरुष अपनी पत्नियों के कारण आन्दोलन में योग देने और जेल जाने से वञ्चित रह जाते थे, परन्तु सन् १९३० में स्थिति क्या है? महिलाएँ इस आन्दोलन की उन मुख्य प्रेरणा-शक्तियों में से हैं, जो पुरुषों को बलिदान के मार्ग की ओर खींचे हुए लिए जा रही हैं। यदि पुरुष उनके मार्ग में बाधक न होते तो आज जितनी स्त्रियाँ रणक्षेत्र में कार्य कर रही हैं, वहाँ उनसे चौगुनी दिखलाई पड़तीं। बम्बई के मोर्चे पर तो महिलाओं ने कमाल कर दिया है, हज़ारों स्त्रियों के जुलूस, प्रभात फेरियाँ, पिकेटिङ्ग और दर्जनों गिरफ़्तार होना तो प्रति दिन की साधारण सी घटना हो गई है। और यह स्त्रियाँ भी कौन हैं? इनमें बड़े-बड़े मिल-मालिकों, कारख़ानों, फ़र्मों और सरकारी अफ़सरों की भी स्त्रियाँ हैं, इनमें बी० ए० हैं, एम० ए० हैं, वकील हैं और डॉक्टर भी हैं। इनके अतिरिक्त वे स्त्रियाँ भी हैं, जो पहले कभी घर से बाहर नहीं निकलती थीं, बहुत कम पैदल निकलती थीं और अपने जीवन में शायद कभी फ़र्लाङ्ग दो फ़र्लाङ्ग पैदल चली हों।

महिलाओं के एक जुलूस को देखो, इसमें छोटी-छोटी लड़कियों के अतिरिक्त साठ-साठ वर्ष की बूढ़ी स्त्रियाँ भी सम्मिलित रहती हैं। फिर उनकी मुखाकृति को देखो और उनके भावों की दृढ़ता का अनुभव करो। उनके मुँह से राष्ट्रीय गायन के शब्द आप ही आप निकलते जाते हैं। एक-एक शब्द के पीछे उनके भावों की

अतुल शक्ति है। गीत में अलङ्कार नहीं है। कुछ रस भी नहीं है, कोई सौन्दर्य भी नहीं है और न कोई अनोखे भाव ही हैं, सीधी-सादी तुकबन्दियाँ हैं, फिर भी दर्शक सुनते हैं और उनका हृदय हिल जाता है, शरीर का प्रत्येक अणु उत्तेजित हो उठता है। बड़े-बड़े कायरों के दिल भी उमड़ उठते हैं। जुलूस आगे बढ़ता है, पुलिस-शक्ति का प्रदर्शन होता है। घोड़े की टापों और 'हटो, भागो' 'मारो-मारो' की कर्कश आवाज़ें सुनाई देती हैं। लाठियाँ चलने लगती हैं, परन्तु वे कोमल हृदय, नाज़ुक शरीर टस से मस नहीं होते। वे स्वयंसेवकों को चारों ओर से घेर कर खड़ी हो जाती हैं; क्योंकि "देश की आज़ादी के लिए भाइयों से पहले बहिनें मार खायँगी।"

बम्बई! जो कुछ ही मास पहले शृङ्गाररस-पूर्ण थी, वह आज वीररस-पूर्ण है। आज वहाँ पाउडर और कोस्मेटिक्स की उपासिकाओं का जमघट समालोचना का विषय नहीं है, आज उनकी चर्चा है जो सरल सौन्दर्य की मूर्ति हैं और बड़ी-बड़ी क़ीमती विलायती साड़ियों और ब्लाउज़ों की जगह चन्द्र-धवल खादी में दिखलाई देती हैं। आज उनका सारा दृष्टि-कोण ही बदल गया है। देश में जब आग लगी है तो वस्त्राभूषण कैसे?

महिलाओं ने राष्ट्रीय ध्वजा को अपने हाथ में लेकर उसे सुरक्षित कर दिया है। प्रतिदिन झण्डाभिवादन के लिए जाने वाली बीसियों टोलियों को देखो, एक के बाद एक आती है, अपना झण्डा आरोपण करती है और बड़ी निष्ठा के साथ उसका अभिवादन करती है। पुलिस लाठी चलाती है, पर वे अपना कार्य समाप्त करके ही हटती हैं। इसके उपरान्त एक के बाद दूसरी टोली का ताँता लग जाता है, पुलिस के ग़रीब सिपाहियों के हाथ लाठी चलाते-चलाते थक जाते हैं। गोरे सार्जेण्ट उनके हाथ से झण्डा छीनने की कोशिश करते हैं। कल तक जो एक पुरुष से बात करने में तीन लड़ लेती थीं, आज वही झण्डे की रक्षा के लिए सिंहनी की तरह गोरे सार्जेण्टों को चीरती हुई भीड़ में घुस जाती हैं। "इन भारतीय स्त्रियों को, जो कल तक पर्दे में रहती थीं, आज क्या हो गया है? इस तरह भयानक जन-समूह में घुस जाने और लाठियों के प्रहार के सामने निधड़क बढ़ने का साहस तो एक अङ्गरेज़ महिला को भी न होगा।" एक अङ्गरेज़ दर्शक कहते हैं—"मुझे आश्चर्य होता है कि कल तक मेरी बच्ची, जिसे पाँच मिनट बात करने पर माथे में दर्द होने लगता था, आज एक दूकान के सामने धूप में घण्टों पिकेटिङ्ग करती खड़ी रहती है, परन्तु माथे में एक शिकन भी नहीं पड़ती।" एक दूसरे गुजराती मित्र कहते हैं—"यही नहीं, उनके आत्म-विश्वास को देख कर तो और आश्चर्य होता है।"

"आप इस तरह जन-समूह में घुस जाती हैं, आपको भय नहीं मालूम होता। यदि कोई गुण्डा आपके व्यक्तित्व पर आक्रमण कर दे तब?"
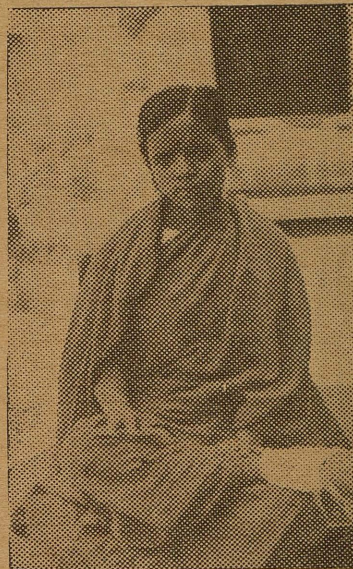
कुमारी गुलाबबाई बाबूराव पारकर

आप १२ वर्षीय बालिका हैं, जिन पर राष्ट्रीय झण्डा न देने के अपराध में बम्बई की पुलिस ने लाठी-प्रहार किया था, जिससे आप बुरी तरह घायल हो गई थीं।

"हम सरकार की सब पाशविक शक्तियों के आगे अपना सर झुकाने को तैयार हैं, परन्तु यदि हमारे धर्म पर तनिक भी आक्रमण होगा तो हमारे हाथ उसकी रक्षा के लिए पर्याप्त सबल हैं। हमें तो विश्वास है कि हमारा पुरुष-समाज ही हम पर ऐसे किए गए अत्याचारों को कभी सहन नहीं करेगा, परन्तु यदि वे नपुंसक हो जायँ तब भी आज हमारा सङ्गठन ऐसा है कि किसी भी गुण्डे

को हमारी ओर बुरी दृष्टि करने का साहस नहीं हो सकता। यदि ऐसा हो तो एक क्षण में हज़ारों रण-चण्डियों का प्रबल प्रहार उसको वहीं यमलोक पहुँचा देगा!"—जलती हुई आँखों से एक महिला ने उत्तर दिया।

"तब अहिंसा का क्या होगा?"

"हमें विश्वास है, ऐसी स्थिति में हमसे कोई भी अहिंसात्मक रहने के लिए न कहेगा और स्वयं महात्मा जी भी हमारे कार्य का समर्थन करेंगे।"

श्री० गणेशराव

आप हुबली के सुप्रसिद्ध चित्रकार हैं, जो हाल ही में लाठी-प्रहार से सख़्त ज़ख़्मी हो गए थे।

"फिर भी क्या आपकी स्त्री-सहज लज्जा और भीरु प्रकृति इस बात का तक़ाज़ा नहीं करती कि आप ऐसे झगड़ों से पृथक् रहें?"

"अब भारतीय स्त्रियाँ छुईमुई नहीं रही हैं। गत आठ-नौ मास ने उन्हें कम से कम पचास वर्ष आगे बढ़ा दिया है। वे अब समझ गई हैं कि वे खेलने और दिखाने की चीज़ नहीं हैं, मानव-सृष्टि की वे भी सबल और आवश्यक अङ्ग हैं।"

ब्रिटिश सत्ता के 'शासन और व्यवस्था' का इतना मख़ौल कभी नहीं हुआ, जितना इन आठ-नौ महीनों में। पुरुषों की क्या, साठ-साठ वर्ष की स्त्रियाँ और दस-दस वर्ष की लड़कियाँ भी अङ्गरेज़ी क़ानून को ठुकराती हुई हर्ष के साथ जेल चली गई हैं। इनमें भी अधिक आश्चर्य उन नवयौवनाओं का है, जिनकी आकांक्षाओं और इच्छाओं का हृदय-सागर अभी लबालब भरा हुआ है, परन्तु उन्हें वे जेल के कर्कश स्वर, कठिन भूमि, तसले और कम्बल में उड़ेलने के लिए आगे बढ़ गई हैं। जेल में कुछ बहिनें तो ऐसी हैं, जिनकी गोदी में एक-एक महीने के बच्चे हैं, और उनकी संख्या थोड़ी नहीं है, जो अपने नन्हें-नन्हें बच्चों को लेकर जेल के सीकचों से टकरा रही हैं।

"यदि आपको अपना भय न सही, तो क्या अपने इस छोटे नन्हें बच्चे का भी ख़याल नहीं है?"

"इस समय तो हमारी परीक्षा है। इस महायज्ञ में हम जितनी ही अधिक बहुमूल्य आहुतियाँ दे सकें, उतना ही अच्छा है और इस निर्बोध बच्चे के लिए जेल-जीवन अन्त में हानिकर ही क्या हो सकता है? क्या वहाँ के कष्ट अभी से उसमें उस शक्ति को जाग्रत नहीं कर देंगे, जो बहुत से सुख में पले हुए लोगों में अन्त तक सुप्त पड़ी रहती है? क्या वहाँ की स्मृतियाँ उसके जीवन में अनेक वह धारा नहीं बहाती रहेंगी, जो एक सच्चे देशभक्त के लिए सदैव आवश्यक है?"—महिला ने तन कर उत्तर दिया।

बम्बई में तो सत्याग्रह-युद्ध का कोई भी ऐसा विभाग नहीं है, जिसमें महिलाओं का मुख्य भाग न हो। बम्बई प्रान्त के 'डिक्टेटर' का पद तो प्रायः महिलाओं ने अपने लिए सुरक्षित सा ही कर लिया है। इसके अतिरिक्त दिल्ली, लखनऊ, इलाहाबाद, कानपुर, कलकत्ता, आगरा आदि नगरों में भी कई मुख्य विभागों की अधिष्ठाता स्त्रियाँ ही हैं। मध्य-प्रदेश की डिक्टेटर भी कई स्त्रियाँ हो चुकी हैं। एक केवल पञ्जाब में ही स्त्रियों ने इतना काम किया है, जिसे देख कर आश्चर्य होता है और सिन्ध की महिलाएँ भी पीछे नहीं रही हैं।

* * *

संयुक्त-प्रान्त उन प्रान्तों में से एक प्रान्त है, जहाँ पर्दे की नाशकारी प्रथा स्त्री-जीवन को जर्जरित कर रही

है और यह स्त्री-शिक्षा में भी बम्बई, बङ्गाल और पञ्जाब से पिछड़ा हुआ है; परन्तु यहाँ की महिलाएँ इस युद्ध में योग देने में किसी प्रान्त से पीछे नहीं रही हैं। प्रान्त के प्रायः सब ही मुख्य नगरों में महिलाओं ने सैकड़ों की संख्या में अपने घरों से निकल कर योग दिया है। जब कितनी ही जगहों से जुलूस रोकने, डण्डे और गोली चलाने की ख़बरें आ रही थीं, तब भी इलाहाबाद, कानपुर, लखनऊ और आगरा में हज़ारों स्त्रियों के जुलूस निकले हैं, ऐसे जुलूस तो भारतवर्ष के इतिहास में बिलकुल एक नई बात है। प्रयाग और कानपुर के दस-दस हज़ार के जुलूस महिलाओं के अथाह उमड़े हुए महासागर के सिवाय क्या थे?

संयुक्त-प्रान्त को विदेशी कपड़े और ब्रिटिश माल के बहिष्कार में पर्याप्त सफलता मिली है, परन्तु इसका अधिकांश श्रेय महिला कार्यकर्ता और देशसेविकाओं को है। मैंने स्वयं देखा है कि जहाँ पुरुष स्वयंसेवकों का पिकेटिङ्ग दिनों और हफ़्तों असफल रहा है, वहाँ महिलाओं ने उस मोर्चे को कुछ ही घण्टों में सफल कर लिया है। स्वयं मुझे कई बार स्वयंसेवकों को देश-सेविकाओं के साथ इसलिए भेजना पड़ा कि वे जाकर उनसे सीखें कि पिकेटिङ्ग किस तरह किया जाता है। इस तरह सीखे हुए स्वयंसेवक अन्य स्वयंसेवकों से अधिक योग्य प्रमाणित हुए हैं। आगरा में विदेशी माल बेचने वाले बज़ाज़ों के ऊपर जब विजय प्राप्त करके मैं अपने कुछ स्वयंसेवकों और स्वयंसेविकाओं को लेकर हाथरस गया तो चौबीस घण्टे के भीतर सौ से ऊपर बज़ाज़ कॉङ्ग्रेस की आज्ञा स्वीकार करने के लिए तैयार हो गए। इन स्त्री-स्वयंसेविकाओं का पिकेटिङ्ग इतना प्रभावशाली था कि कट्टर से कट्टर विरोधी बज़ाज़ों के हृदय हिल गए। तीन दिन में कई लाख रुपए के माल पर मुहर लगा दी गई।

मथुरा का दृश्य तो बड़ा करुणाजनक था और इस बात को अच्छी तरह प्रकट करता था कि इन स्वयंसेविकाओं में अपने कार्य में विश्वास किस तह तक पहुँच चुका है। एक सरकार के पिट्ठू रायबहादुर बज़ाज़ ने इनसे टक्कर लेनी चाही, यह भी अड़ गईं। दो सुकोमल कुमारियों ने प्रतिज्ञा की कि जब तक बज़ाज़ महाशय कॉङ्ग्रेस की आज्ञा न मानेंगे, तब तक वे न तो अन्न ग्रहण करेंगी और न जल और न वहाँ से हटेंगी। जून का महीना, दोपहर का समय, नीचे ज़मीन तप रही थी और ऊपर से सूर्य भगवान अपनी प्रलयङ्करी रश्मियाँ फेंक रहे थे। उनको ऊपर से लगाने के लिए छाता दिया गया, पर उन्होंने उसे फेंक दिया और साथ ही पैर की चट्टियाँ भी उतार दीं। कॉङ्ग्रेस के कार्यकर्ता भी घबड़ा गए, लेखक की भी बात टाल दी गई, तब तो कितने ही लोग और भी उसी तरह तपस्या करने के लिए बैठ गए। घण्टा बीता, दो घण्टे बीते, तीन घण्टे बीते, अन्त में

श्री० नारायण राव आपटे

आप हुबली के सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय कार्यकर्ता हैं, जो हाल ही में लाठी-प्रहार के शिकार हुए हैं, आपकी दशा चिन्ताजनक बतलाई जाती है।

बज़ाज़ महाशय का पाषाण हृदय भी पिघल गया। उन सुकोमल कुमारियों की विजय हुई। ऐसे ही महिलाओं के आत्म-विश्वास और कष्ट-सहन के उदाहरण लेखक को इस आन्दोलन में कितनी ही बार मिले हैं।

आगरा से कई उच्च घरों की महिलाएँ अपने नन्हें-नन्हें बच्चों को लेकर जेल गई हैं। एक बार एक मोर्चा जमा हुआ था, और पुलिस ने उसे चारों ओर से घेर लिया था। गिरफ़्तारियों की भी सम्भावना थी। इस

समय तक कोई स्त्री गिरफ़्तार न हुई थी, इसलिए इस अवसर पर महिलाओं की गिरफ़्तारी की बात सोच कर लेखक का रक्त तीव्र गति से प्रवाहित होने लगा। लेखक ने श्रीमती पार्वती देवी से, जो अब जेल में हैं और जिन्हें इस ज़िले में महिलाओं का सङ्गठन करने का श्रेय प्राप्त है, कहा—"स्थिति भयङ्कर है, गिरफ़्तारियाँ होना अनिवार्य है, यदि तनिक भी कमज़ोरी हो तो आप अपनी देश-सेविकाओं को लेकर हट जायँ।"

यह बात उन्हें बहुत बुरी लगी। उन्होंने कहा—"आप चिन्ता न करें, स्त्रियाँ अब पुरुषों से बहुत आगे
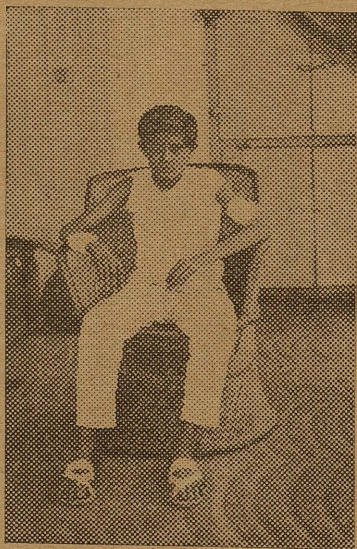
श्री० मनीभाई

आप नदियाद बानर-सेना के १४ वर्षीय नेता हैं, जिन पर राष्ट्रीय झण्डे की मान-रक्षा के अपराध में लाठियों का प्रहार हुआ था।

बढ़ गई हैं। आज एक जत्था क्या, यदि आवश्यकता होगी तो हम दस जत्थे बलिदान कर देंगी।" और इसमें कुछ बनावट नहीं थी। हर एक स्वयंसेविका पहले जत्थे में गिरफ़्तार होने को उत्सुक थी और जो चुन ली जाती थी, उसका मुख-कमल हर्ष से खिल जाता था। ऐसी आठ नवयुवतियाँ चुनी गईं, उन्हें गगनभेदी नाद और जय-जयकार में फूल की मालाएँ पहिनाई गईं। इस घटना के बाद ही महिलाओं की संख्या दुगुनी हो गई।

अभी उस दिन की बात है, आगरा ज़िले में 'लगान-बन्दी' का श्रीगणेश हो रहा था, ज़िले के 'बरोदा' और 'मिलावरी' गाँव बारदोली के आदर्श पर लगानबन्दी का कार्य करने के लिए जा रहे थे, इसलिए वे आगरा के लोगों के तीर्थ-स्थान बन गए थे। २१ दिसम्बर 'बरोदा' की तीर्थ-यात्रा का दिवस रक्खा गया, उस दिन वहाँ गीता-पाठ की पूर्णाहुति दी गई। आगरे के सरकारी कर्मचारियों ने शहर से 'बरोदा' जाने के रास्ते रोक दिए और बरोदा के चारों तरफ़ पुलिस-घुड़सवार, पैदल सिपाही और सार्जेंयट तैनात कर दिए। हज़ारों स्त्री और पुरुषों का जनसमूह बरोदा की ओर उमड़ रहा था। स्त्रियों का भी एक जत्था आगरे से इक्के में चला। इनमें वृद्धाएँ भी थीं और छोटी-छोटी बच्चियाँ भी थीं। शहर से निकलते ही उनके इक्के रोक दिए गए। उनसे कहा गया कि "वापस लौट जाओ, इक्के आगे नहीं जा सकते।"

"यदि तुम अपने ग़ैर-क़ानूनी क़ानून से इक्कों को नहीं जाने देते, तब भी हम रुक नहीं सकतीं—हम पैदल ही बरोदा गाँव जायँगी।"

"आप जानती हैं, यहाँ से बरोदा कितनी दूर है? बारह मील! क्या आप बारह मील पैदल चल सकेंगी?"

"केवल बारह मील! बारह मील क्या, यदि हमारे हृदय में विश्वास है, तो हम एक सौ बीस मील भी चल कर वहाँ पहुँचेंगी।"

महिलाओं का यह जत्था पं० श्रीकृष्णदत्त पालीवाल के कहने पर भी न माना, और बरोदा तक बढ़ता हुआ चला गया। पुलिस के घुड़सवार और गोरे सार्जेंयटों के प्रहार से निरीह जनता का तप्त रक्त रणचण्डी के खप्पर को भर रहा था। पर पुलिस को सब से कठिन था इस महिला-शक्ति की प्रगति को रोकना। उन्होंने लाठी के प्रहारों द्वारा कितनी ही बार स्त्री-शक्ति की परीक्षाएँ लीं।

देश की यह महिला-शक्ति न केवल राजनैतिक समस्याओं को हल करने में समर्थ होगी, अपितु उनकी इस जाग्रति से वे सामाजिक रूढ़ियाँ भी नष्ट हो जायँगी, जो शताब्दियों से हमारे समाज में घुन की तरह लगी हुई हैं। राजनैतिक क्षेत्र में सफलता प्राप्त हो जाने के बाद देश की इस नवीन शक्ति का प्रवाह निश्चय ही सामाजिक क्षेत्र में बाढ़ उत्पन्न कर देगा।

स्वर्गीय अनन्त शास्त्री

[श्री० दीनानाथ जी, एम० ए०]

[भारत के स्त्री-मण्डल को स्वप्न से जगा कर उसमें नई स्फूर्ति और जागृति उत्पन्न करने वाली पण्डिता रमाबाई को कौन शिक्षित मनुष्य नहीं जानता ? भारत के स्त्री-समाज की उन्होंने जो सेवाएँ की हैं, वे किसी से छिपी नहीं हैं। परन्तु पण्डिता रमाबाई के पिता, अनन्त शास्त्री, के सम्बन्ध में, जिन्होंने भारत में स्त्री-शिक्षा की नींव स्थापित की है, लोग बहुत कम जानते हैं। पण्डिता रमाबाई ने भारत के स्त्री-समाज की जो सेवाएँ की हैं, वे उनके पिता की साधनाओं और महत्वाकांक्षाओं ही की प्रतिबिम्ब हैं। पण्डित जी की जीवनी भारत के 'समाज-सुधार, के इतिहास का एक उज्ज्वल अध्याय होगी। —सं० 'चाँद']

उन्नीसवीं शताब्दी का प्रारम्भिक काल सामाजिक सुधार की दृष्टि से कोई अच्छा काल नहीं कहा जा सकता। हिन्दू-समाज उस समय रूढ़ि और अन्धविश्वास के भयङ्कर दलदल में फँसी हुई थी; उसके जाल में से निकलने का उसे कोई चारा न था। अँगूठे से लेकर चोटी तक नस-नस में रूढ़ि की ग़ुलामी का रक्त दौरा कर रहा था। समाज की रूढ़ि, जो आज्ञा दे, उसे मनुष्य को झक मार कर स्वीकार करना पड़ता था। जिसने ज़रा भी चूँ-चपड़ की कि समाज उसे बिना रसातल पहुँचाए चैन न लेती थी। जब पुरुषों का यह हाल था, तो स्त्रियों की गिनती ही कहाँ थी ? जीवन भर 'अज्ञानान्धकार में सड़ना उनके सौभाग्य का एक चिह्न माना जाता था। सामाजिक रूढ़ियों के विरुद्ध सिर उठाना तो मौत को आमन्त्रित करने से कुछ कम न था। मतलब यह कि स्त्री-पुरुष, छोटे-बड़े, राजा-रईस, ऊँच-नीच सभी रूढ़ि के क्रूर शासन में पिसे जा रहे थे।

समाज का यह आतङ्क-पूर्ण शासन इसी प्रकार चला जा रहा था; परन्तु प्रकृति किसी पदार्थ को एक सा नहीं देख सकती। परिवर्तन उसका मुख्य नियम है। इसी नियम के अनुसार जब मरहठों के शासन-काल में अन्तिम पेशवा बाजीराव द्वितीय गद्दी पर बैठे, तब स्त्री-शिक्षा की बात उठा कर उन्होंने समाज में क्रान्ति मचा दी। समाज रूढ़ियों का घात न सह सकता था, परन्तु पेशवा की अतुल शक्ति के सामने वह थक कर हार गया। पेशवा स्वयं ब्राह्मण था और आध्यात्मिक रङ्ग में रँगा होने के कारण वह अपनी युवती स्त्री वाराणसी को भी वेद-वेदान्त, स्मृति और पुराणों की शिक्षा द्वारा उसी रङ्ग में रँगना चाहता था। समाज की त्यौरी एकदम बदली हुई थी, परन्तु उस वीर को इसकी परवाह न थी। उसने उस समय के संस्कृत के सुप्रसिद्ध विद्वान रामचन्द्र शास्त्री को अपनी स्त्री को देववाणी संस्कृत की शिक्षा देने के लिए नियुक्त कर दिया।

रामचन्द्र शास्त्री पेशवा की स्त्री को शिक्षा देने नित्य-प्रति रनिवास में जाने लगे। प्रायः वे अपने तीक्ष्ण बुद्धि और प्रतिभा-सम्पन्न दुलारे शिष्य अनन्त को भी अपने साथ ले जाते थे। वहाँ वे महारानी के मुँह से उच्चरित संस्कृत-श्लोकों को बड़े ध्यान से सुना करते थे। युवती और सुन्दरी रानी के मधुर कण्ठ से ललित श्लोकों को सुन कर उनके हृदय में सदैव यही भावना उठा करती थी कि यदि 'मेरी स्त्री भी महारानी जैसे मधुर कण्ठ से संस्कृत के श्लोक उच्चारण कर सकती, तो मैं कितना भाग्यवान होता ?"

अनन्त का विवाह दस वर्ष की आयु में हो चुका था और एक निरक्षर गुड़िया उनके गले में बँध गई थी। स्त्री उनकी माता के साथ मङ्गलोर ज़िले के एक क़स्बे में रहती थी और अनन्त मरहठों की राजधानी में अपनी ज्ञान-पिपासा बुझा रहे थे।

अनन्त की माँ लगातार तेरह वर्षों तक अपनी कुटिया के आँगन में खड़ी होकर बच्चे की बाट जोहती रही, परन्तु उस बीच में उसकी अभिलाषा एक बार भी पूरी नहीं हुई। अन्त में तेरह वर्षों के उपरान्त अनन्त,

अनन्त ज्ञान-भण्डार लेकर गुरु के पास से लौटा। उस समय वह पूरा तेईस वर्ष का युवा हो गया था, उसके मस्तिष्क पर ज्ञान और विद्या की रेखाएँ थीं और आँखों में उसकी ज्योति की झलक। लोगों ने उनका हृदय से स्वागत किया और शास्त्री की उपाधि दी। उनकी प्रखर बुद्धि और अतुल ज्ञान-भण्डार ने राजा-रईस, छोटे-बड़े—सभी में उनकी धाक जमा दी और सभी उनके स्वागत-सम्मान में एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा करने लगे।

पण्डिता रमाबाई

अपने पुत्र के इस सम्मान से माता आनन्द से झूम उठी। उनकी माता और स्त्री अपने घर में धन की अनन्त-राशि का स्वप्न देखने लगीं, परन्तु जो आनन्द उनके घर आने से उनकी माता और स्त्री को हुआ था, वह उन्हें कहाँ नसीब था? उसके हृदय में जो आग लग रही थी संसार के सुख उसे बुझा नहीं सकते थे। अपनी स्त्री को संस्कृत शिक्षा देने की भावना उनके बचपन में ही जड़ पकड़ चुकी थी, युवा होने पर वह लहलहा कर वृक्ष हो गई। अपनी इस आकांक्षा को वे कभी न कुचल सके।

उन्होंने अपनी स्त्री को शिक्षा देने का प्रयत्न किया, परन्तु उनकी यह इच्छा पूरी न हो सकी। समाज ने रूढ़ियों का पहाड़ उनके और उनकी स्त्री के बीच में खड़ा कर दिया। साथ ही उनकी स्त्री ने भी अपनी अनिच्छा प्रगट कर उन्हें बिल्कुल हताश कर दिया। अपने विद्यार्थी-जीवन में भारत के स्त्री-मण्डल की उन्नति के बारे में वे जो महल तैयार किया करते थे, उस पर वज्र गिर पड़ा। जीवन उन्हें अब भार-रूप मालूम पड़ने लगा।

परन्तु ईश्वर ने तो उन्हें समाज के कल्याण के लिए भेजा था। उनके रास्ते में यदि कोई रोड़ा रह जाता, तो उनके उद्देश्य में सफलता कैसे प्राप्त होती। थोड़े दिनों बाद उनकी स्त्री का देहान्त हो गया और उसके साथ ही उनका मार्ग भी निष्कण्टक हो गया। उसके कुछ दिनों बाद जब एक दिन अनन्त शास्त्री अपने नित्य नियम के अनुसार पवित्र गोदावरी में स्नान करने गए, तब उनको किनारे पर एक ब्राह्मण और उनकी नौ वर्षीय कन्या से भेंट हो गई। शास्त्री जी लड़की के रूप-रङ्ग और उच्च ललाट से समझ गए कि वह एक होनहार लड़की है। वृद्ध महाशय भी उनके डील-डौल, आचार-विचार और नम्र व्यवहार से उन पर मुग्ध हुए बिना न रह सके। विवाह के लिए इससे अधिक और क्या चाहिए? इसके दूसरे ही दिन वे पुनः विवाह-बन्धन में बँध गए। उन्होंने अपनी इस नई पत्नी का नाम लक्ष्मी रक्खा।

विवाह के बाद ही उन्होंने अपनी सुन्दर बाल-पत्नी को संस्कृत पढ़ाने की इच्छा समाज पर प्रकट कर दी। समाज की आँखों में वे इससे अधिक अधर्म कुछ न कर सकते थे। उनके सगे-सम्बन्धी, मुहल्ले और शहर वालों सभी ने उनकी इस इच्छा के विरुद्ध घोर आन्दोलन किया। शास्त्रों की दुहाई देकर उन्होंने उनके इस प्रयत्न को कुचलने में कोई कसर उठा न रक्खी। सभी फुस-फुस करते थे, "एक स्त्री को! और संस्कृत शिक्षा!" "शास्त्रों की आज्ञा उल्लङ्घन करने की न जाने दैव क्या सज़ा

देगा ?" समाज ने उनके इस कार्य को "पापपूर्ण, मिथ्या और धर्म-विरुद्ध" बतला कर अज्ञान और रूढ़ि की सीमा का अन्त कर दिया था। अनन्त शास्त्री हताश हो गए। वे विद्वान थे, और महत्वाकांक्षी भी; परन्तु अभी तक अपनी निर्बलताओं पर पूर्णरूप से विजय प्राप्त न कर सके थे। अन्त में इस विरोध से बचने के लिए उन्होंने अपनी स्त्री के साथ प्रवास में निकल जाने का निश्चय किया; और अपने घर से सौ मील की दूरी पर जन-समूह के कलरव से परे एक जङ्गल में झोपड़ी बना कर रहने लगे। जङ्गली पशु-पक्षियों के रूप में इस युगल दम्पति को जो सहचर मिले, वैसे उन्हें शिक्षित और सभ्य कहलाने वाले समाज में न मिल सके थे। उन्हें वहाँ स्त्री-शिक्षा के अधिकारों के विरुद्ध कोई शिकायत न थी। अब अनन्त शास्त्री को उपयुक्त वायु-मण्डल मिल गया। जो शान्ति उन्हें अपने जङ्गली सहचरों के बीच प्राप्त हुई, वह उन्हें अपने हिन्दू-समाज में कभी प्राप्त न हो सकी थी।

अनन्त शास्त्री ने अपनी इस नई कुटिया का निर्माण पश्चिमी घाट की गङ्गमूल वनस्थली में किया था और इस रम्य स्थान में उनकी महत्वाकांक्षाओं का घात करने वाले जन-समाज की पहुँच न थी। अस्तु, उन्होंने अपनी सारी शक्तियाँ समेट कर लक्ष्मीबाई को विदुषी बनाने में लगा दीं। लक्ष्मीबाई भी प्रतिभा सम्पन्न महिला थीं। जो कुछ पतिदेव उन्हें बता देते, उसे उनका मस्तिष्क झट ग्रहण कर लेता था। अपनी बुद्धि की इस तीक्ष्णता के कारण धीरे-धीरे वे संस्कृत-साहित्य के हर एक विभाग में निपुण हो गईं। अनन्त शास्त्री इस समय अपनी इच्छा हरी-भरी देख अपने हृदय में फूले न समाते थे।

अपनी शिक्षा के उपरान्त अनन्त शास्त्री ने जो थोड़े दिनों तक सांसारिक जीवन अपने गाँव में व्यतीत किया था, उसमें उनकी प्रतिभा की ऐसी धाक जम गई थी कि वे अधिक दिनों तक जङ्गल में नीरव और शान्त जीवन व्यतीत न कर सके। सरस्वती के उपासकों ने उन्हें कुछ वर्षों बाद ढूँढ़ निकाला और वहीं सेचारों ओर अपने हृदय की आकांक्षाएँ पूरी करने के लिए एकत्र होने लगे। दिन प्रतिदिन उनके शिष्यों की यह संख्या बढ़ती ही गई और उनकी नीरव कुटी जन-कलरव से परिपूर्ण हो गई, परन्तु इस कलरव में विरोध और अज्ञान की गन्ध न थी। वहाँ तो सभी सरस्वती की आराधना के लिए एकत्र हुए थे। थोड़े

बालिका मनोरमा

ही दिनों में उनकी यह शान्ति-कुटीर विद्या-मन्दिर में परिणत हो गई।

अनन्त शास्त्री शिक्षा के प्राचीन आदर्श के उपासक थे और उसी आदर्श के अनुसार वे अपने शिष्यों को बिना शुल्क आदि के शिक्षा दिया करते थे। उनकी

आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए उनके पास उपयुक्त धन न था, परन्तु धन का अभाव उन्हें अपने आदर्श से च्युत न कर सकता था। उनकी स्त्री पण्डिता लक्ष्मीबाई ने उन्हें इस चिन्ता से दूर करने में जो चतुराई दिखाई, वह अद्वितीय थी। गृहस्थी के प्रबन्ध और संस्था के सारे ख़र्च का बोझ सँभालना कोई आसान कार्य न था। थोड़ी सी आमदनी ही में वे सारे ख़र्च का प्रबन्ध इस प्रकार कर लेती थीं कि किसी को कोई शिकायत न रह पाती थी। इसके साथ ही वे अपने श्रद्धेय पति का शिक्षा-कार्य में भी हाथ बटाती थीं। संस्कृत के कई गहन विषयों की शिक्षा का भार उन्होंने अपने ऊपर ले रक्खा था। उस काल में एक स्त्री द्वारा पुरुषों की शिक्षा होना कुछ कम आश्चर्य की बात न थी।

इस प्रवास में भी अनन्त शास्त्री का कौटुम्बिक जीवन अत्यन्त सुखद रहा। उनके तीन बच्चे—एक पुत्र और दो पुत्रियाँ—उनके इस नीरव जीवन में आनन्द के स्रोत थे। उन्होंने अपने पुत्र और बड़ी पुत्री को स्वयं संस्कृत-साहित्य की उच्च शिक्षा दी थी।

उनकी छोटी पुत्री रमाबाई का जन्म सन् १८५८ में हुआ था। उस समय अनन्त शास्त्री वृद्ध हो चुके थे और निर्बलता के कारण अधिक कार्य करने में असमर्थ थे इसलिए छोटी पुत्री का शिक्षा-भार उनकी स्त्री लक्ष्मीबाई पर ही पड़ा। उन्होंने भी अपने पति की निर्धनता और आपत्तियों की कुछ परवाह न कर लगातार सात वर्षों तक रमाबाई को शिक्षा दी। इन सात वर्षों की शिक्षा का जो प्रभाव रमाबाई पर पड़ा, उन्हीं के शब्दों में "वही उनके जीवन की ज्योति और पथ-प्रदर्शक था।" लक्ष्मीबाई का आदर्श रमाबाई को "सरस्वती का अव-

माधवलाल ऊधवलाल, १३ वर्ष का बालक, जो 'स्वतन्त्रता-दिवस' के अवसर पर पुलिस की गोली का शिकार हुआ।
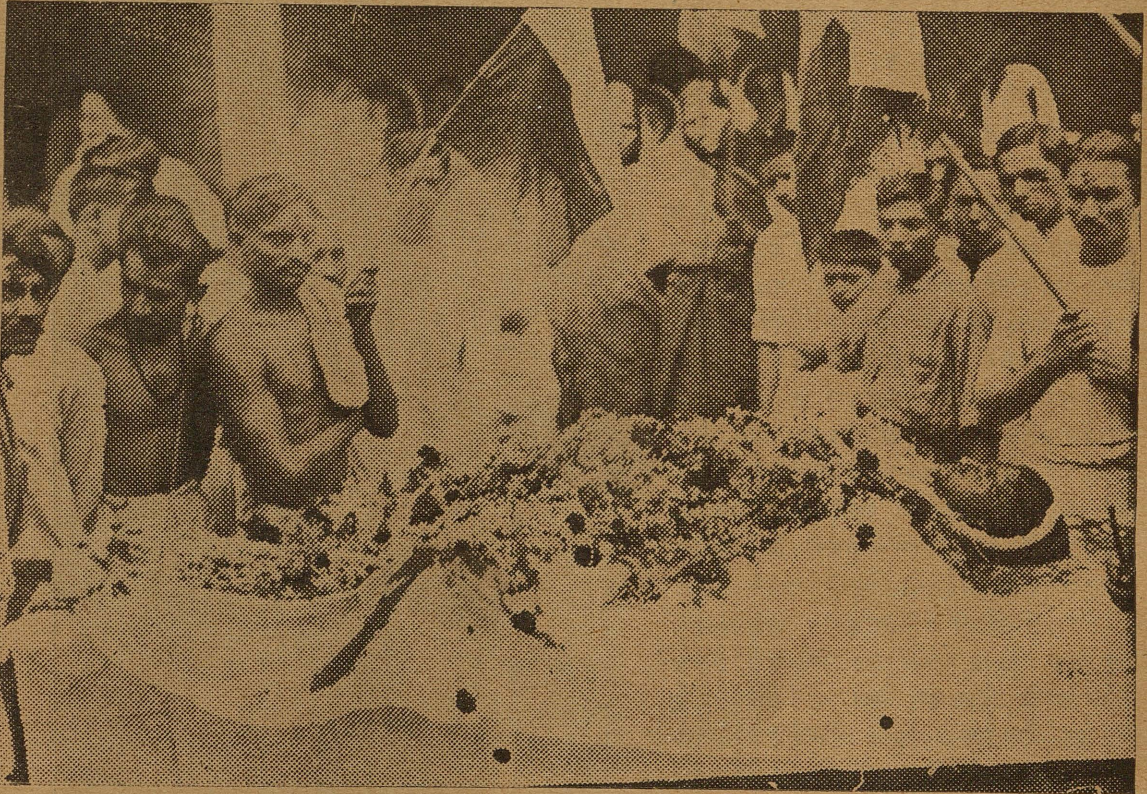
तार" बना देना था, और उन्होंने अपने जीवन में वह आदर्श चरितार्थ करके दिखला भी दिया।

इस तेरह वर्ष के प्रवास और उनके आत्म-त्याग अनन्त शास्त्री के सामने एक जटिल आर्थिक समस्या उपस्थित कर दी थी; और उसे सुलझाने के लिए उन्हें लाचार होकर अपनी जङ्गल की नीरव कुटिया का परित्याग कर एक बार फिर गाँव और शहरों के कोलाहलपूर्ण वातावरण में आना पड़ा। परन्तु समाज के इस पापी का अब लोगों की आँखों में कोई सम्मान न था। उसका यह दारिद्र्य समाज-सुधार का उपयुक्त प्रायश्चित्त न था। अस्तु, उन्होंने अपनी स्त्री और बच्चों के साथ भारत के कोने-कोने की, तीर्थ-स्थानों की और शहरों की ख़ाक छान डाली, पर समाज ने उन्हें कहीं स्थान न दिया। बहुत नाक रगड़ी पर कहीं जीविका का वे कुछ उपाय न कर सके। वे जहाँ-जहाँ गए, वहीं उनकी भर्त्सना हुई, लज्जित किए गए और गालियाँ और धमकियाँ देकर उनका अपमान किया गया। समाज की आँखों में वे "रूढ़ियों के विरुद्ध बग़ावत फैलाने वाले थे, अपनी स्त्री को संस्कृत की शिक्षा देकर उन्होंने अपने सिर पर बड़ा भारी बोझ लाद लिया था और सोलह वर्ष तक अपनी पुत्री को कुँवारी रख कर उन्होंने अपने सगे-सम्बन्धियों और हिन्दू-समाज पर कलङ्क का टीका लगा दिया था।" यह थी १९वीं शताब्दी के हिन्दू-समाज की सभ्यता और उसका धर्म-प्रेम! वह उस समय पतन के गर्त में गिरा हुआ था; और उसे ऊपर उठाने का भार अनन्त शास्त्री ने अपने ऊपर लिया था। वे अपने कार्य की कठिनाइयों को अच्छी तरह जानते थे और इसीलिए वे ईश्वरेच्छा और उसके न्याय पर विश्वास कर चुपचाप समाज के सब अत्याचार सहते जाते थे। अन्त में उन्होंने सुधार की नींव दृढ़ कर उसके ऊपर ढाँचा तैयार करने का भार अपनी प्यारी पुत्री रमाबाई के सुकुमार कन्धों पर छोड़ कर संन्यास-व्रत धारण कर लिया। जैसे ही उन्होंने भगवा वस्त्र धारण किए, वैसे ही उनकी तपस्या की मात्रा दिन पर दिन बढ़ती चली गई; और शीघ्र ही उनका प्राणान्त हो गया। उनकी स्त्री की भी मृत्यु इसी प्रकार हुई।

अपने पिता की वृद्धावस्था के कारण स्त्री-शिक्षा की जिस मशाल की ज्योति धीमी पड़ रही थी, उसे रमाबाई ने कार्य-क्षेत्र में कूद कर फिर प्रज्वलित कर दिया। २८ वर्ष की इस युवती ने अपनी प्रतिभा से कलकत्ते के विद्वानों को जैसे आश्चर्य में डाला था, वैसे उस काल में कोई न डाल सका था।
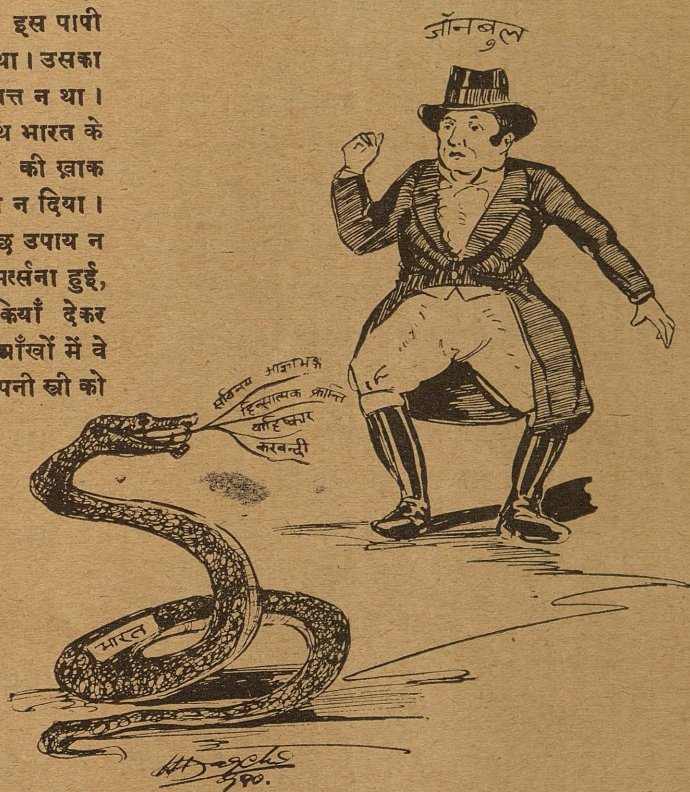
जॉनबुल की परेशानी

प्रसिद्ध-प्रसिद्ध विद्वानों की भरी सभा में जब पण्डिता रमाबाई की परीक्षा हुई, तब उनके उत्तर सुन सब के सब आश्चर्य से दाँतों-तले अँगुली दबाते थे। उनकी इस विद्वत्ता पर उन्हें 'सरस्वती' की उपाधि भी प्रदान की गई।

आश्चर्य

[कविवर पं० रामचरित जी उपाध्याय]

(१)

भुलावे में तुमको भुलाते रहे,
लगा थपकियाँ हम सुलाते रहे।
उचट नींद तो भी तुम्हारी गई,
उधर नीति सारी हमारी गई।

(२)

निहत्था उठा हाथ दाँया अभी—
तुम्हारा बँधा हाथ बाँया अभी।
तदपि ताण्डवी नृत्य क्यों कर रहे ?
जिसे देख हम चित्त में डर रहे॥

(३)

तुम्हे पींजड़े में फँसाने लगे,
स्वयं आ उसे तुम बसाने लगे।
पराधीनता को पराधीन हो,
मिटाने लगे धन्य तल्लीन हो !!

(४)

शान्ति को चाहते शान्त के वेश में,
क्लेश देते नहीं हो पड़े क्लेश में।
पर हमें भूत से भी भयङ्कर हुए,
काल-किङ्कर हुए तुम त्तयङ्कर हुए॥

(५)

था उजाला जहाँ है अँधेरा वहाँ,
यामिनी थी जहाँ है सवेरा वहाँ।
हम जहाँ थे वहीं तुम खड़े हो गए,
हम गड़े जा रहे तुम कड़े हो गए॥

(६)

क्या प्रलय का समय आ गया पास में ?
क्यों पड़ा विश्व है घोर संत्रास में ?
धुकधुकी क्यों हमारी रुकी जा रही ?
गर्व-ग्रीवा हमारी झुकी जा रही॥

(७)

था भरोसा हमें भेद की नीति का,
कूट की नीति का छद्म की प्रीति का।
तीव्र त्योरी तुम्हारी चढ़ी जा रही,
आधि मन में हमारे बढ़ी जा रही॥

(८)

क्या हुआ हाय होगा अभी और क्या ?
है ठिकाना कहीं और ही ठौर क्या ?
आँख के सामने है अँधेरा हुआ,
साथ क्यों हा तुम्हारे बसेरा हुआ ?

(९)

स्वाद जैसा मिला था निगलते तुम्हें,
प्राण त्यों जा रहा है उगलते तुम्हें।
पेट में अब हमारे पचोगे न क्या ?
अब हमारे इशारे नचोगे न क्या ?
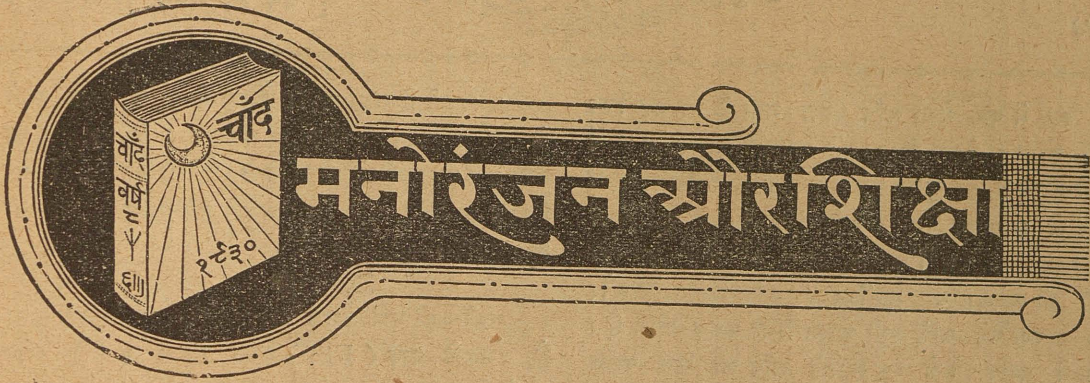
विचित्र प्रतियोगिता

पाश्चात्य देशों में विचित्र प्रतियोगिताएँ होती हैं। वहाँ सुन्दरता की, मूँछ बढ़ाने की, बाल बढ़ाने की प्रतियोगिताओं का जैसा प्रचार है, वैसा ही शारीरिक बल की प्रतियोगिताओं का भी है। थोड़े समय पहले लकड़ी चीरने की प्रतियोगिता हुई थी, उसमें नौ मनुष्यों ने भाग लिया था, उन्हें ४० इञ्च मोटी लकड़ी चीरने को मिली थी। नौ प्रतिद्वन्द्वी इशारा पाते ही आरा चलाने लगे। एमिल गेचमैन नामक व्यक्ति ने उसे सिर्फ़ ८० मिनट, २९ सेकेण्ड में काट डाला और उसे ही पुरस्कार भी मिला।

❀

कुछ विचित्र प्राणी

कावेर्थ वेल्स नामक एक अनुसन्धानकारी ने मलाया प्रायद्वीप में कुछ विचित्र प्राणियों का पता लगाया है। आपने वहाँ ऐसी मछलियाँ देखीं, जो पेड़ों पर चढ़ जाती हैं। वहाँ ऐसे बन्दर हैं, जो प्रत्येक बार भोजन करने के बाद मुँह धोते हैं। कुछ चिड़ियाँ ऐसी हैं, जो अपना सिर नीचा कर डालों पर सोती हैं। वहाँ ऐसी मछली भी पाई जाती हैं, जो सचमुच सोती हैं। इनके अलावा, वहाँ एक प्रकार का भालू पाया जाता है, जो सिर्फ़ पन्द्रह इञ्च ऊँचा होता है, और इससे आधा ऊँचा हिरन पाया जाता है। इस हिरन को मनुष्य अपने कोट के आस्तीन में छिपा सकता है।

❀

खोपड़ी का दहेज

सुमात्रा द्वीप में अब भी कुछ जङ्गलीपन बना हुआ है। वहाँ आदमी की खोपड़ी में लोग शराब भर कर पिया करते थे, और यह रिवाज अब तक चला आता है। ब्याह में दहेज के रूप में कन्या को मनुष्य की खोपड़ी दी जाती है। इसके बिना कन्या प्रसन्न नहीं होती। यूरोप में जैसे ब्याह के पहले वर कन्या को एक अँगूठी देता है, वैसे ही सुमात्रा में मनुष्य की खोपड़ी दी जाती है। वहाँ नया मकान बनाते समय भी लोग नींव में मनुष्य की खोपड़ी डालते हैं। इसे लोग शुभ समझते हैं।

❀

विचित्र देश

आॅस्ट्रेलिया के उत्तर-पूर्व में एक द्वीप है। वहाँ के लोग मनुष्य का मांस खाते हैं। बाँह की हड्डी को गहने की जगह पहनते हैं और गले में हड्डियों की माला पहनते हैं। यहाँ बड़े आदमियों की पहचान है—हड्डियों की माला।

इस देश में ब्याह के पहले, कन्या को एक पिंजड़े में बन्द कर देते हैं। पिंजड़ा खजूर, ताड़ या नारियल के पत्तों का बना हुआ रहता है। गाँव की बूढ़ी औरतें इस पिंजड़े पर पहरा देती हैं। दिन में सिर्फ़ एक बार लड़की पिंजड़े के बाहर निकलने पाती है।

❀

साधारण मनुष्य का हृदय ५ इञ्च लम्बा, ३½ इञ्च चौड़ा और २½ इञ्च मोटा होता है।

❀

एक वर्ष में, एक शुतुरमुर्ग़ १½ सेर पङ्ख अपने शरीर से गिरा देता है।

रूस में एक ऐसा साँप पाया गया है जो ज़हरीला नहीं होता। देखने में इसकी आकृति साधारण सर्प जैसी होती है, परन्तु यह इतना बड़ा होता है कि मामूली ज़हरीले साँप को निगल जाता है। उसकी क्षुधा-पूर्ति एक बार में कई सर्पों को खाकर होती है। ज़हरीले सर्पों की अपेक्षा यह फ़ुर्तीला भी अधिक होता है और इस कारण यह उन्हें बड़ी आसानी से पकड़ लेता है। पकड़ते समय पहिले वह विषैले साँप का फन पकड़ लेता है और इसके बाद वह उसे निगल जाता है। रूस में इन साँपों को पालने का प्रयत्न किया जा रहा है।

❀

जीवनशास्त्र के विद्वानों ने लगभग पचास हज़ार भिन्न-भिन्न प्रकार के कीटों (Insects) का पता लगाया है, जिनमें से ६० से अधिक प्रकार के कीटों के विषय में यह सिद्ध हो चुका है कि वह बीमारी फैलाते हैं।

❀

युकलिप्टस का तेल सब प्रकार की वस्तुओं पर से चिकनाई के दाग़ छुड़ा लेता है और किसी प्रकार की हानि उस वस्तु को नहीं पहुँचाता।

❀

लङ्का में बचीकलोश्रा नामक नगर के समीप एक झील है। इस झील के विषय में प्रसिद्ध है कि इसमें की मछलियाँ एक विचित्र प्रकार का शब्द करती हैं, जिसे लोग उनका गाना कहते हैं। इसके विषय में विद्वानों का मत है कि यह शब्द मछलियाँ नहीं करती हैं, बल्कि सीपों के खुलने और बन्द होने से गाने के सामान आवाज़ निकलती है।

❀

एक विद्वान का कथन है कि एक दीमक (white ant) एक महीने तक प्रति दिन अस्सी हज़ार अण्डे देती है। यदि यह सब अण्डे बच्चे पैदा करें और प्रत्येक बच्चा जीवित रहे, तो कुछ ही वर्षों में संसार भर में कोई भी वस्तु ऐसी शेष न रहे, जिसको दीमक न चाट जावे।

❀

जिस बर्तन में दूध रक्खा जाता हो उसे कम से कम हफ़्ते में एक बार नमक से रगड़ कर अवश्य साफ़ कर लेना चाहिए। ऐसा करने से उसमें अधिक देर तक दूध रक्खा रहने पर कम ख़राब होता है।

ताम चीनी तथा चीनी मिट्टी के बर्तन साफ़ करने के लिए तारपीन का तेल अति उत्तम है, तारपीन का तेल उन वस्तुओं को घोल लेता है, जो इन बर्तनों पर चिपक जाती हैं, और जो उबलते हुए पानी से भी नहीं छुट सकतीं।

❀

कहीं-कहीं एक अद्भुत प्रकार की मछली पाई जाती है, जिसके पङ्ख (Fin) नीले रङ्ग के होते हैं और उनके किनारे सफ़ेद होते हैं। इस मछली की पूँछ लाल होती है। यह मछलियाँ अधिकतर गरम देशों के समीप पाई जाती हैं। इनमें नर की पूँछ तथा पङ्खों का रङ्ग थोड़ी-थोड़ी देर बाद अधिक लाल और नीला होता रहता है। मादा के पङ्ख तथा पूँछ का रङ्ग सदा एक सा रहता है। नर का रङ्ग मादा के समीप आने पर उसके उत्तेजित हो जाने के कारण बहुत जल्द-जल्द बदलता है। इनमें से नर मछली पानी के वृक्षों की पत्तियों के नीचे हवा के बुलबुलों को एक लसदार पदार्थ से मढ़ कर एक घोंसला सा बना लेती है। इस घोंसले में हवा के बुलबुले बहुत समीप-समीप होते हैं और पानी के ऊपर उभरे हुए दिखाई देते हैं। मादा इस घोंसले के नीचे आकर अण्डे देती है। अण्डे पानी से हलके होने के कारण ऊपर उठते हैं और अपने आप ही घोंसले के अन्दर आ जाते हैं। यदि कोई अण्डा घोंसले में न पहुँचे तो नर उसको ढूँढ कर मुँह में दबा कर घोंसले के भीतर रख आता है। इसके बाद नर ही को अण्डों की रक्षा तथा उनका पालन-पोषण करना पड़ता है। मादा अपने अण्डों को खा जाती है। इस कारण नर उसे उनके पास नहीं आने देता। अण्डों के पास आते ही मादा को वह दूर भगा आता है और कभी-कभी तो अण्डों की रक्षा के लिए वह मादा को मार भी डालता है।

❀

जिन शीशे के बर्तनों तथा अन्य वस्तुओं पर से मैल न छूटता हो, उन्हें एक बड़े शीशे के बर्तन में, जिसमें पोटेशियम हाईक्रोमेट पानी में घोल रखा हो, और कुछ तेज़ाब भी मिला हो (हाइड्रोक्लोरिक एसिड उत्तम है) रख देने से सब मैल छूट जाता है और फिर पानी से धोने पर ज़रा भी मैल नहीं रहता।
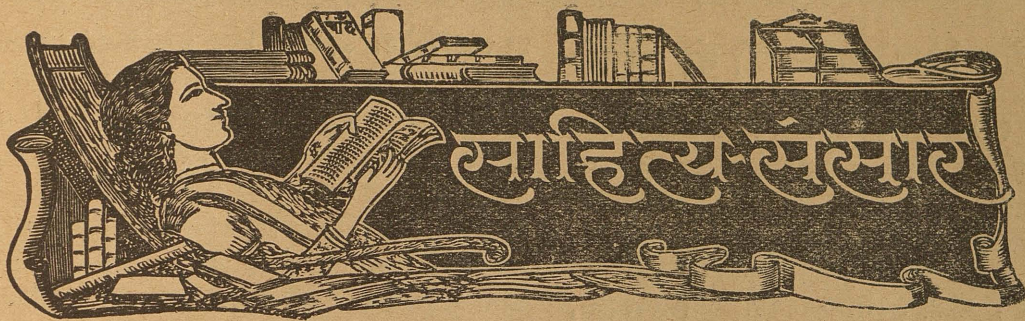
[श्री० अवध उपाध्याय]

प्रपञ्च परिचय—लेखक प्रोफ़ेसर श्री० विश्वेश्वर, सिद्धान्त-शिरोमणि। प्रकाशक हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई। मिलने का पता—अध्यक्ष सरस्वती-सदन, गुरुकुल वृन्दावन; पृष्ठ-संख्या २३२, मूल्य १।।), सजिल्द का २) रु०।

यह दर्शन-शास्त्र पर लिखा हुआ एक ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में संसार की सब बातों के समझाने का प्रयत्न किया गया है। यह पुस्तक तीन भागों में विभक्त कर दी गई है। पहले भाग में प्रकृति का, दूसरे में चेतन का और तीसरे में ईश्वर के निरूपण करने का प्रयत्न किया गया है। सब पुस्तक के पढ़ जाने पर यह धारणा उत्पन्न होती है कि लेखक ने बड़ी योग्यता से इस ग्रन्थ को लिखा है और दार्शनिक विषयों की बड़ी अच्छी समालोचना की है। सब से अच्छी बात इस पुस्तक में यह है कि लेखक के लिखने का ढङ्ग बड़ा रोचक है और जगह-जगह पर कवियों की कविताएँ उद्धृत की गई हैं। जिनसे इसकी रोचकता और भी अधिक हो गई है। एक दूसरी विशेषता इस पुस्तक की और है, जिससे इसका महत्व और भी अधिक हो गया है। वह विशेषता पूर्व और पश्चिम के विचारों का उचित संयोग है। प्रायः यह देखा जाता है कि आजकल के लेखक या तो पूर्व के दर्शनों ही के ज्ञाता होते हैं या पश्चिम ही के। इस कारण वे अपने लेखों में दोनों के विचारों का सामञ्जस्य उचित रीति से नहीं कर पाते। इस दोष से यह पुस्तक सर्वथा मुक्त है। इसमें पूर्व तथा पश्चिम दोनों के मतों का अच्छा समावेश है। पुस्तक के प्रारम्भ में लेखक ने लिखा है कि दर्शन-शास्त्र, मानव-समाज का नेता या पथ-प्रदर्शक है। इस सिद्धान्त के प्रतिपादन करने के विचार से लेखक ने बहुत कुछ लिखा है और इस बात के सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि दृश्य जगत क्या है? इसके साथ हमारा क्या सम्बन्ध है? विश्व का स्वरूप क्या है? और मनुष्य का उसमें क्या स्थान है? इन सब बातों के निश्चित हो जाने पर मानव-समाज की वास्तविक व्यवस्था प्रारम्भ होती है। इसमें लेश मात्र भी सन्देह नहीं है कि पाश्चात्य देश पर दर्शन का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है और दर्शन के परिवर्तन के साथ ही साथ, पाश्चात्य देश के सामाजिक नियमों में भी परिवर्तन हो जाता है। परन्तु यही बात भारत के लिए सत्य नहीं है। यहाँ पर एक दर्शन आते हैं और दूसरे जाते हैं, परन्तु समाज में उनका विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। कम से कम दर्शन के परिवर्तनों के साथ-साथ सामाजिक परिवर्तन यहाँ अभी तक नहीं हुए हैं। अर्जुन लड़ाई में गए हैं! क्यों गए हैं? इसीलिए कि यह संसार मिथ्या है, इसमें कोई किसी को मारता नहीं।

इस पुस्तक की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। परन्तु इस पुस्तक में बहुत सी ऐसी बातें हैं, जिनसे मैं सहमत नहीं हो सकता। तथापि इस बात को स्वीकार करना पड़ता है कि ग्रन्थकार ने इस विषय में पथ-दर्शक का काम किया है। अन्त में मैं ग्रन्थकार से प्रार्थना करूँगा, कि दूसरे संस्करण में, वे इसे पूर्ण और गम्भीर बनाने का प्रयत्न अवश्य करें। कहीं-कहीं पर यह पुस्तक अपूर्ण और कहीं-कहीं पर गम्भीरता-रहित मालूम होती है।

*　　*　　*

बलदेव मित्र-मण्डल की दो पुस्तकें

(१) मगन रहु चोला—लेखक श्रीयुत अन्नपूर्णानन्द; प्रकाशक बलदेव मित्र-मण्डल जालिपादेवी, काशी।

(२) मेरी हजामत—लेखक अन्नपूर्णानन्द, प्रकाशक, बलदेव मित्र-मण्डल जालिपादेवी, काशी। पृष्ठ-संख्या ११२; मूल्य ॥=) छपाई और काग़ज़ सुन्दर।

प्रत्येक भाषा में सिद्ध-हस्त लेखकों की सदा कमी बनी रहती है। यदि और रस के सिद्ध-हस्त लेखक मिल भी जाते हैं तो हास्यरस के नहीं मिलते। इसी कारण से हिन्दी-भाषा में भी सिद्ध-हस्त हास्यरस के लेखकों की बड़ी कमी थी। इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दी के कुछ लेखक अपनी समझ में हँसी सम्बन्धी पुस्तकें लिखने लगे हैं और लिखते जा रहे हैं। इनमें कुछ तो वास्तव में अपने ऐसे लेखों से समाज में केवल कुरुचि उत्पन्न करते हैं और कुछ-कुछ समाज में गन्दी बातें फैला रहे हैं। वास्तव में यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि श्रीयुत अन्नपूर्णानन्द की उक्त दोनों पुस्तकें इन दोषों से सर्वथा मुक्त हैं। इन दोनों पुस्तकों में सदाचार के नियमों का ख़ूब पालन किया गया है और ये दोनों पुस्तकें वास्तव में हिन्दी-साहित्य में अच्छा स्थान पाएँगी और किसी-किसी अंश में पथ-दर्शक का काम करेंगी। मैं निस्सङ्कोच रूप से यह कह सकता हूँ कि ये पुस्तकें स्त्रियों तथा बालिकाओं के हाथ में भी अच्छी तरह से दी जा सकती हैं।

"मगन रहु चोला" एक बहुत ही अच्छा उपन्यास है। इसके प्रत्येक पृष्ठ में अवश्य हँसी आती है और इसकी हँसी बहुत ऊँचे दर्जे की होती है। इसमें कुरुचि उत्पन्न करने वाली हँसी का सर्वथा अभाव है। इसके परिहास उपदेशप्रद और हृदयग्राही हैं। हँसी का मनुष्य के ऊपर बड़ा प्रभाव पड़ता है और कभी-कभी यह प्रभाव अमिट हो जाता है और जीवन भर अपनी सत्ता जमाए रहता है तथा मनुष्य के जीवन को सुधारता रहता है। "मगन रहु चोला" की हँसी इसी कोटि की है। कभी-कभी यह बात देखी गई है कि जो प्रभाव किसी तरह से उत्पन्न नहीं होता, जो शिक्षा किसी तरह से नहीं मिलती, वही एक उसी हँसी से प्राप्त हो जाती है, जो हृदय में सुरुचि उत्पन्न करती है! इस पुस्तक में कई स्थानों पर ऐसी ही हँसी है। कई स्थानों पर तो इसमें ऐसी सुन्दर हँसी है जो कभी नहीं भुलाई जा सकती और फिर भी वह सिर्फ़ मज़ाक़ ही नहीं है, किन्तु उपदेशप्रद भी। जब-जब मैं 'मगन रहु चोला' की उच्च हँसी का विचार करता हूँ, तब-तब मैं उसकी बड़ाई किए बिना नहीं रह सकता। मैं लेखक को अपने हृदय के अन्तस्तल से ऐसी सुन्दर पुस्तक के लिखने के लिए बधाई देता हूँ और उन्हें विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि यह पुस्तक वास्तव में हिन्दी-साहित्य के एक बड़े भारी अभाव की पूर्ति करती है।

"मेरी हजामत" नामक पुस्तक तीन छोटी-छोटी कहानियों का संग्रह है। पहली कहानी का नाम 'ब्राह्मण-भोजन' है और वास्तव में यही इस पुस्तक की सर्व-श्रेष्ठ कहानी है। इस कहानी के सब विचार मौलिक हैं। मौलिकता के विचार से भी अन्नपूर्णानन्द जी की कृतियों को हिन्दी-भाषा में बड़ा ऊँचा स्थान मिलेगा।

उक्त उपन्यास तथा कहानी के पढ़ जाने पर यह धारणा निश्चित हो जाती है कि हिन्दी-भाषा की यह अपनी सम्पत्ति है और कई लेखकों की तरह यह उधार की वस्तु नहीं है। दूसरी कहानी का नाम 'मेरी हजामत' और तीसरी का नाम 'बड़ा दिन' है। सब कहानियाँ मनोरञ्जक तथा शिक्षाप्रद हैं। किसी में अश्लीलता नहीं हैं। श्री० पद्मसिंह शर्मा ने इनके सम्बन्ध में लिखा है—"कहानियों में बहुत से अङ्गरेज़ी वाक्य रोमन लिपि में और अङ्गरेज़ी भाषा में ज्यों के त्यों भाषान्तर के बिना दे दिए गए हैं। जो पाठक अङ्गरेज़ी नहीं जानते, वह ऐसे मौक़े पर बेरों, गुठलियाँ या अँगूरों में निमौलियाँ मिली देख कर झल्ला उठते हैं, कथा-प्रकरण का एक वाक्य भी पाठक की समझ में न आवे, तो रस-विच्छेद होकर मज़ा किरकिरा हो जाता है। अङ्गरेज़ी के विद्वान लेखक के लिए तो यह एक मामूली रोज़मर्रा की बात है, पर अङ्गरेज़ी भाषानभिज्ञ पाठक की दृष्टि में तिल की ओट पहाड़ है। ख़ैर, नज़र से बचाने के लिए यह 'दोष दिठौने' की चर्चा कर दी गई है।"

शर्मा जी की इस बात से तो मैं सहमत हूँ कि जो

लोग अङ्गरेज़ी बिल्कुल नहीं जानते, वे ऐसे स्थानों पर कुछ भी नहीं समझ सकते, परन्तु मैं शर्मा जी की इस बात से सहमत नहीं हो सकता कि उनके भाषान्तर के दे देने से यह त्रुटि नहीं रह जाती। क्योंकि इस पुस्तक में कुछ ऐसी हँसी हैं, जो केवल अङ्गरेज़ी के शब्दों ही में है और यदि उनके रूपान्तर दे दिए जायँ, तो वह हँसी नहीं आ सकती। उदाहरण के लिए मैं एक बात लेता हूँ। एक स्थान पर लेखक ने 'मेरी Soul की आत्मा' का प्रयोग किया है। वास्तव में इसे पढ़ कर बड़ी हँसी आती है। परन्तु यदि उसका भाषान्तर यों कर दिया जाता—मेरी आत्मा की आत्मा—तो हँसी न आती। बहुत तो इस प्रकार और भी अधिक निरर्थक हो जाते।

लेखक से मैं इतना और निवेदन करना चाहता हूँ कि इन पुस्तकों में व्यङ्ग का बड़ा अभाव है। तथापि ये पुस्तकें हास्य-रस सम्बन्धी सर्व-श्रेष्ठ पुस्तकों में से हैं।

* * *

पाक-प्रकाश अथवा मिठाई—लेखक तथा प्रकाशक श्री० माताप्रसाद गुप्त, मकन्दूगञ्ज, प्रतापगढ़ (अवध); पृष्ठ-संख्या ४१५; मूल्य २॥); सजिल्द का ३)

वास्तव में यह पुस्तक बहुत सुन्दर है। इसकी छपाई और काग़ज़ भी बढ़िया है। इसके नियम सरल और सुबोध हैं। इसे पढ़ कर साधारण आदमी भी मिठाई और सब प्रकार का पकवान बना सकता है। इसमें सब प्रकार की मिठाई, पकवान, कच्चा भोजन, शाक-भाजी, मुरब्बे, चटनी-अचार, चरबन-सत्तू और सब प्रकार के भोजनों की सरल और सर्वोपयोगी रीतियों का वर्णन है।

* * *

नूतन चिकित्सा—लेखक तथा प्रकाशक डॉक्टर हरिनारायण शर्मा; झींद रियासत, सफ़ीदों मण्डी; पृष्ठ-संख्या ३०१; मूल्य २)

* * *

भाषा-शिक्षण-पद्धति—लेखक रायबहादुर पं० लज्जाशङ्कर झा, प्रिन्सिपल टीचर्स ट्रेनिङ्ग कॉलेज हिन्दू-यूनिवर्सिटी बनारस; प्रकाशक मिश्र-बन्धु कार्यालय, जबलपुर; पृष्ठ-संख्या २३४; मूल्य १॥)

इस ग्रन्थ के लेखक एक प्रसिद्ध व्यक्ति हैं। इन्होंने बड़े परिश्रम से इस ग्रन्थ को लिखा है। यह उनकी मौलिक रचना है। इसमें दूसरी पुस्तकों से सहायता नहीं ली गई है। झा जी एक अनुभवी व्यक्ति हैं। आप स्कूल के डिप्टी इन्सपेक्टर, नॉर्मल स्कूल में शिक्षक, शिक्षण-पद्धति तथा हिन्दी के प्रोफ़ेसर, हाईस्कूल के हेड मास्टर और सर्किल इन्सपेक्टर रह चुके हैं। इन सब पदों पर भाषा के सम्बन्ध में उन्होंने जितना अनुभव प्राप्त किया है, उसे पूरा-पूरा अङ्कित करने का इस ग्रन्थ में प्रयत्न किया गया है।

* * *

स्वास्थ्य-विज्ञान—लेखक डॉ० भास्कर गोविन्द घाणेकर; मुद्रक बजरङ्गबली गुप्त विशारद; मूल्य २॥); पृष्ठ-संख्या २३२; छपाई और काग़ज़ उत्तम।

संस्कृत तथा अङ्गरेज़ी के अनेक ग्रन्थों को पढ़ कर लेखक ने इस ग्रन्थ को लिखा है। वास्तव में यह पुस्तक अच्छी है और इस विचार से लिखी गई है कि यह स्कूल तथा कॉलेजों में पाठ्य पुस्तक रक्खी जा सके। इसमें सन्देह नहीं कि इसकी भाषा में कुछ ग़लतियाँ हैं तथा प्रूफ़-संशोधन भी ठीक नहीं हुआ है, तथापि ये सब बातें ग्रन्थ की उपयोगिता को नष्ट नहीं करती हैं।

* * *

जीवन-युद्ध—लेखक श्री० देवकी नन्दन 'विभव'; प्रकाशक एस० एस० मेहता एण्ड ब्रादर्स; मूल्य १) सजिल्द १।≈); पृष्ठ-संख्या १५५; छपाई और काग़ज़ उत्तम।

इस ग्रन्थ में जीवन-युद्ध की तैयारी का वर्णन है। लेखक का विचार है कि जीवन-संग्राम में आशा की बड़ी आवश्यकता है और भारत के नवयुवकों तथा नवयुवतियों को आशावादी अवश्य होना चाहिए।

* * *

(शेष मैटर ६४९ पृष्ठ में देखिए)
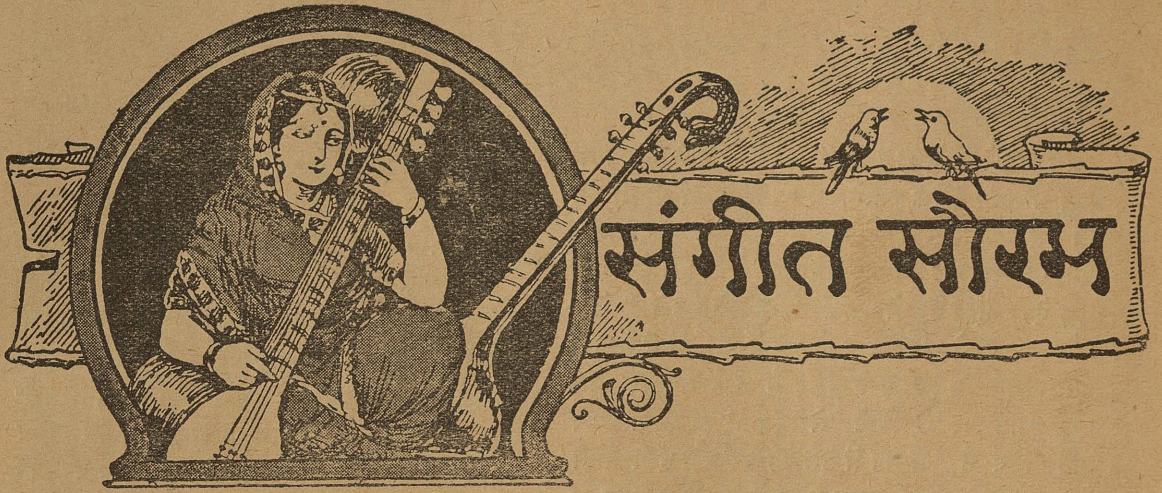
[सम्पादक—श्री० किरणकुमार
मुखोपाध्याय (नीलू बाबू)]

मुलतानी—एकताला

[शब्दकार तथा स्वर-लिपिकार—
नीलू बाबू]

स्थायी

देखो सखी बाँको छैल,
कुञ्जन बीच करत सैल,
ऐसो लँगर ढीठ भयो,
मेरी गली घेरो ।

अन्तरा

लटकी-लटकी लेत तान,
चितवत तिरछी किसान,
गावत अति मधुर गान,
मेरो मन फेरो ॥

स्थायी

×		०		१		०		२		३	
		त	क		त	क			क		
नि ०	स	म	ग	प	म	ध	प	नि	ध	प	प
दे	ए	खो	ओ	स	खी	वाँ	आ	को	छ	ए	ल
त	त		क	त		त	क		त	क	क
म	म	प	ध	म	प	म	ग	प	म	ग	ग
कु	उन	ज	न	बी	च	क	र	त	स	ए	ल
क	त			०	०	क०	क०	०		क	
ग	म	प	नि	सं	सं	ग	रे	सं	नि	ध	प
ऐ	ए	सो	लँ	ग	र	ढी	ई	ठ	भ	ओ	ओ
	त	क	त		त	क		क	क		
प	म	ग	म	प	म	ग	प	ग	रे	स	—
मे	ए	री	ई	ग	ली	घे	ए	ए	ए	रो	—

अन्तरा

		क	त					क०	क०	क०	
प	प	ग	म	प	नि	सं	—	ग	रे	रे	सं
ल	ट	की	ल	ट	की	ले	—	त	ता	आ	न
			क०	क०				क०		क	
नि	नि	सं	ग	रे	सं	नि	सं	रे	नि	ध	प
चि	त	व	त	ति	र	छी	ई	कि	सा	आ	न
त	क	त					त०	क०	क०	क०	
म	ग	म	प	नि	सं	पं	म	ग	रे	र	सं
गा	आ	व	त	अ	ति	म	धु	र	गा	आ	न
		क्र		त	क		क	क	क		
सं	नि	ध	प	म	ग	प	म	ग	र	स	—
मे	ए	रो	ओ	म	न	फे	ए	ए	ए	रो	—

(६४७ पृष्ठ का शेषांश)

ख़ून के आँसू—लेखक पं० शिवशर्मा जी महोपदेशक; प्रकाशक स्वामी चिदानन्द संन्यासी; मूल्य ≈); पृष्ठ-संख्या ७२; छपाई और काग़ज़ ख़राब।

यह एक छोटा सा उपन्यास है, परन्तु सच्ची घटना के आधार पर लिखा गया है। एक मुसलमान ने एक हिन्दू-स्त्री को भगा लिया था। अन्त में एक आर्य-समाजी ने उसका उद्धार किया।

* * *

निरञ्जन गीतावली—लेखक व प्रकाशक निरञ्जनसिंह आशुफ़ता, आगरा; मूल्य ।=); पृष्ठ-संख्या ५९; छपाई और काग़ज़ उत्तम।

यह पुस्तक श्री० निरञ्जनसिंह जी की उत्तम-उत्तम कविताओं का संग्रह है। श्री० निरञ्जनसिंह जी आगरे के प्रसिद्ध कवियों में से हैं और सभाओं में प्रायः कविता पढ़ा करते हैं।

* * *

निम्न-लिखित पुस्तकें 'चाँद' कार्यालय में समालोचनार्थ और आई हैं:—

(१) गजानन्द भजनमाला—लेखक बाबू गजानन्द घोड़ीवाला, बिसाऊ, (जयपुर); प्रकाशक बाबू पूरनमल झुँझनूवाला, बुकसेलर बिसाऊ, जयपुर; मूल्य ।)

(२) छाया—लेखक जयशङ्कर प्रसाद; प्रकाशक हिन्दी-पुस्तक-भण्डार, लहेरियासराय। पृष्ठ-संख्या १९२, मूल्य १=)। यह ग्यारह कहानियों का संग्रह है।

(३) श्रावकाचार (द्वितीय भाग)—अनुवादक पं० नन्दनलाल जी, चावली निवासी; पृष्ठ-संख्या १३४; मूल्य ॥)

(४) बाल श्रीकृष्ण (द्वितीय भाग)—लेखक कृष्णलाल वर्मा; प्रकाशक ग्रन्थ-भण्डार लेडी हार्डिञ्ज रोड, माटुङ्गा, बम्बई; मूल्य ।)

(५) हस्तरेखा परिचय—सम्पादक विश्वनाथ त्रिवेदी, हस्तरेखा विशारद, कुन्दनपुरा, मुज़फ़्फ़रनगर; मूल्य =)

(६) राजपूतों का आदर्श—लेखक ठाकुर केसरीसिंह देवड़ा; प्रकाशक केप्टेन ठा० केसरीसिंह मालसिंहोत देवड़ा, जागीदार गलथनी, पो० एरनपुरा रोड, राज्य मारवाड़, राजपूताना; मूल्य नदारद।

(७) लिपि-समीक्षा—लेखक गौरीशङ्कर भट्ट; प्रकाशक अक्षर-विज्ञान कार्यालय, मसवानपुर, कानपुर; मूल्य =)

(८) अक्षर-तत्व—लेखक गौरीशङ्कर भट्ट, प्रकाशक अक्षर-विज्ञान कार्यालय; मसवानपुर, कानपुर, मूल्य ॥)
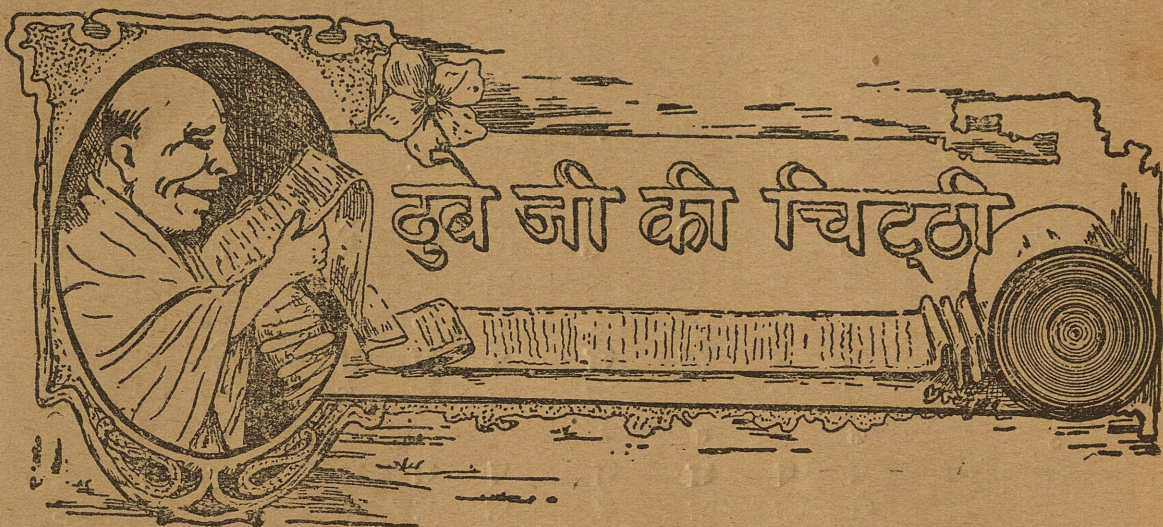
अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

आपकी चिट्ठियों के मारे आजकल बुरा हाल है। इधर आपका तकाज़ा और उधर लल्ला की महतारी का हल्ला ! न इधर चैन न उधर चैन ! जहाँ काग़ज़-क़लम लेकर कुछ लिखने बैठा कि लल्ला की महतारी खोपड़ी पर आ धमकीं ! "क्या लिख रहे हो ? क्यों लिख रहे हो ? सम्पादक जी तुम्हारे कौन होते हैं जो उन्हें रोज़ चिट्ठियाँ लिखा करते हो ?" आदि-आदि प्रश्नों की ऐसी झड़ी लगा देती हैं कि उसके सामने सावन की झड़ी की कोई हक़ीक़त ही नहीं। आज सोकर उठीं तो कहने लगीं— "आटा-दाल नहीं है।" मैंने कहा—"तो मैं क्या करूँ ? मेरे पास तो पैसे भी नहीं हैं। तुम्हारे पास हों तो लाओ दो, आटा-दाल ला दूँ ! लाला करोड़ीमल की दूकान खुल गई होगी।"

बस, अभी इतना ही कह पाया था कि लल्ला की महतारी चीख़ उठीं। पहले तो मैंने समझा कि उन्हें बिच्छू ने डङ्क मार दिया है या घर में कहीं आग लग गई है। परन्तु थोड़ी देर के बाद ही मालूम हो गया कि मेरा अनुमान बिलकुल ग़लत है। न उन्हें बिच्छू ने डङ्क मारा है और न घर में कहीं आग लगी है। उनकी चिङ्घाड़ का कारण आटा-दाल है। और उसके न होने का अपराध मेरे ऊपर है। मानो मेरे ही अपराध से वे दोनों (आटा और दाल) के बर्त्तन क़िले की दीवार फाँद कर कहीं नौ-दो-ग्यारह हो गए हैं ! इसमें लल्ला की महतारी का ज़रा भी क़ुसूर नहीं।

ख़ैर, जब वह अच्छी तरह बरस चुकीं, उनके क्रोध का पारा 'नॉर्मल' के निकट पहुँचा और आँचल से मुँह का पसीना पोंछ कर सुस्ताने लगीं, तो मैंने हिम्मत करके पूछा—"आख़िर मुझ पर क्यों इतना बिगड़ रही हो ? मैं क्या करूँ ? आटा-दाल समाप्त हो गया है तो इसमें मेरा क्या अपराध है ?" उन्होंने अपनी कमान सी भौंहों को भृकुटी तक खींच कर कहा—"तुम्हारा नहीं तो क्या मेरा क़सूर है ? यह चिट्ठी-फिट्ठी लिखना छोड़ कर कोई रोज़गार-धन्धा क्यों नहीं करते ?"

"रोज़गार-धन्धा ?"

"हाँ-हाँ, रोज़गार-धन्धा।" उन्होंने दुबारा कमान चढ़ाई। सम्पादक जी, रङ्ग बेढब देख कर मेरे तो होश पैंतरा कर गए। सोचा, इस समय अगर कुछ बोलूँगा तो बात बढ़ जायगी, इसलिए "अच्छा सोचूँगा" कह कर मैं फ़ौरन वहाँ से उठ कर बाहर चला गया और सोचने लगा × × ×

मालूम नहीं, आज लल्ला की महतारी को क्या हो गया है, जो इतना सख़्त नाराज़ हो रही हैं और इस बुढ़ौती में मुझे रोज़गार-धन्धा करने को कहती हैं। मैं ब्राह्मण-सन्तान भला रोज़गार-धन्धा क्या जानूँ ? ब्राह्मणों का तो रोज़गार है यजमानों से दक्षिणा लेकर उनके लिए परलोक का पथ प्रशस्त कर देना और उनके

पिताओं के श्राद्ध आदि में भोजन का निमन्त्रण ग्रहण करके उन्हें सीधे वैकुण्ठधाम भेजना। मैं कोई बनिया-बक़्क़ाल थोड़े ही हूँ कि लल्ला की महतारी के कहने से लौंग-सुपारी की दूकान खोल कर बैठ जाऊँ? कायस्थ होता तो कहीं 'मुन्शीगिरी' कर लेता या क्षत्रिय होता तो किसी बड़े आदमी के यहाँ दरवानी का काम करता, परन्तु मैं तो ब्राह्मण हूँ। ब्राह्मण को तो अगर भीख माँगने की नौबत आ जाय तो भी अपने धर्म के प्रतिकूल, दान-दक्षिणा लेना छोड़ कर, कोई दूसरा काम नहीं करना चाहिए। फिर जब तक दोनों जून पूरी-मलाई चभाने वाला सनातन हिन्दू-समाज मौजूद है, तब तक हम ब्राह्मणों को कोई रोज़गार-धन्धा करने की आवश्यकता ही क्या है?

अभी मेरी विचार-धारा भादों की उमड़ी हुई नाली की तरह बही ही जा रही थी, कि उधर से मेरे लँगोटिया यार मुन्शी मदारीलाल आ धमके और मुझे देखते ही बेवक़्त की शहनाई की तरह बज उठे—"दुबे जी, पालागन!" मैंने आशीर्वाद दिया—"कल्याण हो, आयुष्मान!" इसके बाद "कहिए, क्या हो रहा है?" कह कर मुन्शी जी मेरे पास बैठ गए। यद्यपि मेरी इच्छा इस समय किसी से बातचीत करने की न थी, परन्तु मुन्शी जी लड़कपन के साथी थे और कभी-कभी भाँग भी छनवाया करते थे, इसलिए मैंने भी मुरव्वत से ही काम लेना मुनासिब समझा और उनके "कहिए, क्या हो रहा है" के उत्तर में कहा—"कुछ नहीं, योंही कुछ सोच रहा हूँ।"

"क्या सोच रहे हैं?" मुन्शी जी ने दूसरा प्रश्न किया और ईषत् मुँह बाकर उत्सुकतापूर्वक मेरे चेहरे की ओर देखने लगे। मैंने कहा—"कुछ रोज़गार-धन्धे की बात सोच रहा हूँ।"

"क्या कुछ करने का विचार है?"

"हाँ, कुछ तो करना ही चाहिए, नहीं तो काम कैसे चलेगा?"

"तो क्या करने का विचार है?"

"यही तो सोच रहा हूँ।"

मुन्शी जी ख़ुश-मिज़ाज, परन्तु जहाँदीदा आदमी थे। मेरी बात सुन कर बोले—परन्तु, दुबे जी, आप तो ब्राह्मण हैं, दूसरे जवानी भी बिदा ले चुकी है। अब इस बुढ़ौती में कौन सा रोज़गार कीजिएगा? मेरी तो राय है कि ईश्वर से प्रार्थना कीजिए कि बारहो महीने 'पितरपख' रहा करे या कोई महामारी फैले, ताकि भोजन और दक्षिणा का डौल बना रहे।

मैंने ज़रा रुष्ट होकर कहा—मुन्शी जी, आप तो दिल्लगी कर रहे हैं।

मुन्शी जी बोले—दिल्लगी नहीं, महाराज, जब तक ईश्वर की कृपा से सनातन-धर्म जीवित है, तब तक रोज़गार की क्या कमी है? जिससे कुछ न बन पड़े उसे धर्म का व्यवसाय करना चाहिए। हर्रे लगे न फिटकिरी और रङ्ग भी चोखा उतरे। न पूँजी की आवश्यकता, न व्यवसाय-शास्त्र (Commerce) पढ़ने की ज़रूरत।

मैंने आश्चर्य से मुन्शी जी के मुँह की ओर देखा। उन्होंने कहा—"इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है? गत महाकुम्भ के अवसर पर त्रिवेणी नहाने गया था तो देखा कि एक बाबा जी लोढ़े में सिन्दूर लपेट कर एक पीपल के पेड़ के नीचे बैठे हैं। उसके पाँच-छः महीने बाद एक मित्र के साथ फिर इलाहाबाद गया तो देखा कि 'लोढ़ादेव' ने कुछ उन्नति की है। धूप-शीत से बचने के लिए भक्तों ने पीपल-वृक्ष के नीचे एक छोटी सी झोपड़ी डाल दी है और 'लोढ़ादेव' एक चौकी पर विराजमान हैं, फूल-अक्षत भी पहले की अपेक्षा अधिक चढ़े हैं। सङ्गम-स्नान से लौटी हुई पुण्यार्थिनियाँ प्रभुवर के भोगराग के लिए एक-एक पैसा चढ़ा कर अपने लिए श्रीवैकुण्ठ-धाम में 'सीट रिज़र्व' करा रही हैं। इसके बाद पूरे साल भर बीत गए। गत माघी का मेला आया। 'मुन्शियाइन' कहने लगीं—"चलो न त्रिवेणी नहा आवें! महल्ले की सब स्त्रियाँ जा रही हैं।" मेरी इच्छा तो न थी। रुपए-पैसे का भी डौल न था। परन्तु वह ज़िद करने लगीं, इसलिए जाना ही पड़ा। स्टेशन पर रेलगाड़ी से उतरते ही 'बाबा लोढ़ादेव' की याद आई। हमारे पुश्तैनी पण्डा जी एक स्टेशन पहले से ही साथ थे। दूसरे रोज़ स्नान करने के बाद श्रीमती जी तो क़िले में अक्षयवट दर्शन करने गईं, जिसकी डाली में झूला लगा कर भगवान विष्णु ने प्रलय काल में अपनी रक्षा की थी और फिर जब ब्रह्मा जी की शाम को प्रलय-

काल उपस्थित होगा तो उसी तरह, उसी वृक्ष में झूलेंगे, और मैं बाबा लोढ़ादेव की ओर बढ़ा। परन्तु यह क्या? इस समय तो यहाँ कुछ और ही ठाट-बाट है। झोपड़ी की जगह पक्का मन्दिर बन गया है। प्रभुवर एक सुसज्जित सिंहासन पर विराज रहे हैं। दर्शनार्थी और दर्शनार्थिनियों की भीड़ का ठिकाना नहीं है। पूछने पर मालूम हुआ कि यह 'बाबा कामेश्वरनाथ' का मन्दिर है। बड़े जीते-जागते देवता हैं। आपकी कृपा से कितनी ही वन्ध्याएँ पुत्रवती हो गई हैं, कितने कुष्ठ-रोग ग्रस्तों ने कमनीय कलेवर लाभ किया है और कितने भक्तों तथा भक्तिनों की गुप्त से गुप्त मनोकामनाएँ पूरी हो गई हैं। इस मन्दिर के अधिष्ठाता बाबा महेन्द्रगिरि हैं। सिद्ध योगी हैं। बारह वर्ष तक हिमालय की गुफा में रह कर तप कर आए हैं। आपकी उमर पूरे ११९ वर्ष की है, परन्तु न अभी दाँत हिले हैं, न बाल सुफ़ेद हुए हैं। आपको देख कर कोई यह नहीं कह सकता कि चालीस वर्ष से अधिक उमर के होंगे। यह सुन कर मेरा कौतूहल और भी बढ़ गया और लगे हाथ श्रीमहन्त जी महाराज के दर्शन की लालसा भी दिल में कुलाँचें मारने लगी। बड़ी मुश्किल से झाँक कर दर्शन किया। बात यह थी कि बिना 'दर्शनी' के दर्शन दुर्लभ था। इसलिए झाँकी लेकर ही सन्तोष करना पड़ा। परन्तु—

ख़्वाब था जो कुछ कि देखा,
जो सुना अफ़साना था!

"महन्त जी महाराज गुलगुले गद्दे पर तकिए के सहारे उठँगे हुए रुटक पी रहे थे। चारों ओर भक्तिनों की भीड़ लगी थी। ऊढ़ा-नवोढ़ा, सधवा-विधवा और प्रौढ़ा-वृद्धा—सब मौजूद थीं और महाराज मन्द-मन्द मुस्काते और आशीर्वाद देते जाते थे। बिना मूलधन के ऐसे निख़ालिस स्वदेशी रोज़गार के रहते, दुबे जी, आप रोज़गार की चिन्ता में पड़े हैं, यह देख कर मैं तो आश्चर्य में पड़ गया हूँ। ज़रा खोपड़ी पर ज़ोर देकर सोचिए, हमारे देश में जितने तरह के रोग हैं उतने तरह के देवता मौजूद हैं। ज्वर के लिए ज्वरासुर, चेचक के लिए शीतला देवी, सर्पों के अधिष्ठाता नाग बाबा और नाना प्रकार के रोगों के लिए नाना प्रकार के भूत-प्रेत तथा देवता-उपदेवता मौजूद हैं। परन्तु आपके सौभाग्य से अभी 'प्लेग' और 'इन्फ़्लुएन्ज़ा' के किसी अधिष्ठाता का आविर्भाव नहीं हुआ है, इसलिए हमारी राय है कि आप किसी चतुर बढ़ई से चारपाई के पाए के ढङ्ग की काठ की एक मूर्ति गढ़वा लीजिए और उसे तेल और सिन्दूर से रँग कर, गङ्गा किनारे किसी पीपल के पेड़ के नीचे स्थापित कर दीजिए और वहीं एक चटाई बिछा कर आप भी आसन जमा दीजिए। अगर साल भर में आप हज़ारों के मालिक न बन जायँ और आपकी तोंद घुटने के नीचे तक न लटक जाए तो मेरा नाम नहीं। फिर तो आपके लल्ला की महतारी अगर साल में तीन-तीन बच्चे भी दिया करें तो आपके लिए कोई चिन्ता की बात नहीं। कहिए, कैसा बिना कौड़ी का रोज़गार बताया?"

मैंने कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि से मुन्शी जी की ओर देख कर कहा—भई, आज मेरी समझ में आगया कि लोग क्यों कायस्थ की खोपड़ी की इतनी प्रशंसा करते हैं।

मैंने मुन्शी जी का बताया हुआ यह रोज़गार अभी आरम्भ नहीं किया है, परन्तु शीघ्र ही करने वाला हूँ। बशर्ते कि लल्ला की महतारी कोई अड़ङ्गा न पेश कर दें। और सब हाल-चाल अच्छा है, अपना कुशल-समाचार सदैव लिखते रहिएगा।

भवदीय,

—विजयानन्द (दुबे जी)

प्रेम-प्रमोद

[लेखक—श्री० प्रेमचन्द जी, बी० ए०]

यह बात बड़े-बड़े विद्वानों और अनेक पत्र-पत्रिकाओं ने एक स्वर से स्वीकार कर ली है कि श्री० प्रेमचन्द जी की सर्वोत्कृष्ट सामाजिक रचनाएँ 'चाँद' में ही प्रकाशित हुई हैं। प्रेमचन्द जी का हिन्दी-साहित्य में क्या स्थान है, सो हमें बतलाना न होगा। आपकी रचनाएँ बड़े-बड़े विद्वान् तक चाव और आदर से पढ़ते हैं। हिन्दी-संसार में मनोविज्ञान का जितना अध्ययन प्रेमचन्द जी ने किया है, उतना किसी ने नहीं। यही कारण है कि आपकी कहानियों और उपन्यासों को पढ़ने से जादू का सा असर होता है; बच्चे-बूढ़े, स्त्री-पुरुष—सभी आपकी रचनाओं को बड़े प्रेम से पढ़ते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में प्रेमचन्द जी की उन सभी कहानियों का संग्रह किया गया है, जो 'चाँद' में पिछले तीन-चार वर्षों में प्रकाशित हुई हैं! इसमें कुछ नई कहानियाँ भी जोड़ दी गई हैं, जिनसे पुस्तक का महत्व और भी बढ़ गया है। प्रकाशित कहानियों का भी फिर से सम्पादन किया गया है। प्रत्येक घर में इस पुस्तक की एक-एक प्रति होनी चाहिए। जब कभी कार्य की अधिकता से जी ऊब जाय, एक कहानी पढ़ लीजिए, सारी थकान दूर हो जायगी और तबीयत एक बार फड़क उठेगी? कहानियाँ चाहे दस वर्ष बाद पढ़िए, आपको उनमें वही मज़ा मिलेगा। छपाई-सफ़ाई सुन्दर, बढ़िया काग़ज़ पर छपी तथा समस्त कपड़े की सजिल्द पुस्तक का मूल्य २॥) रु०; पर स्थायी ग्राहकों से १॥।=) मात्र!

निर्मला

[ले० श्री० प्रेमचन्द जी, बी० ए०]

इस मौलिक उपन्यास में लब्धप्रतिष्ठ लेखक ने समाज में बहुलता से होने वाले वृद्ध-विवाहों के भयङ्कर परिणामों का एक वीभत्स एवं रोमाञ्चकारी दृश्य समुपस्थित किया है। जीर्ण-काय वृद्ध अपनी उन्मत्त काम-पिपासा के वशीभूत होकर किस प्रकार प्रचुर धन व्यय करते हैं; किस प्रकार वे अपनी वामाङ्गना षोडशी नवयुवती का जीवन नाश करते हैं; किस प्रकार गृहस्थी के परम पुनीत प्राङ्गण में रौरव-काण्ड प्रारम्भ हो जाता है, और किस प्रकार ये वृद्ध अपने साथ ही साथ दूसरों को लेकर डूब मरते हैं; किस प्रकार उद्भ्रान्ति की प्रमत्त-सुखद कल्पना में उनका अवशेष ध्वंस हो जाता है—यह सब इस उपन्यास में बड़े मार्मिक ढङ्ग से अङ्कित किया गया है। सुन्दर सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल २।); स्थायी ग्राहकों से १॥।-) मात्र!

व्यवस्थापिका

'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक,

इलाहाबाद

मनोरञ्जक कहानियाँ

श्री० ज़हूरबख़्श जी की लेखन शैली बड़ी ही रोचक और मधुर है। आपने बालकों की प्रकृति का अच्छा अध्ययन किया है। यह पुस्तक आपने बहुत दिनों के कठिन परिश्रम के बाद लिखा है। इस पुस्तक में कुल १७ छोटी-छोटी शिक्षा-प्रद, रोचक और सुन्दर हवाई कहानियाँ हैं, उनको पढ़ते ही हृदय आनन्द से उमड़ पड़ता है। हरेक कहानी को जितनी बार पढ़ा जाय, उतनी ही बार एक नया आनन्द प्राप्त होता है। बालक-बालिकाएँ तो इन्हें बड़े मनोयोग से सुनेंगे। बड़े-बूढ़ों का भी मनोरञ्जन हो सकता है। शीघ्र ही मँगा कर लाभ उठाइए। पृष्ठ-संख्या १८० से अधिक, छपाई-सफ़ाई अच्छी, सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल १॥); स्थायी ग्राहकों से १=)

दैवी सम्पद

[लेखक—श्री० रामगोपाल जी मोहता, बीकानेर]

यदि आप सचमुच ही स्वाधीनता के उपासक हैं,

यदि आप अपने आपको, अपनी जाति को तथा अपने देश को पराधीनता के बन्धनों से मुक्त कर स्वतन्त्र बनाना चाहते हैं तो "दैवी सम्पद" को अपनाइए।

यदि आप अपने आपको, अपनी जाति को तथा अपने देश को सुख-समृद्धि सम्पन्न करना चाहते हैं तो "दैवी सम्पद" का अध्ययन करिए।

यदि आपके जीवन के किसी भी व्यवहार के सम्बन्ध में कोई उलझी हुई ग्रन्थि हो तो उसको सुलझाने के लिए "दैवी सम्पद" का सहारा लीजिए! आप उसे अवश्य ही सुलझा सकेंगे।

यदि धार्मिक विचारों के विषय में आपका मन संशयात्मक हो तो "दैवी सम्पद" को विचारपूर्वक पढ़िए। आपका अवश्य ही समाधान होगा।

अपने विषय की यह अद्वितीय पुस्तक है। लगभग ३०० पृष्ठ की फ़ेदरवेट काग़ज़ पर छपी हुई सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल २॥) रु०।

सार्वजनिक संस्थाओं को, केवल डाक-व्यय के।-) (पाँच आने) ग्रन्थकर्ता के पास भेजने पर यह पुस्तक मुफ़्त मिलेगी।

ग्रन्थकर्ता का पता—

श्री० सेठ रामगोपाल जी मोहता

बीकानेर (राजपूताना)

प्रकाशक का पता—'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

Regd. No. A—1154

Printed and Published by R. SAIGAL—Editor—at the Fine Art Printing Cottage
28, Edmonstone Road, Chandralok—Allahabad.

क्रमाङ्क	लेख	लेखक	पृष्ठ

* * *

विविध विषय

*   *   *

चित्र-सूची

जीवन-सन्ध्या

फूलों की सूखी लाली में, था जीवन-सन्ध्या का हास।
पत्थर पर बिखरा जाता था, बुझते यौवन का मधुमास॥

—कुमार

FINE ART PRINTING COTTAGE ALLAHABAD